गो० हरिराय जी का पद-साहित्य

[सचित्र जीवनी और ७०० पदों का वृहत् संकलन]

संकलयिता और संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :

साहित्य संस्थान, मथुरा.

प्रथम संस्करण
मकर संक्रांति, सं० २०१८ वि०
[१४ जनवरी सन् १९६२ ई०]

मूल्य ५) पाँच रुपया

मुद्रक :
त्रिलोकीनाथ मीतल, भारत प्रिंटर्स, डैम्पियर पार्क, मथुरा।

विषय-सूची

१. गो० हरिराय जी की जीवनी

२. गो० हरिराय जी के पद

१. कृष्ण–लीला

२. उत्सव-त्यौहार

३. संप्रदाय संबंधी

४. विनय

५. संस्कृत के पद

६. गुजराती के पद

७ पंजाबी के पद

८. सहायक ग्रंथ

प्राक्कथन

बल्लभ संप्रदाय में गो० हरिराय जी का नाम एक प्रकांड विद्वान और महान् ग्रंथकार के रूप में सदा से प्रसिद्ध रहा है । हिंदी साहित्य में उनकी ख्याति विविध वार्ता ग्रंथों के निर्माता होने के कारण अब ब्रजभाषा गद्य के एक विशिष्ट लेखक के रूप में भी हो गई है। किंतु संप्रदाय और साहित्य दोनों में ही एक प्रमुख पद-रचयिता के रूप में उनकी ख्याति अभी नहीं मालूम होती है। इस ग्रंथ में हरिराय जी के ७०० पदों का संकलन किया गया है। इनके अतिरिक्त निश्चय ही उनके रचे हुए और भी बहुत से पद होंगे, जो हमारे संकलन में नहीं आ सके हैं। इस प्रकार उनका पद-साहित्य भी अष्टछाप के विख्यात महात्मा सूरदास और परमानंददास के अतिरिक्त बल्लभ संप्रदायी किसी भी भक्त-कवि से कम ज्ञात नही होता है। ऐसी स्थिति में प्रकांड विद्वान, महान् ग्रंथकार और विशिष्ट गद्य-लेखक होने के साथ ही साथ गो० हरिराय जी अब एक प्रमुख पद-रचयिता भी माने जावेगे, इसमें संदेह नही है।

गो० हरिराय जी के कतिपय पद विविध कीर्तन-पोथियों में मिलते है। इनसे यह तो विदित था कि उन्होंने पद-रचना भी की थी; किंतु उसका परिमाण इतना अधिक होगा, इसका ज्ञान हिंदी साहित्य में तो क्या, बल्लभ संप्रदाय में भी कदाचित ही किसी को रहा हो । हिंदी के अनेक भक्त-कवियों की रचनाओं का संकलन करते हुए हमने गो० हरिराय जी के पदों को भी कई हस्तलिखित और मुद्रित कीर्तन-पोथियों में से संगृहीत कराया था; किंतु उनकी संख्या १०० से अधिक नहीं हो सकी । इसमें वृद्धि करने के लिए हमने बल्लभ संप्रदायी कई विद्वान मित्रों से हरिराय जी के किसी वृहत् पद-संग्रह की जानकारी करनी चाही; किंतु उनकी दृष्टि मे भी ऐसा कोई संग्रह नहीं आया था।

एक दिन अकस्मात मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में भारत-प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या द्वारा प्रदत्त ग्रंथागार का अन्वेषण करते हुए बंध सं० ३६ में एक बड़े आकार की हस्तलिखित पोथी मिली। उसके पत्रे उलटने से ज्ञात हुआ कि उसमें वल्लभ संप्रदाय से संबंधित ५ ग्रंथ है[1], जो बड़ी साँची के ३७४ पत्रों में दोनों ओर लिखे गये है। अंत के १०० पत्रों में गो० हरिरायजी कृत वर्षोत्सव और नित्योत्सव के ४५५ पदों का वृहत् संकलन किया गया है। किसी अनपढ़ लिखिया द्वारा लिखे जाने से इन पदों की भाषा अत्यंत अशुद्ध और पाठ बड़ा भ्रष्ट है; किंतु इतने अधिक पदों का एक ही स्थान पर मिल जाना ही बहुत बडी बात है।

हमने उन सभी पदों की प्रतिलिपि कराई; किंतु अन्य प्रतियों की सहायता से उनके पाठ को ठीक किये विना उनका कोई समुचित उपयोग नही समझा गया। जो पद पहिले से ही हमारे संग्रह में थे, उनमें से अधिकांश इस ग्रंथ में मिल गये। दोनों के मिलान से उन पदों का पाठ तो ठीक कर लिया गया; किंतु अन्य बहुसंख्यक पदो के शुद्ध पाठ की समस्या बनी ही रही।

पंजाब का बटवारा होने पर डेरा ग़ाजीखाँ से निष्काषित वल्लभ संप्रदायी 'लाल जी की गद्दी' के गोस्वामी गण वृंदावन में आकर निवास करने लगे थे। वे अपने साथ उक्त संप्रदाय के कुछ ग्रंथ भी लाये थे।

---

१. (१) श्री आचार्य जी महाप्रभून की द्वादस निज वार्ता, पत्रा ३३ (१ से ३३ तक), (२) चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पत्रा १६४ (३४ से १९८ तक), (३) श्री आचार्य जी महाप्रभून की निज वार्ता तथा घरू वार्ता, पत्रा १६ (१९९ से २१४ तक), (४) श्री आचार्य जी महाप्रभून की बंसावली तथा बारह मास के जन्म-दिवस तथा उत्सव, पत्रा ६० (२१५ से २७४ तक), और (५) श्री हरिराय जी कृत वर्षोत्सव तथा नित्य के पद, पत्रा १०० (२७५ से ३७४ तक)

उनके ग्रंथों में गो० हरिराय जी कृत नित्योत्सव के पदों की ३ पोथियाँ भी मिलीं। जहाँ ब्रज तथा अन्यत्र के वल्लभ संप्रदायी केन्द्रों में ऐसे संकलन का अभाव था, वहाँ भारत के सुदूर उत्तर-पश्चिमी छोर पर से इसकी तीन-तीन प्रतियाँ मिलना बड़े आश्चर्य की बात थी ! इससे सिद्ध होता है कि वल्लभ संप्रदाय द्वारा ब्रजभाषा साहित्य का कितने व्यापक क्षेत्र में प्रचार हुआ था । निश्चय ही ये प्रतियाँ ब्रज से प्रतिलिपि करा कर ही वहाँ ले जायी गई होंगी; किंतु वहाँ पर वे सुरक्षित रूप में रही आई, यह प्रसन्नता की बात है। इसके लिए गो० रतनलाल जी तथा उनके पूर्वजों का हमें आभारी होना चाहिए।

इन प्रतियों के उपलब्ध होने से जहाँ पूर्व प्रति के पदों का पाठ ठीक किये जाने की सुविधा मालूम हुई, वहाँ बहुत से नये पदों के प्राप्त होने की आशा भी हुई । किंतु उन प्रतियों का भली भाँति अध्ययन करने से वह सुविधा और आशा की ज्योति मंद हो गई । कारण यह था कि कहने को तो वे तीन प्रतियाँ थीं; किंतु वास्तव में वे किसी एक ही प्रति की तीन प्रतिलिपियाँ थीं, जिनमें पदों की सख्या और उनका क्रम प्रायः एक सा था। फिर उनमें केवल नित्योत्सव के पदों का ही संकलन किया गया था; वर्षोत्सव का एक भी पद उनमें नहीं था । इस प्रकार मथुरा संग्रहालय की प्रति से उद्धृत किये गये वर्षोत्सव के पदों के लिए इनका कोई उपयोग नहीं था । नित्योत्सव के पदो का पाठ भी इन प्रतियों में बहुत अशुद्ध मिला। इसके कारण मथुरा संग्रहालय की प्रति के नित्योत्सव विषयक पदों का पाठ ठीक करने में भी इनसे कोई अधिक सहायता नहीं मिली। फिर भी वो प्रतियों के पाठ, चाहें वे अशुद्ध ही क्यों न हो, मिल जाने से पाठ-शुद्धि में कुछ सहायक तो हुए ही है। इन प्रतियो में अधिकांश पद भी मथुरा सग्रहालय के नित्योत्सव पदों के अनुसार ही थे; केवल २५-३० नये पद मिले होगे।

यहाँ पर उक्त चारों प्रमुख कीर्तन-पोथियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

मथुरा संग्रहालय की प्रति—यह बंध संख्या ३६ में पुस्तक संख्या वी–३६ की प्रति है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इसके ३७४ पत्रों में वल्लभ सप्रदायी ५ ग्रंथों को लिपिवद्ध किया गया है और अंत के १०० पत्रों में श्री हरिराय जी के पदो का संकलन है। इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसे संवत् १६२१ में व्रज के गोकुल ग्राम में लिखा गया था। आरंभ के चार ग्रंथ पूर्णमल्ल सनाढ्य ब्राह्मण ने और पाँचवें ग्रंथ श्री हरिराय जी के पद-संग्रह को गोपाल कीर्तनिया के शिष्य किसी वल्लभ नामक लिखिया ने लिपिवद्ध किया था। श्री हरिराय जी के पद-संग्रह की पुष्पिका में लिपि-काल का उल्लेख नहीं हुआ है; किंतु इससे पहिले के ग्रंथ संख्या ३ और ४ की पुष्पिकाओं में उनका लिपि-काल संवत् १६२१ लिखा गया है। इससे अनुमान होता है कि उक्त पद-संग्रह भी उसी संवत् में अथवा उसके कुछ बाद ही लिपिवद्ध किया गया होगा। इन ग्रंथों के दोनों लिपिक अनपढ़ व्यक्ति होंगे; क्यो कि उनकी लिखावट बड़ी अशुद्ध है, जैसा कि उनकी पुष्पिकाओं से ही प्रकट होता है[1]।

इस प्रति के आरंभिक ४५ पत्रों में वर्षोत्सव के १४६ पद है। उनके वाद ५५ पत्रों में नित्योत्सव के ३०६ पद हैं। इस प्रकार कुल पदो की

---

१. (१) "यह पुस्तक लीखी श्री गोकुल जी मे श्री यमुना जी के तट पे लिखी लिखीया पूर्णमल्ल ने सनाढ्य ब्राह्मन ने। मिती माह सुदी ५ वसंत पंचमी ॥ मगलवार ॥ संवत १६२१ ॥"

(२) "यह पुस्तक लीखी श्री गोकुल जी मे नाज की मडी मे श्री जमुना जी के तट पे लिखीया पूर्णमल्ल नें सनाड्य ब्राह्मन ने। मिती...वदी १३ सवत १६२१"

(३) इति श्री हरिराय क्रति पद सपुरणम् ॥ लिखतं लिखी गोकुलजी मध्ये श्री गोपाल कीर्तनीयां के सागिरद वल्लभ ने लिखी। वाचे जाको जे सी कृष्न ॥

संख्या ४५५ हैं । इनमे कितने ही पद अपूर्ण है और कुछ दो बार लिखे गये है । पुस्तक की अशुद्ध लिपि के कारण पदों का पाठ समझने में बड़ी कठिनाई होती है ।

वर्षोत्सव के पदों का आरंभ और अंत निम्न टेकों से हुआ है—

आरंभ—'जन्म सुत कौ होत ही, आनंद भयौ नंदराय ।'

अंत— 'रतन जटित हिंडोरे बैठे, झूलत है री दंपति ।'

नित्योत्सव के आरंभिक और अंतिम पदों की टेक इस प्रकार हैं—

आरंभ—'दीनों दरस सुपने में आय ।'

अतिम—'जसोदा सुत कौ चरित सुनाऊँ ।'

श्री रतनलाल जी गोस्वामी की तीनों प्रतियों में से १ प्रति पूर्ण और शेष दो अपूर्ण है । इन सब का आकार मझोला है । इनमें पद संख्या और उनका क्रम समान है । इससे ज्ञात होता है कि वे एक ही किसी प्रति की तीन प्रतिलिपियाँ है । इनका पाठ बहुत अशुद्ध है । इनमें लिपिक के नाम और लिपि-काल का भी उल्लेख नहीं किया गया है । ऐसा जान पडता है कि वे १००–१५० वर्ष पहिले लिपिबद्ध की गई होंगी । इनके संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. पूर्ण प्रति—इसमें मझोले आकार के १०४ पत्र है, जिनमे ३५१ पद लिखे गये है । इसके आरंभिक और अतिम पदों की टेक है—

आरभ—'दीनों दरसु सुपने में आइ ।'

अत— 'श्री विट्ठलनाथ, जैसो तैसो तिहारो ।'

२. अपूर्ण प्रति—इसमें ८७ पत्र और ३१६ पद है । अतिम पद ३१९ के बाद का पद अपूर्ण है । उसके बाद के पत्र इसमें नही है । इसके आरंभिक पद की टेक भी पूर्व प्रति के अनुसार है ।

३. अपूर्ण प्रति—इसमें आरंभ और अंत के पृष्ठ नही है; जिनके कारण पद सं० ८ से पहिले के और पद सं० ३४४ के बाद के पद इसमें नही आ पाये है । इस प्रति का आरंभ प्रथम प्रति में दिये हुए पद के अनुसार ही हुआ होगा; क्यों कि बाद के पद उसी क्रम के अनुसार है ।

इस प्रकार यह ग्रंथ विशेषतया मथुरा संग्रहालय की प्रति से और साधारणतया गो० रतनलाल जी की उक्त तीनों प्रतियों से तथा कीर्तन संग्रह, कीर्तन कुसुमाकर, संगीत राग कल्पद्रुम आदि विविध कीर्तन पोथियों एवं वल्लभ संप्रदायी कतिपय ग्रंथों से उपलब्ध पद-संकलन के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। संप्रदाय की सेवा-विधि के अनुसार ये समस्त पद श्री ठाकुर जी के नित्योत्सव और वर्षोत्सव से संबधित हैं। दीनता-आश्रय के पदों को नित्योत्सव में शयन के अनंतर और आचार्यो की वधाई के पदों को वर्षोत्सव मे उनकी जन्म-तिथियों के दिन गाया जाता है। इससे ये पद भी नित्योत्सव और वर्षोत्सव के अंतर्गत ही आते है। फिर भी हमने साहित्यिक दृष्टि से इन सभी पदो को निम्न लिखित प्रमुख वर्गो में विभाजित किया है--

१. कृष्ण-लीला, २. उत्सव-त्यौहार, ३. संप्रदाय संबधी और ४. विनय।

उक्त प्रमुख वर्गो के अंतर्गत विषयानुक्रम से अनेक उपवर्ग भी रखे गये है। इनसे पाठकों को हरिराय जी की रचना गत प्रवृत्ति को समझने में सुविधा होगी। कृष्ण-लीला के अंतर्गत आसक्ति (३३), मान (५४) और विरह (६५) संबंधी पदों की संख्या अधिक है। उत्सव-त्यौहार के अंतर्गत होली (२२) और श्रावण संबंधी (६३) पद अधिक आये है। संप्रदाय सबंधी पदों में श्री बल्लभाचार्य जी की वधाई और आश्रय के पदों की संख्या (६६) सब से ज्यादा है। इन्ही विषयों में हरिराय जी का मन अधिक रमा है। संख्या की दृष्टि से ही नहीं, वरन् काव्य की दृष्टि से भी ये पद ही सर्वोत्कृष्ट हैं।

समस्त पद विभिन्न राग-रागनियों में रचे गये है। इनमें प्रमुख राग रागनियों के नाम सारंग, विलावल, कान्हरो, धनाश्री, आसावरी, रामकली, टोड़ी, नट, भैंरव, ललित, ईमन, विभास, गौरी, केदारौ, देवगंधार, विहागरौ आदि है। कुछ रचनाएँ कवित्त, चौपाई आदि छंदों मे तथा लावनी, दादरा आदि लोकधुनों मे भी लिखी गई है।

इस पुस्तक में आये हुए कुल पदों की संख्या ७०० है । इनमें से अधिकांश पद ८ पंक्तियों तक के ही हैं; किंतु कुछ पद बड़े भी है । बड़े पदों के विषय ढाढ़ी, पलना, दानलीला, गोबर्धन लीला, साँझी और होली है । इनके अतिरिक्त नव विलास, दस उल्लास, नित्य लीला, सेवा-भावना और वल्लभाचार्य जी के आश्रय विषयक पद भी काफी बड़े हैं । इनमे से कई बड़े पदो को हरिराय जी की स्वतंत्र रचना ही समझिये ।

श्री हरिराय जी के पदों की सबसे अधिक उल्लेखनीय बात उनकी नाम-छाप है । यह छाप कई प्रकार से मिलती है, जिसके मुख्य रूप रसिक, रसिक प्रीतम, रसिकराय, रसिक शिरोमणि, रसिकदास और हरिदास है । इनसे ज्ञात होता है कि उनकी मुख्य नाम-छाप 'रसिक' है । रसिक प्रीतम, रसिकराय, रसिक शिरोमणि, रसिकदास 'रसिक' के ही विविध रूप हैं । नाभा जी कृत 'भक्तमाल' में स्वामी हरिदास से संबंधित जो छप्पय दिया गया है, उसमें स्वामी जी की छाप 'रसिक' बतलाई गई है[1]; किंतु उनके ध्रुपदों में से किसी में भी यह छाप नहीं मिलती है । नाभा जी ने परमानंददास की भी 'सारंग' छाप बतलाई है[2], किंतु उनका भी कोई पद इस छाप का नही मिलता है । ऐसी स्थिति में नाभा जी का 'छाप' से क्या अभिप्राय है, समझ में नहीं आता । स्वामी हरिदास जी की बजाय गो० हरिराय जी के पदों में 'रसिक' छाप अवश्य मिलती है, और उन्होने 'हरिदास' के नाम से भी रचनाएँ की हैं । इसलिए यह कहा जा सकता है कि नाभा जी के उक्त छप्पय का संबंध संभवतया गो० हरिराय जी से होगा । किंतु इस प्रकार की कल्पना सर्वथा असंगत है । उक्त पद में स्पष्ट रूप से स्वामी हरिदास जी का कथन हुआ है; जब कि 'भक्तमाल' में श्री हरिराय जी का नामोल्लेख भी नही है, क्यों कि वे नाभा जी के परवर्ती थे ।

---

१. नृपति द्वार ठाढे रहैं, दरसन आसा जास की ।
आसुधीर उद्योत कर, 'रसिक' छाप हरिदास की ॥६१॥

२. 'सारग' छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत ।
व्रजबपू रीति कलियुग विपै, परमानंद भयौ प्रेम-केत ॥७४॥

इस पुस्तक में संकलित ७०० पदों का विभाजन नाम-छापों के अनुसार इस प्रकार होता है--

विषय	रसिक प्रीतम	रसिक	रसिक राय	रसिक शिरोमणि	रसिक-दास	हरि-दास	अन्य	विना नाम	जोड़
१. कृष्ण-लीला	२९९	१२६	२५	७	२४	८	९	२	५००
२. उत्सव-त्योहार									
३. संप्रदाय संबंधी	१३	७०	४	४	४१	१०	५	–	१४७
४. विनय	२	११	–	१	२	५	–	३	२४
५. अन्य पद	२	२	–	–	–	१८	२	५	२९
जोड़—	३१६	२०९	२९	१२	६७	४१	१६	१०	७००

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक पद 'रसिक प्रीतम' और 'रसिक' की छाप के है, जिनकी संख्या क्रमशः ३१६ और २०९ है। 'रसिकदास' छाप के पद अधिकतर संप्रदाय संबंधी हैं और 'हरिदास' छाप के पद गुजराती और संस्कृत भाषाओं के हैं। अन्य छापों के केवल १६ पद हैं। इनमें ४ 'हरिराय' के, ३ 'हरिजन' के, ३ 'हरि' के, ४ 'रसनिधि' के तथा १-१ 'प्रीतम' और 'दास' छापों के हैं। १० पद विना नाम के भी है, जिनमें से ५ संस्कृत के हैं। इस पुस्तक के पदों की सभी नाम-छाप गो० हरिराय जी की ही हैं। इसका निश्चय हरिराय जी कृत पदों की परंपरागत संकलन-पोथियों तथा संप्रदाय के प्रामाणिक ग्रंथों से होता है।

उक्त नाम-छापों में से केवल 'रसिकदास' छाप के संबंध में कुछ दुविधा है। कारण यह है कि यह छाप गो० हरिराय जी के परवर्ती गो० गोपिकालंकार उपनाम 'मट्टू जी' की भी है। स्वयं हरिराय जी की जन्म-वधाई के जो पद 'रसिकदास' छाप के मिलते हैं, वे हरिराय जी के

बजाय उक्त भट्टूजी के ही रचे हुए हो सकते है। यहाँ पर यह शंका की जा सकती है कि इस पुस्तक में संकलित 'रसिकदास' छाप के सभी पद उक्त भट्टूजी के भी तो हो सकते हैं ! इस संबंध में हमारा निवेदन है कि इस छाप के सबसे अधिक पद संप्रदाय संबंधी पदों में आचार्यो की बधाई के हैं। इनमें से कुछ पद उक्त भट्टूजी के भी हो सकते है; क्यों कि बधाई विषयक पद उन्ही के रचें हुए अधिक संख्या मे मिलते है । बधाई के अतिरिक्त 'रसिकदास' छाप के अन्य पद अधिकतर गो० हरिराय जी कृत ही मालूम होते हैं। कारण यह है कि उनकी नाम-छापों में 'रसिकराय' और 'रसिकदास' छाप भी है, जिनका उल्लेख पद सं० ५४८ की अंतिम पंक्ति से इस प्रकार हुआ है–" 'रसिकराय' विनती कीन्ही, 'रसिकदास' छाप दीन्ही, श्री वल्लभ रटत हिएँ और पंथ त्यागे ।।" 'रसिकदास' छाप के ६७ पदों में से कितने पद गो० हरिराय जी के और कितने गो० भट्टूजी के है, इसे निश्चय पूर्वक अभी कहना कठिन है। भविष्यत् अनुसंधान से ही इसका निर्णय हो सकेगा । इस पुस्तक में वे सभी पद इस अभिप्राय से दिये गये है कि अनुसंधान-प्रिय विद्वानों को उन पर सामूहिक रूप से विचार करने में सुविधा हो सके।

गो० हरिरायजी की समस्त रचनाएँ श्री बल्लभाचार्य जी के भक्ति-सिद्धांत और सेवा-विधि के विवेचन एवं स्पष्टीकरण के लिए निर्मित हुई है। प्रस्तुत पदों में भी उनका वही दृष्टिकोण दिखलाई देता है । इसके कारण इन पदों में काव्य-रस का अधिक उभार न होना स्वाभाविक ही था। फिर भी अनेक पद इस दृष्टि से भी कम महत्त्व के नहीं हैं । हम यहाँ पर कुछ ऐसे ही पदों की ओर संकेत करना उचित समझते है। स्थानाभाव से उनका विस्तृत विवेचन करना संभव नही है।

सर्व प्रथम कृष्ण-लीला के पदों को ही लीजिये। उनमें से अनेक पद काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। पलना-झूलन के सं० २० के पद में उत्प्रेक्षाओं की विचित्र बहार है । सं० २८ और २९ में विनोदपूर्ण वात्सल्य तथा सं० ३८ में बाल सुलभ चापल्य का अच्छा चित्रण हुआ है।

दाम्पत्य प्रेम और युगल विहार विषयक सं० १३४ से १५५ तक के तथा सुरतांत विषयक सं० १६५ से १६८ तक के पद दिव्य शृंगार रस से ओतप्रोत है। ब्रजबालाओं की आसक्ति के पद अनुराग के अनुपम उदाहरण हैं। इनमें सं० १७५, १८०, १८७, १९०, १९५, २०२, २०५ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। मान और विरह के पदों में संयोग और वियोग के अच्छे शब्द-चित्र मिलते हैं। विरह विषयक बहुसंख्यक पदो मे से सं० ३०४, ३०५, ३०८ के पदों का हृदयस्पर्शी कथन ही नमूने के लिए पर्याप्त है। उत्सव-त्यौहार विषयक पदों से सर्व प्रथम साँझी के और फिर होली के पद काव्य-चमत्कार के उत्तम उदाहरण हैं। सं० ४०३ के लंबे पद में उत्प्रेक्षाओं और उपमाओं के धारावाही प्रवाह के साथ होली-खेल का अद्भुत वर्णन हुआ है। श्रावण विषयक सं० ४४५, ४४६, ४५६, ४५८, ४६९, ४७१, ४८१ के पदों मे प्रिया-प्रियतम के उत्साहपूर्ण झूलन, उनकी सरस भाव-भंगिमा और प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोरम कथनकिया गया है।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इस संकलन के पद जिन प्रतियों से लिए गये हैं, उनका पाठ अत्यंत अशुद्ध और अस्पष्ट था। अशिक्षित लिपिकों ने उन पदों को इतना भ्रष्ट कर दिया है कि कवि के अभिप्राय की रक्षा करते हुए उन्हें पढने योग्य बनाना एक विकट समस्या बन गई है। इसी के समाधान के लिए उन पदो को कई बार परिश्रम पूर्वक लिखा गया और उनके पाठ-सशोधन मे बड़ी मगज़-पच्ची करनी पड़ी। फिर भी अनेक पदों में शंका रह ही गई है। संस्कृत भाषा के पद और भी अधिक भ्रष्ट रूप में मिले। उन्हे शुद्ध रूप में देना संभव ही नही था, अत. कुछ साधारण से संशोधन के उपरांत उन्हे उसी रूप में प्रकाशित किया है, ताकि श्री हरिराय जी की ये लुप्तप्राय रचनाएँ सुरक्षित तो हो सकें।

इस संकलन के लिए हस्त लिखित प्रतियों की सुविधा प्रदान करने के निमित्त हम मथुरा संग्रहालय के अधिकारियों और श्री रतनलाल जी गोस्वामी के अत्यंत अनुगृहीत है।

मकर संक्रांति, सं० २०१८ —प्रभुदयाल मीतल

गो० श्री हरिराय जी

जन्म सं० १६४७] ● [देहावसान सं० १७७२

गो. हरिराय जी का पद साहित्य

गो० हरिराय जी की जीवनी

महत्त्व—

भारतवर्ष के जिन धर्माचार्यों ने अपने भक्ति-भाव, ज्ञान-गौरव और उज्ज्वल चरित्र से यहाँ के जन-जीवन को उन्नत बनाने के अतिरिक्त अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं से इस देश के साहित्य को भी समृद्ध किया है, उनमें बल्लभ संप्रदायी गोस्वामी हरिराय जी का नाम उल्लेखनीय है। बल्लभ संप्रदाय में तो उनका महत्व सर्वश्री बल्लभाचार्य जी, विट्ठलनाथ जी और गोकुलनाथ जी के पश्चात् सब से अधिक माना जाता है। जहाँ तक केवल साहित्य-सृजन का संबध है, हरिराय जी का स्थान बल्लभ सप्रदायी आचार्यों में ही नही, बल्कि भारतवर्ष के अन्य धर्माचार्यों की भी अग्रिम पंक्ति मे रखा जा सकता है। रचना-परिमाण और ग्रंथ-संख्या की दृष्टि से इस देश के इने-गिने समर्थ साहित्यकार ही उनकी समता कर सकते है।

मध्यकालीन हिंदी (ब्रजभाषा) साहित्य के दो समर्थ निर्माता महात्मा सूरदास और चाचा वृंदाबनदास भी अपने रचना-बाहुल्य के लिए विख्यात है; किंतु गोस्वामी हरिराय जी से उनकी तुलना करना उचित न होगा। महात्मा सूरदास और चाचा वृंदाबनदास ने केवल ब्रजभाषा के काव्य-साहित्य को ही समृद्ध किया है, जब कि श्री हरिराय जी ने ब्रजभाषा के साथ ही साथ सस्कृत भाषा को, तथा काव्य - साहित्य के साथ ही साथ गद्य-साहित्य को भी अपनी महत्वपूर्ण देन दी है। इसके अतिरिक्त

उन्होंने गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं में भी अनेक रचनाएँ की है। इन सब भाषाओं में रचे हुए उनके गद्य-पद्यात्मक छोटे-बड़े ग्रंथों की सख्या २५० के लगभग है। इसी से उनके अनुपम साहित्य-सामर्थ्य का अनुमान किया जा सकता है।

इतिहास की अपूर्णता और त्रुटियाँ—

आश्चर्य की बात है, हिंदी के ऐसे महान् साहित्कार का समुचित महत्व हिंदी साहित्य के इतिहास मे वर्णित नही है! आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डा० श्यामसुंदरदास कृत हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहास ग्रंथों में उनका नामोल्लेख भी नही हुआ है। सर्वश्री मिश्रबधु, डा० रसाल, डा० रामकुमार वर्मा और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की विख्यात रचनाओं में उनका नाम अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण सूचना के साथ लिखा गया है।

सर्वश्री मिश्रबंधुओं ने गो० हरिराय जी के जीवन-वृत्तांत के संबध मे एक शब्द भी न लिख कर उनकी कतिपय वार्ता पुस्तकों का नामोल्लेख मात्र किया है, जो अशुद्ध और अपूर्ण है। उन्होने हरिराय जी का रचना-काल भी ठीक नही लिखा है[1]।

डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपने इतिहास के 'भक्ति-काल में गद्य-रचना' शीर्षक के अंतर्गत गो० विट्ठलनाथ, नंददास और गोकुलनाथ जी के गद्य ग्रंथों का उल्लेख करते हुए यह 'नोट' लिखा है—

जान पड़ता है कि वार्ता लिखने की शैली सी चल पड़ी थी, क्यों कि इसी प्रकार की वार्ताएँ श्री हित हरि जी ने भी लिखी है। उक्त ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में हैं[2]।

---

१. मिश्रबधु विनोद (प्रथम संस्करण) पृ० ३५७

२. डा० रसाल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', प्र०संस्करण, पृ. ३७४

यहाँ पर 'हित हरि जी' से डा० रसाल का अभिप्राय कदाचित हरिराय जी से ही ज्ञात होता है। श्री हरिराय जी ने रसिक, रसिकप्रीतम, रसिकराय, हरिदास, हरिधन आदि कई उपनामों से रचनाएँ की है; किंतु उनका 'हित हरि' नाम हमारे देखने में नहीं आया है। 'हित' विशेषण विशेषतया राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हरिवंश जी के लिए और साधारणतया सभी राधावल्लभीय आचार्यों के लिए प्रयुक्त होता है। इसलिए रसाल जी द्वारा उल्लिखित 'श्री हित हरि जी' से भी किसी राधावल्लभीय आचार्य का भ्रम हो सकता है। गो० विट्ठलनाथ और नंददास को ब्रजभाषा गद्य का लेखक मानना भी भ्रमात्मक है। इसके साथ ही यदि वार्ता-लेखन को ब्रजभाषा गद्य की कोई विशिष्ट शैली माना जाय, तो गो० हरिराय जी स्वयं उस शैली के निर्माता थे, न कि अनुयायी। अब यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि ब्रज-भाषा गद्य-लेखक के रूप में जो श्रेय गोकुलनाथ जी को दिया जाता है, उसके वास्तविक अधिकारी श्री हरिराय जी है।

डा० रामकुमार वर्मा और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की विख्यात रचनाओं में सूरदास जी की जीवनी के मूलाधार 'भाव प्रकाश' के रचयिता रूप में श्री हरिराय जी का नामोल्लेख मात्र हुआ है[1]। इसके अतिरिक्त उन ग्रंथों में न तो हरिराय जी के जीवन-वृत्तांत तथा उनके प्रचुर साहित्य के संबंध में कुछ लिखा गया है और न हिंदी गद्य के विकास में 'भाव प्रकाश' तथा हरिराय जी कृत बहुसंख्यक वार्ता ग्रंथों का मूल्यांकन ही किया गया है।

---

१. डा० रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (तृतीय संस्करण) पृ० ५२१ और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'हिंदी साहित्य' (प्रथम संस्करण) पृ० १७३

इससे प्रकट होता है कि हिंदी साहित्य के सर्वमान्य इतिहासकारों को श्री हरिराय जी और उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं से भली भाँति परिचय नहीं है। इस कमी की ओर इंगित करते हुए हमने अब से प्रायः १४ वर्ष पूर्व अपने ग्रंथ 'अष्टछाप परिचय' के प्रथम संस्करण में ही श्री हरिराय जी के जीवन-वृत्तांत और उनके वार्ता-साहित्य पर प्रकाश डाला था। इस अवधि में हिंदी साहित्य के अनेक छोटे-बड़े इतिहास और आलोचना विषयक ग्रंथ प्रकाशित हो गये तथा कई शोध-प्रबंध भी लिखे गये; किंतु उनमें से किसी मे भी श्री हरिराय जी के जीवन-वृत्तांत और उनके साहित्य का समुचित उल्लेख करने का प्रयास नही किया गया है।

भारतीय हिंदी परिषद् के नव प्रकाशित 'हिंदी साहित्य'-द्वितीय खंड में हिंदी भक्ति साहित्य का विस्तृत विवेचन हुआ है, किंतु उसमें गो० श्री हरिराय जी के संबंध में केवल ६½ पंक्तियाँ लिख कर ही संतोष कर लिया गया है और इस अध्याय के 'परिशिष्ट' में जो 'कृष्ण-भक्ति साहित्य की सूची' दी गई है, उसमें उनकी दर्जनों रचनाओं में से किसी का भी नामोल्लेख नहीं किया गया है।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, वल्लभ संप्रदाय में श्री हरिराय जी का नाम सर्वश्री वल्लभाचार्य जी, विट्ठलनाथ जी और गोकुलनाथ जी के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध है, किंतु उनके जीवन-वृत्तांत से संबधित कोई प्राचीन ग्रंथ वहाँ भी उपलब्ध नहीं होता है। हरिराय जी कृत वार्ताएँ, शिक्षा-पत्र और कीर्तन के पदों के अंतःसाक्ष्य से तथा गोकुलनाथ जी के वचनामृत और विट्ठलनाथ भट्ट कृत 'संप्रदाय कल्पद्रुम' के बहिःसाक्ष्य से उनके जीवन के कुछ सूत्र उपलब्ध होते है; जिनका परिचय

बल्लभ संप्रदायी कतिपय अध्ययनशील व्यक्तियों को ही है। शायद इसी कारण हिंदी साहित्य के विद्वान लेखकों को भी हरिराय जी के संबंध में अधिक जानकारी नहीं है। बल्लभ संप्रदाय के विशिष्ट विद्वान श्री द्वारकादास परीख ने गुजराती भाषा में श्री हरिराय जी की विस्तृत जीवनी लिखी और हमने हिंदी भाषा में 'अष्टछाप-परिचय' द्वारा उनकी जीवनी और रचनाओं पर कुछ प्रकाश डाला है। ऐसा जान पड़ता है, हिंदी साहित्य के माननीय विद्वानों ने उक्त रचनाओं का समुचित उपयोग नहीं किया।

वंश-परिचय और जन्म—

श्री हरिराय जी गोसाईं विट्ठलनाथ जी के प्रपौत्र और गो० कल्याणराय जी के पुत्र थे। उनका जन्म सं० १६४७ की भाद्रपद (गुर्जर) कृ० ५ को ब्रज के गोकुल ग्राम में हुआ था। श्री हरिराय जी के समय में गोकुल बल्लभ संप्रदाय का प्रधान केन्द्र था। गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों, उनके वंशजों तथा सेव्य स्वरूपों के कारण वह बल्लभ संप्रदायी भक्तजनों का प्रमुख तीर्थ स्थल बना हुआ था। ऐसी पुण्य भूमि के धार्मिक वातावरण में श्री हरिराय जी का जन्म होकर उनकी जीवन-चर्या का आरंभ हुआ था।

शिक्षा-दीक्षा—

श्री हरिराय जी जब आठ वर्ष के हुए, तब कुल-रीति के अनुसार गोकुल में उनका यज्ञोपवतीत संस्कार किया गया था। उस समय गोसाईं विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी विद्यमान थे। कुटुंब में सर्वाधिक वयोवृद्ध होने के कारण बटुक को ब्रह्म-संबंध की दीक्षा देने का अधिकार उनको ही था;

किंतु उन्होंने अपने अनुज श्री गोकुलनाथ जी को आदेश दिया कि वे बटुक हरिराय को ब्रह्म-संबंध की दीक्षा दे । इस प्रकार गो० गोकुलनाथ जी श्री हरिराय जी के दीक्षा-गुरु थे । हरिराय जी ने शिक्षा भी उनसे ही प्राप्त की थी ।

गो० गोकुलनाथ जी सुप्रसिद्ध गोसाईं विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र थे । वे अपनी प्रकांड विद्वत्ता और अनुपम भक्ति-भावना के कारण अपने समय में ही वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख व्याख्याता के रूप मे विख्यात हो गये थे । उनके शिक्षण और सत्संग से श्री हरिराय जी भी वल्लभ संप्रदायी सिद्धांत और साहित्य के प्रमुख विद्वान हुए थे । वे आरभ से ही गो० गोकुलनाथ जी के संपर्क मे रहे थे, अतः उनकी जीवनचर्या, भक्ति-भावना और रचनाओ का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था । वे गो० गोकुलनाथ जी की रचनाओं के विशेषज्ञ और उनके संपादक तथा प्रचारक थे ।

गृहस्थाश्रम—

उनका विवाह २४ वर्ष की आयु में हुआ था । उनकी धर्मपत्नी का नाम सुंदरवंता वहू जी था । उनके चार पुत्र हुए थे । उनके नाम गोविंद जी, विट्ठलराय जी, छोटा जी और गोरा जी थे । उनके छोटे भाई का नाम गोपेश्वर जी था ।

यात्राएँ और बैठक—

श्री हरिराय जी का अधिकांश जीवन यद्यपि गोकुल, गोवर्धन आदि व्रज के वल्लभ संप्रदायी केन्द्रों मे निवास करते हुए बीता था, तथापि वे समय-समय पर देशव्यापी यात्राएं भी किया करते थे । उन यात्राओं में उन्होंने वल्लभ संप्रदायी सिद्धांत, भक्ति, उपासना और सेवा-विधि का व्यापक प्रचार करने के साथ ही

साथ सर्वश्री बल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी के शिष्य-सेवकों की जीवन-गाथाओं की शोध का महत्वपूर्ण कार्य भी किया था। उनके अन्वेषण से उपलब्ध तथ्यों का उल्लेख उनकी रची हुई वार्ताओं में किया गया है।

अपनी यात्राओं में प्रवचन और प्रचार के निमित्त उन्होंने जिन स्थानों में दीर्घकालीन निवास किया था, वहाँ उनकी 'बैठक' बनी हुई हैं। ये बैठकें अधिकतर ब्रज, राजस्थान और गुजरात में है। इनसे ज्ञात होता है कि हरिराय जी ने उक्त प्रदेशों की विशेष रूप से यात्राएँ की थीं। उन बैठकों में ७ मुख्य है, जो निम्न स्थानों मे बनी हुई है—

१. गोकुल, २. सांवली, ३. डाकोर, ४. जंबू, ५. जैसलमेर, ६. नाथद्वारा और ७ खिमनौर।

ब्रज से निष्क्रमण—

मुगल सम्राट औरगजेब ने धर्मांधता के वशीभूत होकर सं० १७२६ में ब्रज के विख्यात देवालयों को नष्ट-भ्रष्ट करने की अनुचित आज्ञा प्रचारित की थी। उसके फल स्वरूप मथुरा के ठाकुर श्री केशवदेव जी का भारत प्रसिद्ध विशाल मंदिर तोड़ा गया तथा वृंदाबन, गोकुल और गोबर्धन के बड़े मंदिर नष्ट-भ्रष्ट किये गये। उस सकट काल मे ब्रज के बल्लभवंशीय गोस्वामीगण गोकुल-गोबर्धन के स्थायी निवास का परित्याग कर अपने सेव्य स्वरूप और कतिपय धार्मिक ग्रंथों सहित विभिन्न हिंदू राज्यों में पलायन करने के लिए बाध्य हुए थे। बल्लभ संप्रदाय का सर्वमान्य श्रीनाथ जी का देव-विग्रह भी गुप्त रीति से उसी काल में गोबर्धन से मेवाड़ ले जाया गया, जो अभी तक वहाँ के श्रीनाथद्वारा नामक स्थान में विराजमान है। सं० १७२६ की आश्विन शुक्ला १५

शुक्रवार की रात्रि को श्रीनाथ जी का रथ गोवर्धन से चला था। उसके साथ कतिपय गोस्वामी गण अत्यंत आवश्यक सामान लिए थे। वे लोग गुप्त रीति से विभिन्न हिंदू राज्यों का चक्कर काटते हुए मेवाड़ के सिहाड़ नामक स्थान मे जा पहुँचे। वहाँ पर मंदिर बनवा कर उसमें सं० १७२८ की फाल्गुन कृष्णा ७ शनिवार को श्रीनाथ जी पधराये गये। इस प्रकार उन्हें गोवर्धन से हटा कर और सिहाड़ के मंदिर में विराजमान कराने तक २ वर्ष ४ महीना ७ दिन का समय लगा था। उस काल में निष्कापित गोस्वामी गण को नाना प्रकार के संकट सहन करने पड़े थे; किंतु वे अपने आराध्य देव श्रीनाथ जी को सुरक्षित स्थान मे ले जाने में सफल हो गये।

उस ऐतिहासिक यात्रा में श्रीनाथ जी ने जिन स्थानों में अस्थायी निवास किया था, वहाँ पर उनकी 'चरण-चौकियाँ' बनी हुई हैं। उस यात्रा का विस्तार पूर्वक वर्णन हरिराय जी कृत श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में किया गया है। मेवाड़ का वह अप्रसिद्ध सिहाड़ ग्राम श्रीनाथ जी के मंदिर के कारण 'श्रीनाथद्वारा' नाम से अब समस्त भारतवर्ष में विख्यात है।

श्रीनाथ जी के अतिरिक्त गोकुल से जो देव-विग्रह मेवाड़ ले जाये गये थे, उनमें हरिराय जी के सेव्य स्वरूप श्री विट्ठलनाथ जी थे, तथा श्री द्वारिकाधीश जी और श्री नवनीतप्रिय जी भी थे। श्री विट्ठलनाथ जी को मेवाड़ के खिमनौर ग्राम मे सं० १७२७ के कार्तिक में पधराया गया था। श्री द्वारकाधीश जी इससे पहले ही भाद्रपद शु० ७ को मेवाड़ पहुँच चुके थे। इस प्रकार श्री हरिराय जी अन्य गोस्वामियों सहित ब्रज से बहुत दूर मेवाड़ में निवास करने लगे।

जीवन-अवधि और देहांत—

श्री हरिराय जी अपने जन्म-काल से सं० १७२६ तक ब्रज में और फिर अपने देहावसान-काल तक मेवाड़ मे रहे थे। जिस समय वे वहाँ पहुँचे, उस समय उनकी आयु ८० वर्ष के लगभग थी। उनके जीवन के अंतिम ४५ वर्ष मेवाड़ में बीते थे। उनकी अनेक रचनाएँ, जिनमें भावनात्मक वार्ताएँ मुख्य है, उसी काल में लिखी गई थी। उनका देहावसान १२५ वर्ष की पूर्णायु होने पर सं० १७७२ में मेवाड़ के खिममौर ग्राम हुआ था। वहाँ पर बावड़ी के ऊपर उनकी छत्री बनी हुई है।

उनके देहावसान के अनंतर मेवाड़ के राणा की सहायता से ठाकुर श्री विट्ठलनाथ जी को सिहाड़ के पास खेड़ा नामक स्थान में पधराया गया था। वहाँ पर उनका मंदिर भी बनवाया गया था।

शिष्य-सेवक —

श्री हरिराय जी के अनेक शिष्य, सेवक और भक्त थे। उनमें से विट्ठलनाथ भट्ट, हरजीवनदास, प्रेमजी और शोभा माजी के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। विट्ठलनाथ भट्ट ने हरिराय जी के मुख से सुन कर बल्लभ सप्रदायी आचार्यों और शिष्य-सेवकों की जीवन-गाथाओ का विशद ज्ञान प्राप्त किया था। उसे उन्होंने अपने 'संप्रदाय कल्पद्रुम' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ में व्यक्त किया है। इस ग्रंथ की रचना ब्रजभाषा पद्य में हुई है और वह किशनगढ़ के राजा मानसिंह के लिए रचा गया था। इसका उल्लेख विट्ठलनाथ भट्ट ने इस प्रकार किया है—

स्रवन सुन्यौ हरिराय मुख, करन लिख्यौ नृप मान।
उदित संप्रदाय कल्पद्रुम, मम कृति छंद सुजान॥

'संप्रदाय कल्पद्रुम' की रचना से पहिले वल्लभ संप्रदायी ग्रंथों में तिथि-संवत् सहित घटनाएँ वर्णित नहीं हुई थी। इस ग्रंथ मे वल्लभ सप्रदायी आचार्यो और उनके शिष्य-सेवकों का तिथि-संवत् सहित वृत्तांत सर्व प्रथम लिखा गया, जो वल्लभ सप्रदाय के आरंभिक इतिहास जानने के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें उल्लिखित कतिपय तिथि-सवत् अशुद्ध है, जो इसके रचयिता की असावधानी के द्योतक है। ऐसा जान पड़ता है, ग्रंथकार ने अपने से पूर्व की तिथियाँ निर्धारित करने में विशेप सावधानी से काम नहीं लिया, किंतु उसके समय के तिथि-सवत् प्रायः शुद्ध है।

वंश-परंपरा और गद्दियाँ—

श्री हरिराय जी के चारों पुत्र सर्वश्री गोविद जी, विट्ठलराय जी, छोटा जी और गोरा जी का असमय में ही देहावसान हो गया था। इससे वल्लभ संप्रदाय के द्वितीय गृह की मूल परंपरा श्री हरिराय जी के पश्चात् समाप्त हो गई थी। श्री हरिराय जी के वश को चलाने के लिए उनकी वहूजी ने प्रथम गृह के तिलकायत दामोदर जी (वड़े दाऊजी) के द्वितीय पुत्र गिरिधर जी (जन्म सवत् १७४५) को गोद ले लिया था। वे ही श्री हरिराय जी के पश्चात् उनकी गद्दी के अधिकारी और द्वितीय गृह के प्रतिनिधि हुए थे। श्री हरिराय जी के देहावसान के समय श्री गिरिधर जी की आयु २७ वर्ष के लगभग थी। द्वितीय गृह के प्रतिनिधि स्वरूप श्री हरिराय जी के वशजों की गद्दियाँ नाथद्वारा, इंदौर, वंबई (लाल वावा) और नड़ियाद मे है।

रचनाएँ —

श्री हरिराय जी का सर्वाधिक महत्व उनके प्रचुर साहित्य और बहुसंख्यक ग्रंथों के कारण है। उनके समय के धर्माचार्यगण संस्कृत की विशेष योग्यता प्राप्त कर उक्त भाषा में अध्ययन, मनन और ग्रंथ-रचना करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते थे। बल्लभ संप्रदाय के आचार्य भी संस्कृत के प्रकांड पंडित और सुप्रसिद्ध ग्रंथकार थे। उनमें सर्व श्री बल्लभाचार्यजी और विट्ठलनाथ जी के नाम अपनी अपूर्व विद्वता और महत्व-पूर्ण रचनाओं के कारण विख्यात है। श्री हरिराय जी भी अपने उन गौरवशाली पूर्वजों की परंपरा में संस्कृत के अद्वितीय विद्वान थे। उन्होने उक्त भाषा में जितने ग्रंथों की रचना की है, उतनी बल्लभ सप्रदाय ही नही, वरन् किसी भी संप्रदाय के धर्माचार्य ने शायद ही की हो। श्री द्वारकादास परीख ने उनकी १६६ संस्कृत रचनाओं की सूची इस प्रकार दी है[1]—

१. मार्ग स्वरूप निर्णय, २. स्वमार्गीय कर्तव्य निरूपण, ३. स्वमार्गीय साधन रहस्य, ४. भक्तिमार्ग पुष्टिमार्गत्व निश्चय, ५. भक्ति द्वैविध्य निरूपण, ६. स्वमार्गीय भक्ति द्वैविध्य विवेक, ७. स्वमार्गीय मुक्ति द्वैविध्य निरूपण, ८. स्वमार्गीय सेवाफल रूप निरूपण, ९. पुष्टिमार्गीय स्वरूप निरूपण, १०. स्वमार्गीय स्वरूप स्थापन प्रकार, ११. श्रीमत्प्रभोश्चिंतन प्रकार, १२ स्वमार्गीय शरण समर्पण सेवादि निरूपण, १३. पुष्टि पथ मर्म निरूपण, १४. पुष्टिमार्ग लक्षणानि, १५. ब्रह्म सबंध वाक्य कठिनांश विवेचनम्, १६. अष्टाक्षर मत्र पूर्व पक्ष निर्यास, १७ स्वमार्ग मर्यादा निरूपण, १८. स्वमार्ग रहस्य निरूपण, १९. मधुराष्टक

---

१. श्री हरिराय जी महाप्रभु नुं जीवन चरित्र (गुजराती) पृ. १६०-१६३

तात्पर्य, २०. सर्वात्मभाव निरूपण, २१. निवेदन तात्पर्यार्थ, २२. स्वमार्ग मूल निरूपण, २३. मूल रूप संशय निराकरण, २४ श्री महाप्रभु प्रागट्य हेतु निर्णय, २५. श्री पुरुषोत्तम स्वरूपाविर्भाव निर्णय, २६ स्वमार्गीय भावना स्वरूप निरूपण, २७ स्वरूप तारतम्य निर्णय, २८. अंतरंग बहिरंग प्रपंच विवेक, २९ भाव साधक बाधक निरूपण, ३० श्री कृष्ण शब्दार्थ निरूपण, ३१. श्रीमत्प्रभोः सर्वांतरत्व निरूपण, ३२ श्रीमत्प्रभोः प्रादुर्भाव प्रकार निरूपण, ३३ भगवत्प्रादुर्भाव सिद्धांत, ३४. प्रभु प्रादुर्भाव विचार, ३५. प्रभु प्रागट्य विचार, ३६ श्रीमत्प्रभोर्वयो निरूपण, ३७ अष्टाक्षर मंत्रार्थ, ३८. गद्यार्थ, ३९. पुष्टि मार्गीय ध्यान प्रकार विवेचन, ४०. जप समये स्वरूप ध्यान, ४१ स्वमार्ग शरणाद्वय निरूपण, ४२. स्वमार्गीय सन्यास वैलक्षण्य निरूपणम्, ४३ जन्म वैफल्य निरूपणाष्टक, ४४. दुःख-संग-विज्ञान-प्रकार निरूपण, ४५ कामाक्ष दोष विवरण, ४६. निष्काम लीला, ४७. बहिर्मुखत्व निरूपण, ४८. बहिर्मुखत्व निवृत्ति, ४९. भगवत्प्रकृति वर्णन, ५०. कथा श्रवण बाधक निर्णय, ५१ सत्संग निर्णय, ५२. गवां स्वरूप वर्णनम्, ५३. कार्पण्योक्ति, ५४. मद त्याग हेतु, ५५. मार्ग शिक्षा, ५६. निजाचार्याष्टक, ५७ बल्लभ पंचाक्षर स्तोत्र, ५८ बल्लभावाष्टक, ५९. प्रभाताष्टक, ६० श्री गोकुलेश सेवान्हिक, ६१. गोकुल चंद्राष्टक, ६२ श्री नवनीत प्रियाष्टक, ६३ भुजग प्रपाताष्टक, ६३. स्मरणाष्टक, ६५ स्व प्रभु विज्ञप्ति, ६६. द्वितीय स्वप्रभु विज्ञप्ति, ६७. श्री कृष्ण चरण विज्ञप्ति, ६८ विज्ञप्ति, ६९. दैन्याष्टक, ७० षोड़श स्तोत्र, ७१. श्री कृष्ण शरणाष्टक, ७२. द्वितीय श्री कृष्ण शरणाष्टक, ७३ पंचाक्षर मंत्र गर्भ स्तोत्र, ७४. भगवच्चरण चिह्न वर्णन, ७५. नैवैद्य संबंधित स्तोत्र, ७६ मध्याह्न लीला,

७७. श्री गोकुल प्रवेश लीला, ७८. प्रमाणिकाष्टकम्, ७९. श्री गिरिधराष्टक, ८०. प्रार्थनाष्टकम् ८१. श्री गोपीजन बल्लभाष्टक, ८२. प्रातः युगल स्मरण, ८३. श्री नागरी नागर स्तोत्रम्, ८४. विपरीत शृंगार फलकम्, ८५. श्री राधाष्टम्, ८६. मुख्य शक्ति स्तोत्र, ८७. स्वामिनी प्रार्थनाष्टक, ८८. श्री यमुना विज्ञप्ति, ८९. श्री बल्लभ शरणाष्टक, ९०. श्री बल्लभ चरण विज्ञप्ति, ९१. दैन्याष्टक, ९२. हा हा दैन्याष्टक, ९३. श्री बल्लभ भावाष्टक, ९४. श्री वैश्वानराष्टक, ९५. श्री मदाचार्य सकलावतार साम्य रूप निरूपणम्, ९६. महाप्रभोः रष्टोत्तर शता नामानि, ९७ श्री मदाचार्य चितनम्, ९८. प्रातः स्मरण, ९९.श्री विठ्ठलेश अष्टोत्तर शत नामानि, १००. श्री गोकुलेश अष्टोत्तर शत नामानि, १०१. श्री गुरुदेवाष्टक, १०२. प्रभु स्वरूप निरूपणाष्टक, १०३. स्व प्रभु विज्ञप्ति, १०४. रसात्मक भाव स्वरूप निरूपण, १०५ चतुःश्लोकी, १०६. भगवदीय परीक्षणम्, १०७. अन्य, १०८. तदीयानां शिक्षणम्, १०९. सिद्धांत संक्षेप निरूपण, ११०. अन्य, १११. अन्य, ११२. स्वमार्ग सर्वस्वम्, ११३ गर्वापहाराष्टक, ११४. राजभोग भावना, ११५. बीटिका समर्पण भाव निरूपण, ११६. स्वतंत्र लेख, ११७. फल विवेक, ११८. भगवतशास्त्र निर्णय, ११९. वाक् चक्षुर्मुख्यत्व निरूपण, १२०. सर्वाभोग्य सुधाधिक्य निरूपण, १२१. चतुर्भुज स्वरूप विचार, १२२. भावपोषकम्, १२३. गोपी वचन दिन-निर्वाहिकम्, १२४. दास्याष्टकम्, १२५. श्री नृसिह बामन जन्मन्तुत्सुव ब्रत वैशिष्ट्य, १२६. श्री भागवत पुस्तक नित्य पूजन विधि, १२७. षट् षष्टि अपराधाः फलानि, तत्प्रायाश्चित्तानि च, १२८. अष्टपदी, १२९. अन्य, १३०. पदानि, १३१, अन्य, १३२. पद्यम्, १३३. अन्य, १३४. गुणसागर, ११५. शिक्षापत्र, १३६. ब्रह्मवाद, १३७. सहस्र

श्लोकी भावना, १३८. अष्ट पदियां, १३६. संस्कृत पद, १४०. सप्तश्लोकी अर्थ, १४१. वैष्णवान्हिक, १४२. सेवा पद्धति, १४३. भक्ति विवेक, १४४, वल्लभप्रादुर्भाव, १४५ दपत्योरेक गुरु शिष्यत्वे दोषाभाव विचार, १४६. भक्ति मार्गे पुष्टिमार्गत्व निश्चय, १४७. भक्ति विधि विवृति, १४८. मधुराष्टक तात्पर्य, १४६. विट्ठलनाथाष्टक, १५०. गोविंदाष्टक, १५१. त्वदीयाष्टक, १५२. निरूपणाष्टक, १५३. शून्यवाद, १५४. हरि शरणाष्टक, १५५. सर्वोत्तम टीका, १५६. षष्टि पूजन, १५७. मार्गानुक्रम ध्यान, १५८. गोकुलेश विज्ञप्ति, १५६. गोकुलेशाष्टक, १६०. सेव्य असेव्य स्वरूप भेद निरूपण, १६१ भगवत्स्तुति, १६२. त्वदीयत्व सिद्धि, १६३. ममोत्तमे श्लोक व्याख्या, १६४. निज सिद्धांत रहस्य, १६५ छप्पन भोग विधान, १६६. श्री कल्याणराय अष्टोत्तर शत नामानि ।

उपर्युक्त ग्रंथ-सूची में 'अष्टक'–'स्तोत्र' आदि छोटी रचनाओं की संख्या निश्चय ही बहुत अधिक है; किंतु उनकी मझोली और बडी रचनाएँ भी कम नही है। उनमे 'शिक्षापत्र' नामक रचना का वल्लभ सप्रदाय में अत्यधिक प्रचार है। इस सप्रदाय के अनेक श्रद्धालु भक्त जन इसका प्रति दिन पाठ करते है। इस ग्रंथ मे हरिराय जी के ४१ पत्र है, जिनकी श्लोक सख्या प्राय. ६१३ है। उन पत्रो को उन्होंने गुजरात प्रदेश से अपने छोटे भाई श्री गोपेश्वर जी को लिखा था। उस समय पत्नी के असामयिक निधन के कारण गोपेश्वर जी अत्यंत शोकाकुल और उद्विग्न थे। उन्हें सांत्वना देकर कर्त्तव्य-पथ का वोध कराने के लिए वे पत्र अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए थे। इन पत्रों में सर्वश्री वल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी की शिक्षाओं

का समवेश होने से 'शिक्षा पत्र' को बल्लभ संप्रदाय का सिद्धांत ग्रंथ कहा जा सकता है। इस पर श्री गोपेश्वर जी कृत ब्रजभाषा टीका भी उपलब्ध है।

श्री हरिराय जी के समय मे संस्कृतज्ञ विद्वान 'भाषा' में रचना करना अनावश्यक ही नहीं, बल्कि अपने लिए अपमान-जनक भी समझते थे। गो० गोकुलनाथ जी ने इसके विरुद्ध वार्ताओं की रचना कर ब्रजभाषा गद्य के प्रचार और प्रसार का मार्ग-प्रदर्शन किया था और श्री हरिराय जी ने उनका भली भाँति अनुकरण किया था।

गो० गोकुलनाथ जी बल्लभ संप्रदाय के विशिष्ट विद्वान होने के साथ ही साथ सुप्रसिद्ध व्याख्याता और प्रभावशाली वक्ता भी थे। वे बल्लभ संप्रदायी सिद्धांत ग्रंथों की व्याख्या और सुबोधिनी की कथा के अनंतर सर्वश्री बल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी के शिष्य-सेवकों की जीवनियों के मार्मिक प्रसंगों का कथन भी किया करते थे। बल्लभ संप्रदायी भक्त-जनों की पावन जीवनचर्या विषयक गोकुलनाथ जी के वे प्रवचन इतने रोचक और शिक्षाप्रद होते थे। कि श्रोतागण उन्हें बड़ी श्रद्धापूर्वक सुना करते थे। गोकुलनाथ जी के अंतरग सेवक और लिपिक, जिनमें कल्याण भट्ट प्रमुख थे, उन मौखिक प्रवचनों को लिख लेते थे। इस प्रकार के लिपिबद्ध विवरण 'वचनामृत' के नाम से विख्यात है। गोकुलनाथ जी के वे वचनामृत उनके नाम से प्रसिद्ध वार्ताओं के मूल रूप है। इस प्रकार की मौखिक रचनाओं में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' विशेष प्रसिद्ध है। उन वचनामृतों के लिखित रूप में प्रचार होने के बहुत दिनों बाद श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी के तत्त्वावधान और निरीक्षण

में उनका सकलन, संपादन और वर्गीकरण करते हुए यत्र-तत्र उनके नाम का भी समावेश किया था। इस प्रकार उन वार्ताओं के कर्त्ता रूप में गो० गोकुलनाथ जी का नाम प्रसिद्ध हुआ। गोकुलनाथ जी उन वार्ताओं के कर्त्ता और वक्ता अवश्य थे; किंतु उनके लेखक और संपादक श्री हरिराय जी ही थे।

गोकुलनाथ जी कृत वार्ताओ के संकलन, संपादन और वर्गीकरण के अतिरिक्त उनके प्रसंगो की पूर्ति और गूढ़ भावों के स्पष्टीकरण के लिए श्री हरिराय जी ने उनमे अपनी 'भाव' नामक टिप्पणियाँ भी लगाई थी। इस प्रकार की सटिप्पण वार्ताएँ भाव प्रकाश युक्त अथवा भावना वाली वार्ताएँ कहलाती है। ये पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। इनकी रचना हरिराय जी के उत्तर जीवन में हुई थी।

श्री हरिराय जी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट ने सं० १७२६ में जिस 'संप्रदाय कल्पद्रुम' ग्रंथ की रचना की थी, उसमें हरिराय जी के संक्षिप्त जीवनवृत्त के साथ उनकी अनेक रचनाओं का भी नामोल्लेख हुआ है, किंतु उसमें 'भाव प्रकाश' का स्पष्ट उल्लेख नही है। इससे ज्ञात होता है कि उसको रचना श्री हरिराय जी के उत्तर जीवन में सं० १७२६ के पश्चात् हुई थी।

'भाव प्रकाश' अथवा 'भावना' वाली वार्ताओं से जहाँ सांप्रदायिक भक्ति, उपासना और सेवा विषयक गूढ़ रहस्यों के स्पष्टीकरण के लिए लोक-भाषा के उपयोग का महत्व बढ़ा, वहाँ भाषा ग्रंथो पर टीका-टिप्पणी लिखने की पद्धति का भी प्रचार हुआ। सभवतः उसी के अनुकरण पर नाभा जी कृत 'भक्तमाल' पर सं० १७८० मे प्रियादास जी ने भाषा-टीका लिखी थी। इसके बाद केशव, बिहारी आदि हिंदी कवियों की रचनाओं पर भी अनेक गद्य-पद्यात्मक टीकाएँ लिखी गई थी।

श्री हरिराय जी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ब्रजभाषा गद्य ग्रंथों और विविध वार्ताओं की रचना करना है, जिसने उन्हें बल्लभ संप्रदाय के साथ ही साथ हिंदी साहित्य में भी अमर कर दिया है। उनके द्वारा रचित विभिन्न प्रकार के ४६ छोटे-बड़े गद्य ग्रंथों की सूची इस प्रकार है—

१. महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्ता, २. श्री गोबर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, ३. निज वार्ता, ४. निज वार्ता (दूसरी), ५. महाप्रभु जी और गुसाइँ जी के स्वरूपन कौ विचार, ६. श्रीनाथ जी के चरन चिन्ह, ७. श्री गोकुलनाथ जी के बैठक चरित्र, ८. शरण मंत्र और व्याख्या, ९. मार्ग शिक्षा, १०. नव ग्रह आचार, ११. वैष्णव नित्य कृत्य, १२. तृतीय घर की उत्सव मालिका, १३. ६४ अपराध वर्णन, १४. रास कौ प्रसंग, १५. बन यात्रा, १६. समर्पण गद्यार्थ, १७. समर्पण गद्यार्थ (दूसरा), १८. जप प्रकार, १९. भगवत स्वरूप निरूपण, २०. दस मर्म भाषा, २१. मार्ग स्वरूप सिद्धांत, २२. पुष्टि दृढ़ाव, २३. द्विदलात्मक स्वरूप विचार, २४. स्फुट वचनामृत, २५. चौरासी वैष्णवन की वार्ता भावनावली, २६. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता भावनावली, २७. महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता भावनावली, २८. निज वार्ता भावना वाली, २९. घरू वार्ता भावना वाली, ३०. सात स्वरूपन की भावना, ३१. सात स्वरूपन की भावना (दूसरी), ३२. चरणचिह्न की भावना, ३३. स्वामिनी चरण चिन्ह भावना, ३४. सात बालकन के स्वरूपन की भावना, ३५. नित्य लीला की भावना, ३६. द्वादश निकुंज की भावना, ३७. बन-यात्रा की भावना, ३८. नवग्रहों की भावना, ३९. श्रीनाथ द्वारे की भावना, ४०. सेवा भावना, ४१. उत्सव भावना, ४२. बसंत होरी की भावना, ४३. उत्सव

भावना, ४४. छप्पन भोग की भावना, ४५. छाक बीरी की भावना, ४६. भावना-त्रय ।

श्री हरिराय जी ने संस्कृत के गद्य-पद्यात्मक तथा व्रज-भाषा के गद्यात्मक विविध ग्रंथों के अतिरिक्त व्रजभाषा काव्य की भी रचनाएँ की है। उनमें निम्न लिखित विशेष प्रसिद्ध हैं—

१. नित्य लीला, २. सनेह लीला, ३. दान लीला, ४. गोवर्धन लीला, ५. दामोदर लीला, ६. स्याम सगाई आदि ।

श्री हरिराय जी कृत 'सनेह लीला' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ रसिकराय कृत 'उद्धव लीला', जनमोहन कृत 'सनेह लीला', मुकुंददास कृत 'सनेह लीला' के नाम से मिलती हैं। रसिकराय तो हरिराय जी का उपनाम है, जो उनकी काव्य रचनाओं में भी मिलता है; किंतु जनमोहन और मुकुंददास निश्चय ही हरिराय जी से भिन्न व्यक्ति थे। ऐसा ज्ञात होता है, उन लोगों ने हरिराय जी कृत 'सनेह लीला' की प्रतिलिपियाँ की थी, जिनके अंत मे उन्होंने अपने नाम भी लिख दिये थे। बाद मे भ्रमवश वे 'सनेह लीला' के रचयिता समझ लिये गये, और उन्हीं के नाम से उक्त ग्रंथों की अन्य प्रतिलिपियाँ होने लगी थी।

श्री हरिराय जी कृत ग्रंथों के विवरण से ज्ञात हो सकता है कि वे वल्लभ संप्रदाय की भक्ति, उपासना और सेवा तथा उसके ज्ञान, विज्ञान और सिद्धांत के वृहत् कोश है। वल्लभ सप्रदाय से संबधित शायद ही कोई विषय हो, जिसका विवेचन उनके ग्रंथों में न हुआ हो। इसीलिए यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि वल्लभ संप्रदाय का परिचय प्राप्त करने के लिए हरिराय जी के ग्रंथों का अध्ययन करना आवश्यक और अनिवार्य है।

श्री हरिराय जी ने ब्रजभाषा के अतिरिक्त गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं में भी काव्य रचनाएं की हैं। उनकी वे रचनाएं कीर्तन, धमार, धोल, ख्याल और रेखता आदि विभिन्न काव्य-रूपों में उपलब्ध होती हैं। उनके संस्कृत भाषा के पद और गुजराती भाषा के धोल भी प्रसिद्ध है।

हरिराय जी कृत विविध राग-रागनियों में रचे हुए कीर्तन के पद बल्लभ संप्रदायी कीर्तनकारों में प्रचलित हैं। वे कीर्तन की कतिपय पोथियों में भी संकलित मिलते है। उन पदों में हरिरायं जी की रसिक, रसिकराय, रसिकदास, रसिक प्रीतम, हरिदास और हरिधन छाप मिलती है। ये पद बल्लभ सप्रदायी मदिरों में विविध उत्सवों के अवसर पर गाये जाते हैं।

यहाँ पर हम श्री हरिराय जी की जन्म-बधाई के कुछ पद देते है। इनकी रचना श्री गोपिकालकार जी (मट्टू जी) काव्योपनाम 'रसिकदास' ने की है। श्री हरिराय जी के कतिपय पदों में भी 'रसिकदास' छाप मिलती है; किंतु प्रस्तुत पदों के रचयिता रसिकदास श्री हरिराय जी के परवर्ती महानुभाव थे। उनका जन्म प्रथम गृह की द्वितीय शाखा के अंतर्गत सं० १८७९ मे हुआ था।

श्री हरिराय जी की जन्म-बधाई

[१] राग मालव

श्री कल्याणराय घर प्रगटे, श्री हरिराय महा रस रूप।
आश्विन कृष्ण पंचमी[1] सुभ दिन, रसिकराय मन आनंद रूप॥
बाजत मंगलचार बधाई, झाँझ मृदंग ढोल सहनाइ।
नर-नारी सब निरतत आये, गावत गीत आनंद बधाइ॥

१. श्री हरिराय जी की जन्म-तिथि आश्विन कृ० ५ (व्रज) तथा भाद्रपद कृ० ५ (गुर्जर) है।

सुन धाये द्विज गनक गनीजन, द्वार भई अति भीर।
देत सबन मन पूरन करिकै, गोधन भूषन चीर॥
देत असीस चले घर घर प्रति, सदा जियौ यह बाल।
'रसिकदास' कों सरन राखियै, मेटिय भव जंजाल॥

[२] [राग सारंग

श्री कल्याणराय घर नीकी, बाजत आज बधाई।
प्रगटे श्री हरिराय महाप्रभु, श्री विट्ठल प्रतिरूप कहाई॥
निज पथ दृढ़ अति करन काज ही, निज लीला सब प्रगट दिखाई।
निज जन की शिक्षा के कारन, शिक्षा पत्र किये प्रगटाई॥
असरन सरन कहावत जग में, 'रसिकदास' सिर नाई॥

[३] [राग नायकी

प्रगटे श्री हरिराय, श्री कल्याणराय के धाम।
श्री वृंदावनचंद मनोहर, रास रसिक लीला अभिराम॥
लिये बोलि द्विज निजकुल प्रोहित, करत वेद विधि मन विश्राम।
देव-पितर-नांदीमुख पूजत, जोरत कर सिर नाम॥
बाजत बीन मृदंग बाँसुरी, नृत्य करत हिलमिल सब बाम।
गान करत मन मगन भईं अति, निसिबासर बिसरीं सब काम॥
धुजा पताका तोरन माला, चदन अगर लिये घिसि ठाम।
किए अजाचक सकल गुनिन कों, धेनु धाम दीने मनि गाम॥
देति असीस सदा जीवौ यह, सदा बसौ श्री गोकुल गाम।
सदा करौ हढरति पथ निज हित, पतितपावन इनकौ है नाम॥
सुजस बखान सकत नहीं इनकौ, रटत सेस मुख निसदिन जाम।
सुमिरन मात्र सकल अघ भाजत, सेवत सकल होत मन काम॥
श्री वल्लभ उदार कल्पतरु, जन को मेटत है भुवि धाम।
'रसिकदास' अति दीन हीन मति, बारंबार करत परनाम॥

गो० हरिराय जी के पद

●

१. कृष्ण-लीला

कृष्ण-जन्म— [१] राग धनाश्री

जसुमति सुत प्रगट्यौ सुनि, फूले ब्रजराज हो।
बड़े भाग खुले, करन आये सुर-काज हो॥
गाय ब्रज सिंगारी सब, बसन भूषन साज हो।
देखन कों आय जुरे, गोप-गोपि समाज हो॥
सिगरे मिलि नाँचें-गावें, छाँड़ि लोक-लाज हो।
दूध-दही-माखन लै, छिरकें करि गाज हो॥
नंद सबन दीने बहु, धेनु-बसन-नाज हो।
प्रगट भये 'रसिक प्रीतम', गोकुल-सिरताज हो॥

जन्म-बधाई— [२] राग धनाश्री

नंदराय के भवन बधाई॥
चलौ सखी मिलि मंगल गावो। मन आनंद सिंगार करावो॥
आँगन माँझ भई सब ठाडी। जहाँ प्रभा अति भारी बाढ़ी॥
भरत परस्पर नारी अंकों। खेलत हैं वे निपट निसंकों॥
चहुँ दिसि तें वे बाजे बाजें। एक ओर जुबती सब गाजें॥
जो कोऊ ऐसौ औसर पावत। दूध माट सीस तें नावत॥
आँगन दधि-घृत-पय के सागर। प्रगट भयौ सुत ब्रज उजियागर॥
असि भई राय सदन में सोभा। देखत ही सबकौ मन लोभा॥
दान मान गोकुल कौ राख्यौ। दियौ सबन कों सुख कौ भाख्यौ॥
और अधिक कछु कहत न आवै। निरखत 'रसिक प्रीतम' सुख पावै॥

[३] राग काफी

श्री ब्रजराज के धाम, बधाई बाजहीं । बधाई०॥
धुनि सुनि उठीं अकुलाय, मेघ ज्यों गाजहीं ॥ मेघ० ॥

जहाँ तहाँ तें चलीं धाय, अटकि नंद पौरि पै ।अटकि०॥
ये गावत मंगल गीत, ऊँचे स्वर घोर पै ॥ ऊँचे०॥

नौतन सहज सिंगार, कियें अंग-अंग में । कीयें०॥
बसन लहरिया भाँति बहु, रँग-रंग में ॥ बहु०॥

धूम मची सिंहद्वार, हेरी दै-दै गावहीं । हेरी०॥
प्रेम-उमँगि ब्रजनारि, गिनै नहीं काउहीं ॥गिनै०॥

कोउ नाँचे कोउ गाय, कोऊ कर तारि दै । कोउ०॥
कोऊ सिर तें दधि माट, फोर कर डारि दै ॥फोर०॥

बाबा नंद नँचावत ग्वाल, नाँचें बड़ भूप ही । नाचें०॥
सब तन यों रस बेस, भये एक रूप ही ॥ भये०॥

याचक गुनी अनेक, जुरे नंद-धाम में । जूरे०॥
मन वांछित फल देत, हीरा मनि दान में ॥हीरा०॥

देत असीस जियौ, ब्रजराज कौ लाड़िलौ । ब्रज०॥
चंद सूरज कौ तेज, तपै सुख बाढ़िलौ ॥तपै०॥

श्री बल्लभ के चरन, सरन सुख पावही ।सरन०॥
तौ पै रसना 'रसिक' रसाल, सदा गुन गावही॥सदा०॥

[४] राग आसावरी

सुनि गोपी जन मन आनंद भई हो, हरि जू की जनम बधाई ।
करि सिंगार चारु आँगन में, देति असीस सुहाई ॥
बदन तमोल नैन अंजन दै, सिंदुर माँग भराई ।
पिय अनुराग सुहाग भई नव, कुंकुम आड़ दिवाई ॥

अंचर तर कुंडल छवि झलकत, परत कपोलन झाँई।
मानों भोर भयौ रवि कंजन, किरन पियूष पिवाई॥
छूटत कुसुम ग्रथिल कवरी तें, चरननि पंथ बिछाई।
मानों मेघ मोहे नलिनी पै, फूल फूलि बरसाई॥

मनि गन हार विराजत उर पर, कंचुकी नील कसाई।
मानों स्याम प्रगट हिरदै भयौ, उर पर झलकत झाँई॥
झनकत बलय कंज नूपर धुनि, मोहत स्रवन सुहाई।
मंगल थार सँभार दोऊ कर, मंगल गावत आई॥

मंगल बदन निहारत वारत, तन-मन-धन बिसराई।
मंगल पूरब मिले सनेही, मंगल रूप कहाई॥
मंगल तेल हरदि चूरन जल, सींचत हरष बढ़ाई।
मंगल नंद जसोदा रानी, मंगल निधि प्रगटाई॥

मंगल गोप ग्वाल भए नाँचत, मंगल दधि ढरकाई।
मंगल भूषन बसन पहरि सब, मंगल दरस दिखाई॥
मंगल श्री ब्रज श्री गोबरधन, मंगल पुंज भराई।
मंगल पुलिन सुभग जमुना तट, लता-द्रुम मंगल छाई॥

मंगल श्री बल्लभ मंगल निधि, पद-रज सीस चढ़ाई।
नित मंगल 'रसिकन' कौ जीवन, मंगल लीला गाई॥

ढाँढ़ी-ढाँढ़िन— [५] राग धनाश्री

श्री बल्लभ पद बंदि कें, कहूँ सुजस इक सार।
पुत्र भयौ श्री नंद कें, बड़ी बैस ततकार॥
स्रवन सुनत ढाँढ़ी चल्यौ, सुत-दारा लै साथ।
नृपनन-मनि श्री नंद कों, आयि नवायौ माथ॥

रूप सो सुंदर सोहिनों, भूषन बसन सुदेस।
ढाँढ़ी बरनत बिसद जस, मानों नगर नरेस॥

बड़े-बड़े सब गोप मधि, राजें श्रीमन नंद ।
ज्यों उड़गन की मंडली, राजत पूरन चंद ।।

मैं ढाढ़ी तुव बंस कौ, सुनौ घोषमनि राय ।
सावधान ह्वै चित धरौ, लागै मोहि बलाय ।।
अहिपति-सुरपति-लोकपति, बड़े लोक भूपाल ।
मन-बच-कर्म न जाँचि हौं, बिना एक ब्रजपाल।।

ब्रजमंडल सिगरौ जितौ, सब मेरे जिजमान ।
जिनमें जस जितने कहौं, आये सब परधान ।।
सबहिंन के जस बरन तैं, बीत काल बहु जाय ।
बदन एक करनी अमित, कहूँ कछू बुधि पाय ।।

बंदन करि सब साधुकुल, बरनत बंस उदार ।
जनम मरन तें छूटि हैं, गायें-सुनें नर-नारि ।।
आभीनभान सुभान तें, भए सुजान उदार ।
अति बिचित्र कहाँ लौं कहूँ, ए गुन अमित अपार।।
बसत महाबन पवित्र थल,जो हरि कौ निजधाम ।
घोष लोक गोकुल अधिक,लीला अति अभिराम।।
जा रज कों सिव बंदहीं, अज अरु सेष-सुरेस ।
हौं महिमा नहिं कहि सकत, जानत आपु न लेस ।।

तिनकें सूरज चंद भए, जैसे चंद प्रकास ।
उनकें भीलकबाहु भयौ, चारों चक्र उजास ।।
काननससि तिनकें भए, कंजनाभ तिहिं जान ।
बीरभान तिनकें भए, महा नृपति बहु मान ।।
धरमधीर तिनकें भए, सर्व धरम जा माँहि ।
तिनकें भए कलिंद जू, सो लंक दुहाई जाँहि ।।

कलिंद जू के दस पुत्र भए, तेजभान गुनमान ।
धरमधीर बलबीर बहु, सील संतोषहिं जान ॥

जे तन जे धन-बल कहे, जे कृत जैसौ होइ ।
कंठभान महा बुद्धि जो, मन मेरे पुनि सोइ ॥
मनोरथ बारंगद भए, चित्रसैन लघु जानि ।
महापुन्य के पुंज कों, जिहि नव नंद बखानि ॥

नवौ नंद आनंद-निधि, प्रगटे जिनके बाल ।
नाम लेत आनंद मन,मिटत तिमिर कलिकाल॥
सुनंद जानि उपनंद जू, महानंद कलिनंद ।
नंदबधू नव नंद जे, नंद नंद प्रतिनंद ॥

महाभाग्य महिमा अमित, ज्यों सरदै पून्यौचंद ।
भक्ति तपस्या तेज ते, प्रगट भए श्री नंद ॥
पूर्व जनम में द्रोन जो, बड़े बसुन में जानि ।
धरा नाम जसुधा तहाँ, महातप करि यह मानि॥

ब्रह्मा जू आज्ञा दई, ब्रज में जनम सु लेहु ।
बालक ह्वै कें तूल हौ, कह्यौ कथा श्रुत एहु ॥
नँद-घरनी आनंद मय, जायौ मोहन पूत ।
यह सुनि सब परिवार लै, अपुनि घरनि संयूत॥

बालक वृंद जहाँ होत है, सब कोऊ मोकों देत ।
अपनौ सींच्यौ जानि कै, वे लेखत बहु हेत ॥
नाँचि-नाँचि गुन गाय हौं, पायौ पहलौ दान ।
श्री बल्लभ कुल कृपा तें, पायौ पद निरवान ॥
जाचक ह्वै कै माँगिहौं, श्री बल्लभ पद की रैन ।
'रसिक' सदा बल्लभ रहौ, नैनन बल्लभ बैन ॥

[६] राग कान्हरी

भई मेरे मन की बात जु भाई ।
आजु रैन सपनौ भयौ मोकों, नंद के घर चलि आई ॥
हरद दूध अक्षत दधि-कुंकुम, गोरस सों अन्हाई ।
जसुमति मोकों बहु पहिराई, कहा बरनौं जो बड़ाई ॥
एक पलना पर पौढ्यौ बालक, मोतिन झूमक लाई ।
ब्रज-नारी घर घर तें आईं, लाल की लेत वलाई ॥
घर घर चौक पूरति ब्रज-भामिनि, बंदनबार बधाई ।
ग्वाल बाल सब देत बधाई, रतन भूमि छवि छाई ॥
जागि परी चितयौ महारानौं, कान्ह कुँवर दरसाई ।
'रसिक प्रीतम' या सुख के कारन, आयौ ब्रज में माई ॥

नंद-महोत्सव — [७] राग आसावरी

जनम सुत कौ होत ही, आनँद भयौ नंदराय ।
महा महोच्छव आजु कीजै, बढ़्यौ मन न रहाय ॥
विप्र वैदिक बोलिकैं, अस्थान बैठे आय ।
भाव निरमल पहिर भूषन, स्वस्ति बचन पढ़ाय ॥
जाति कर्म कराय विधि सों, पितर देव पुजाय ।
करि अलंकृत द्विजन कों, द्वै लाख दीनी गाय ॥
सात परवत तिलन के करि, रतन ओघ मिलाय ।
करि कनक अंबरनि आवृत, दिये विप्र बुलाय ॥
पढ़ें मंगल गीत मागध, सूत बंदि अघाय ।
गीत गावें हरषि गायक, नचत नट नचवाय ॥
बजनियाँ मन बहौत फूले, बिविध बाजेन लाय ।
जानि मंगल चेरि बाजें, फेरि-फेरि बजाय ॥

धुजा-पताका विविध चित्रित, भवन भवन धराय।
बसन पल्लव रचे तोरन, द्वार द्वार बँधाय॥
वृषभ गाय सुबच्छ हरदी, तेल तन लिपटाय।
बसन बरह् सुवर्न-माला, धातु चित्र बनाय॥
गोप आये भेंट लै-लै, दूध-दधि सँग लाय।
पाग पटुका झगा भूषन, महा मोल सुहाय॥
सुनत ही भई मुदित गोपी, जसोदा सुत जाय।
बसन सकल सिंगार भूषन, आदि तन भूषाय॥
कहा सुख की कहूँ सोभा, भई सो बरनि न जाय।
मनहु कुंकुम केसरन मधि, कमल सोभा भाइ॥
लये बल करि अति उतावल, चलीं तन बिसराय।
स्रवन कुंडल पदिक हिरदे, पहिर अति उजराय॥
विविध बसन बनाइ सिर तें, खसे कुसुम बरषाय।
नंद जू के भवन बैठीं, बलय प्रगट लखाय॥
अति बिराजित भई कुंडल, हृदै प्रेम बढ़ाय।
बहुत दई आसीस यौं ही, रहौ वृज सुखदाय॥
भई रस उनमत्त नाचत, लोक लाज गमाय।
अजनि जनम निसंक गावें, हृदै प्रेम बढ़ाय॥
बाजे बाजत जनम उच्छव, विविध धुनि उपजाय।
नंद के घर कृष्ण आए, धर्म सब प्रगटाय॥
गोप नाचत, दूध दधि घृत रसनि सब सनवाय।
विवस तकि नवनीत लोंदा, हाथ डारि उड़ाय॥
बड़े मन ब्रजराज भूषन, बसन गाय मँगाय।
सूत मागध विप्र बंदी, करे बोलि बिदाय॥

घरन पठये मनोरथ सब गुनिन के पुरवाय।
हरि अराधन और सुत कौ, उदौ हिरदैं लाय॥
ग्रह पुजाये गनक उत्तम, भली भाँति बुलाय।
दै असीस चले भवन प्रति, परस्पर बतराय॥
दै बड़ाई कंठ भूषन, बसन हार अनाय।
नंद दीने पहिर फूली, फिरत रोहिनी माय॥
सकल ब्रज में भई संपति, रमा रूप बसाय।
करन लीला 'रसिक प्रीतम', रहे ब्रज में छाय॥

* दोहा *

धन सुक मुनि धन भागवत, धन्य यही अध्याय।
धन्य-धन्य 'प्रीतम रसिक', गायौ सरस बनाय॥

कृष्ण का पलना— [८] राग आसावरी

पलना फूलन गूँथि बनायौ।
जाई जुही चमेली चंपा, कनेर सुरंग सुहायौ।
रायबेल गुलतुर्रा सोहत, बीच फोंदना लै लटकायौ॥
लैकर गोद स्याम सुंदर कों, जसुमति पलना में बैठायौ।
गोद लिएँ हुलरावत गावत, तन-मन अति आनंद बढ़ायौ।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत,
ब्रज-जन निरखि-निरखि सुख पायौ॥

[९] राग आसावरी

पलना फूल भरचौ नंदरानी।
ता मधि झूलत छगन मगनवा, निरखत नैन सिरानी॥
नाना बिधि के खिलौना लै-लै, खिलावत मृदु मुसिकानी।
'रसिक प्रीतम' झूलत मन फूलत, किलकत ब्रज सुखदानी॥

[१०] राग रामकली

पलना झूलौ हो नंदलाल ।
कमलनैन सुखदैन सकल ब्रज, सुंदर जसुमति बाल ।।
पाँयन नूपुर छुद्र घंटिका, कर पहोंची अति चारु ।
कंठ कंठश्री कर मधि कंकन, उर बघनाँ और हारु ।।
स्रवनन कुंडल नासा बेसरि, अंजन नयन बिसाल ।
गोरोचन कस्तूरी कुमकुम, तिलक बन्यौ बिच भाल ।।
अलकावलि मुक्तावलि गूँथी, बिच लर लटकन लटकै ।
सोभा निरखत सब ही कौ मन, जहाँ तहाँ तें अटकै ।।
बैनी गुही जसोमति सुंदर, स्याम पीठ पर सोहै ।
मनहु मेघ पर नील मेघ छबि, चितवत ही चित मोहै ।।
परम मनोहर मुरली तेरी, तो ढिग पलना पौढ़ी ।
अपुनौ पीतांबर कटि कान्हर, अपने ही कर ओढ़ी ।।
विविध खिलौना ढिग राखोंगी, ज्यों भावै त्यों खेलि ।
मेवा मिसरी और मिठाई, माखन मुख में मेलि ।।
जसुमति माइ चाह सों या विधि, अपनौ सुत हुलरावै ।
हरि लीला यह आनँद की निधि, 'रसिक' सदा ही गावै ।।

[११] राग आसावरी

पलना झूलत बाल गोपाल ।
बलि गई इन बदन ऊपर, चारु नैन बिसाल ।।
कंठ हँसुली उरहि बघना, बनी मोतिन माल ।
करहि पहौंची अतिहि सुंदर, जटित हीरा लाल ।।
कुटिल केस सिर पर विराजत, लटकि आये भाल ।
मनहुँ अलि छौना कमल पर, निरखि मोही बाल ।।
चरन नूपुर कौंधनी कटि, कुँडल झलकन गाल ।
अद्‌भुत रूप निहारि हरि कौ, होत 'रसिक' निहाल ।।

[१२] राग रामकली

पलना झूलत है नंदलाल ।
पचरँग रँगी पाट की डोरी, झुलवत लै ब्रज-बाल ।।
नैन पसारों नैंक निहारां, चंचल नैन विसाल ।
बहौत दिनन कौ ताप हर्यौ, सुख दान कर्यौ ततकाल ।।
कहा बरनों तेरे मुख की सोभा, अलक तिलक मिले भाल ।
मनहुँ नैन सर कुसुम जानि, रस लेंन मिले अलि-जाल ।।
अधर महारस चुअत निरंतर, सुलभ जनावत लाल ।
मनहु अमृत रस वदन चंद तें, च्वै चलि वढ्यौ उछाल ।।
अबहि हरत मन जुबती जन कौ, करि कटाच्छ गोपाल ।
आगें कहा करौगे मोहन, बिसरै हो ब्रज-बाल ।।
जसुमति सुत ब्रज जन सुखदायक, उर सोहै मनि माल ।
चिबुक परसि ढिग जाय बदन लखि, दुहुँकर परसति गाल ।।
देख हँसति मुख हरि कौ सुंदर, बिरह मिटत जंजाल ।
यह लीला सुमिरत गावत में, कियौ रस 'रसिक' निहाल।।

[१३] राग धनाश्री

फूली-फूली हो नंदरानी ।
अपुने लाल कों पलना झुलावति, फूले नंद देख रजधानी ।।
फूले गोप गोपिका फूलीं, नाचत गावत सुरति भुलानी ।
फूले मागध अरु वंदीजन, गायक फूले सूत पौरानी ।।
फूली गौ गोपाल पधारे, मन की आरति सबै नसानी ।
फूले विप्र असीस देत हैं, पढ़ि-पढ़ि वेद अलौकिक बानी ।।
फूले देव बजावति दुंदुभि, फूलीं सुर-वनिता रति मानी ।
फूले कवि गन गिनत न काहू कों, गिरा आनंद फूली न समानी।।
फूली रोहिनी माय मान दै, सब कों आदर देति सयानी ।
फूल्यौ 'रसिक' न माय भाव मन, निज यह लीला जनम बखानी।।

[१४] राग आसावरी

ब्रज सुत सुख बिलसत नंदरानी ।
कमल नयन कों पलना झुलावति ।
नैन निरखि अँसुअन की धारा । तन पुलकित प्रस्वेद अपारा ।।

देखि-देखि मन अचरज आनें । यह सुपनौं किधौं साँचही जानें ।
अपुने धरम की करत बड़ाई । मोहि बुढ़ाल महानिधि पाई ।।

धन्य जनम मैं ही नें लीयौ । मोहि विधिना ऐसौ सुत दीयौ ।
अपुने सुत कों उर धरि राखों । काहू न दिखाऊँ कछू न भाखों ।।

होइ बड़ौ जब रन जीतैगौ । तब अपनौ करि ब्रज चीतैगौ ।
कबहू कहै अनेक कहानी । हँसति ललन मुख लखि मृदु बानी ।।

बार-बार कर अंचल फेरै । अलकन की बिथुरन मुख हेरै ।
कबहुक लै सुत उर उठि नाचै । लट गोबिंद गहै कर पाछै ।।

ब्रज जुवतिन में ठाड़ी फूलै । सुनत बड़ाई त्रिभुवन भूलै ।
'रसिक प्रीतम' की लीला गावै । मन सुद्ध होय महा सुख पावै ।।

[१५] राग रामकली

झूलत पालनै नँदनंद ।
गहत फुँदना दुहू कर करि, हँसत किलकत मंद ।।
चुवत मुख तें लार रस, मनों कमल तें मकरंद ।
निरखि गोपी अतिहिं फूलीं, अधर रस सुख कंद ।।

चरन कोमल अरुन मानों, नव पल्लव महकंद ।
गहि अँगूठा बदन मेलत, पियत रति रस चंद ।।
पौढि सिगरे अंग नचावत, खेल मिलवत फंद ।
'रसिक' मेरे मन बसौ यह, बाल लीला छंद ।।

[१६] राग आसावरी

ब्रज रानी सुत पलना झुलावति।
निरख-निरख जसुमति गुन गावति।
कबहुक लै झुनझुना बजावति। बार-बार लै फिरकी फिरावति।।
चूमत मुख मन मोद बढ़ावति। कबहुक लै स्तन पान करावति।
चाह रहत चित अचरज लावति।
सुत सुख कों कुल देव मनावति।।
कबहुक दोऊ कर पकरि नचावति।
सुख समूह सब दुख बिसरावति।
गोद लियें सुत बाहर आवति। ब्रज जुवतिन कों खेल दिखावति।।
सुत उछंग लै चंद बतावति। मधुर बचन कहि बोलि सिखावति।
बड़भागिनि नँदरानी कहावति। 'रसिकदास' यह लीला गावति।।

[१७] राग देवगंधार

झूलौ पालनै नँदनंदा।
खन-खन खन-खन चूरा बाजें, मन में अति आनंदा।।
ठुन-ठुन ठुन-ठुन घुँघरू बाजें, तनन तनन सी बंसी।
नैन कटाच्छ चलावत गिरधर, मंद-मंद मुख हंसी।।
खटखट खटखट लकुटी बाजै, चटक चटक बाजै चुटकी।
नंद महर घर सोभा निरखत, मोहन मन में अटकी।।
कुहुकुहु कुहुकुहु कोकिल बोलें, भनन भनन बोलें भौंरा।
पीपी पीपी पपैया बोलें, संगीते सुर दौरा।।
झूझू-झूझू झुनझुन बाजें, फिरक-फिरक फिरै फिरकी।
गुडगुड गुडगुड गुडकी बाजै, प्रेम मगन मन निरखी।।
ढो-ढो ढो-ढो ढोलक बाजै, गुनन-गुनन गुन गावै।
राधा गिरधर की बानिक पर, 'रसिकदास' बलि जावै।।

[१८] राग आसावरी

बारी बारी ब्रजराज कुमर, झूलौ पलना ।
छोड़ौ किन आर ऐसी, मेरे ललना ॥
देखौ देखौ ब्रज जुबती जन, ठाड़ी मुख देखें ।
नैन खोलि मधुरे बोलि, जनम करौ लेखें ॥
हा हा हरि नैंक रहौ, बिनवत तेरौ तात ।
रोस कीजै तन छीजै, काहे ना मुसकात ॥
मेरौ जनि टारौ कह्यौ, तेरी हौं मात ।
चाहें सो माँगि लेहु, मन की कहौ बात ॥
अँसुआ भरे दृगन हँसे, आयि गरें लागे ।
'रसिक प्रीतम' करुनाकर, जननी प्रेम पागे ॥

[१९] राग आसावरी

झूलौ झूलौ हो पलना । जनि करौ आर हँसौ मेरे ललना ॥
तुमकों और मगाऊँ खिलौना । काहे कों हटौ खेलौ मेरे छौना ।
हौं ढिग बैठी तुम्हें झुलाऊँ । गीत नये-नये तोहि सुनाऊँ ॥
देख लटकत ऊपर कैसौ फुंदना । दुहुँ कर रमकि गहै नंद नंदना ।
तेरे चरन के नूपुर बाजें । स्रवन सुनत खग मृग जो लाजें ॥
सद माखन तेरे कर दैहों । मुख में मेलि बलैया लैहों ॥
क्यों रोवै मेरौ बोहौत दुखन कौ । मोकों दायक सकल सुखन कौ ॥
हुलरावत सुत कों नंदरानी । 'रसिक' सनेह भरी मृदु बानी ॥

[२०] राग आसावरी

देखौ झूलत पलना कन्हाई ।
बाल रूप धरि, बाल भाव करि, जननी के सुखदाई ॥
कोमल अरुन चरन जुग सोहें, दस नख की अरुनाई ।
मनहु भक्ति अनुराग इक ठौरे, ह्वै इहाँ देत दिखाई ॥

बार-बार जब चरन उचावत, नूपुर बाजत पाँइ ।
मनहुँ भक्त जन अति आनंदित, उठत उमँगि रस छाँइ ॥
कटि किंकिनी विराजत अतिसै, लटकत फुँदना स्याम ।
मदन भुजंग सीस पै सोभित, लसत नीलमनि धाम ॥
पीतांबर ढाँपत अंग जननी, चरनन देत उठाय ।
मनहु नील घन छाँह दामिनी, विच-बिच प्रगट लखाय ॥
कर अँगुरी मुंदरी दस राजे, नख चंद्रन के पास ।
मानहु मनिधर पियन चले हैं, सुधा महा रस आस ॥
दुहुँ कर पहौंची रतन जटिल नग, ता ढिग फुँदना लटके ।
मानहु अलि कुल सब एकत्र ह्वै, चलत द्वार पै अटके ॥
बाजूबंद जरे नग हीरा, उठत अनूपम जोति ।
मनहुँ स्याम रस महा सिंधु तें, सुधा प्रगट सी होति ॥
कंठाभरन खच्यौ रतनन सों, हरि के कंठ लग्यौ ।
मानहुँ गह्यौ आसरौ उरगन, बघनाँ देखि भग्यौ ॥
उर सोहै मोहै सबकौ मन, बघनाँ दुहुँ दिस बाँक ।
ज्यों श्री उकसि न सकै रूपी ब्रज, अरी कौन ह्वै राँक ॥
ता ढिग पदक विराजै अद्भुत, मुकता रतन जर्‌यौ ।
मनहुँ हृदै में हरि जुबतिन कौ, सुध अनुराग धर्‌यौ ॥
चिबुक बिराजत वदन चंद में, उपमा एक खरी ।
अधर बिंब तहाँ दसन लगत, मानों च्वै इक बूँद परी ॥
कहा कहों अधरन की सोभा, बरनी न जाय अपार ।
मनहुँ कमल तें उदय मैंन रवि, चुवत कुसुम रस सार ॥
नासा मुक्ता भूषन सोहै, ता मधि सोहै लाल ।
मनहुँ दुहुन के मन बिच सोभित, ये अनुराग विसाल ॥

स्रवनन मकराकृत दोऊ कुंडल, झलकैं ललित कपोल ।
मानहुँ लावन्य सरसि में, मिलि दोउ करत किलोल ॥
बदन कमल अलकावलि राजें, उपमा अद्भुत एक ।
जोरि पाँति सुर मानों बैठे, पीवत अमृत अनेक ॥
मलयज तिलक बीच मृगमद कौ, ता मधि मुकता-बिंदु ।
रद गयंद अलि भज्यौ उरपि, मान. गढ़ में घुसि रह्यौ इंदु॥
लटकत भाल सीस तें भूषन, अति राजत है बोर ।
मानहु केस सिंधु तें आयौ, मगन भयौ रवि भोर ॥
बैनी गुँथी कुसुम आभूषन, राजत हरि की पीठि ।
मानहुँ सिढ़ी सम्हारी मनमथ, चढ़न जुवति जन दीठि ॥
ऐसौ रूप बिलोकत काकौ, धीरज रुक्यौ रहै ।
ब्रज जुबती सबहिन के देखत, हरि कर आन गहै ॥
जसुमति मन बालक जुबतिन कों, मनमथ रूप धरें ।
अचरज 'रसिक' बाल लीला में, लीला और करें ॥

[२१] राग बिलावल

जसुमति सुत कों पलना झुलावै । परसि चिबुक मृदु बचन सुनावै।
मो सों लालन कहौ मेरी मैया । ऊंचौ टेरि बुलावौ गैया ॥
बोल सुनावौ तोतर बतियाँ । सीतल करौ लाल मेरी छतियाँ ॥
बोलि लेहु बाबा कहि तातहि । मैया कहि जु राम मुसक्यातहि ॥
बचन सुनत ब्रज जुबती ठाड़ी । तोसों कहत प्रीति अति बाढ़ी ॥
ऊँचे सुर मधुरे किन गावहु । नाचत नूपुर सब्द सुनावहु ॥
हँसत जाय ढिग चुटकी बजावें । करि कंठहि गुलगुली हँसावें ॥
देखौ मेरे सुत, हौं फिरकी फिराऊँ । नीके करि भुनभुना बजाऊँ॥

कबहुक दरपन कर लै दिखावै । अँगुरिन गहि यह कौन कहावै ।
हँसत बदन लखि लेत बलैया । जनि लगौ दीठि सुतहि मेरी दैया॥
कबहूँ दृग मीड़ै दोऊ कर सों । पोंछत जननी छोर अंचर सों ॥
कबहुक कर लै अँगूठा चूसै । ब्रज जन के तन मन धन मूसै ॥
कर पहोंची फुँदना मुख मेलै । बदन जम्हाईं मुग्ध तन खेलै ॥
चरन कमल दोऊ कर पकरे । नूपुर धुनि सुनि स्रवन मन धरे ॥
करवट लेत किंकिनि धुनि बाजै । सब्द सुनत कोकिल मन लाजै ॥
लाल तेरे मीत बुलावन आये । तिनके संग खेलौ हित भाये ॥
धरी तेरे ढिग मेवा मिठाई । मुख में मेलौ लै मन भाई ॥
बैठि सबन में तोहि सिंगारों । भूषन वसन विविध तन धारों ॥
भरी तबकरी धरे खिलौना । खेलौ हँसौ मेरे स्याम सलौना ॥
तेरे पलना की पचरंग डोरी । लटकत है फुँदना छवि जोरी ॥
विविध कुसुम की बंदन माला । बाँधी हैं तेरे पलना लाला ॥
ऊपर ढँक्यौ पटोरौ पीरौ । पलना जड़्यौ रतन नग हीरौ ॥
गोलोचन कौ तिलक सँभारौ । विच मुक्ताहल विंदु सुधारौ ॥
भौह निकट मसि बिंदा सोहै । दीठि न लगत हृदै मन मोहै ॥
दधि मथि सद नवनीत निकारों । मुख में मेलि अपुनपौ वारों ॥
आओ गोद प्रान के प्यारे । अँगन खिलाऊँ वैठि लला रे ॥
हृदै लगावत चूँमति मुख कों । धन्य करत जसुमति सब सुख कों॥
जसुदा अपनौ भाग सराहै । बालक लीला मन अवगाहै ॥
बोलहु कछु देखों दोऊ दतियाँ । अब ही तनक दूध उपजतियाँ ॥
लाल! तेरी मुरली ढिग राखी । उठो बजाओ हो वैनु सुभाखी ॥
दूरि भयौ जा तें ब्रज अँधियारौ । स्याम सुंदर मेरौ जग उजियारौ॥
कब मेरौ ढोटा पाँइन चलि है । बल संग लै वैरी दल दलि है ॥
तेरे पास रखी तेरी लकुटी । लै कर लाल चढाओ भ्रकुटी ॥
इहि बिधि कहत जननि ब्रजरानी ।
'रसिक प्रीतम' बोलत मृदु बानी ॥

बाल-क्रीड़ा— [२२] राग कान्हरौ

सुमिरों नंद राजकुमार।
नंद आँगन करत रिंगन, बदन बिथुरे बार॥
चरन नूपुर किंकिनी कटि, कंठ कठुला हार।
करन पहोंची उरसि बघनाँ, तिलक चारु लिलार॥

सुनत फिरिकें चकित चित, निज किंकिनी झनकार।
ठिठकि दौरत करत कौतुक, हँसत परम उदार॥
पंक लेपन अंग कीन्हे, नचत नयन सुढार।
करि बड़ाई लेत जननी, गोद मोद अपार॥

गहत बछरा पूँछ, राजत रूप जीत्यौ मार।
देखि परबस हँसत गोपी, मुग्ध तजत अगार॥
कूर के ढिग जात खेलन, फिरत जननी लार।
काज बिसरत सबै ग्रह के, बिग्रहता के भार॥

बालकन संग राज लीला, करत ब्रज घर द्वार।
देत आनंद जुवति जन कों, पठई गृह-गृह चार॥
करत चोरी भवन प्रति धँसि, लेत गोरस सार।
बैठि जैंमति निडर पति लों, परसि राखी थार॥

देत माखन बन-चरन कों, बाँटि-बाँटि अहार।
खनत चुहटी निपट बालक, भजत दै कर-तार॥
मात के ढिग लगत सूधे, साधु मनहुँ खरार।
गोपी देति उराहनौ, जुरि आईं सबै सँभार॥

सुमिर कियौ संकेत गोपी, हँसत झूँठी रार।
बारि डारों निरखि सोभा, 'रसिक' बारंबार॥

[२३] राग रामकली

दोऊ भया घुटुरुवन चलत।
हरत दुख ब्रज भूमि कौ, दै मोद दैत्यन दलत ॥
अलक बिथुरीं बदन मृगमद, तिलक सोहै भाल।
दृगन अंजन भौंह बिंदुका, अधर रिसत रसाल ॥
कंठ बघना चरन नूपुर, किंकिनी कल नाद।
कग्न पहौंची हृदै माला, सब्द सुनि अहलाद ॥
देख जसुमति जनम अपुनौ, सुफल मान्यौ चाव।
'रसिक' पावै कौन हरि कौ, बाल लीला भाव ॥

[२४] राग ईमन

सोहत पाँय पैजनियाँ।
नूपुर धुनि बाजत, कटि किंकिनी बनी,
अति सुंदर अति सुरंग तनियाँ ॥
कर पहौंची, भुज बीच बाजूबंद, उर बघनाँ,
कंठ कौस्तुभ मनियाँ।
लर लटकन सिर बैंनी गुँथी, कर लकुटि,
'रसिक प्रीतम' कों लेत धाय कनियाँ ॥

[२५] राग हमीर

नूपुर धुनि मिलि बाजत सोहैं, पाँयन पैजनियाँ।
कटि किंकिनी बनी अति सुंदर, अति रंग-रँग तनियाँ ॥
कर पहौंची भुज बिच बाजूबंद, उर बघना कंठ कौस्तुभ मनियाँ।
लर लटकन सिर बैनी गुँथी, कर लकुटी,
खेलत 'रसिक प्रीतम' कों लेत धाय कनियाँ ॥

[२६] राग रामकली

बैठि ब्रजजन खिलावति हैं, नेह करि आधीन।
लैकर लडुआ कहत नाँचौ, गावत परवीन ॥
पादुका उदपान-पीठक, लै आओ हम पास।
गहि उठावत बाँह हरि तब, गहत मनहि हुलास ॥
बदन चुंबत उर लगावत, मोद हियें अपार।
कबहु भेंटत भुज पसारत, गोबिंद परम उदार ॥
कहा बरनौं बाल लीला, कहत आवै छेह।
'रसिक' आनंद परम ही सों, खेलत ब्रजजन गेह ॥

[२७] राग टोड़ी

जैसें जैसें बंसी बाजै तैसें नाचें।
पाँय पैजनी अरु कटि किंकिनी रव, तैसैई सप्त सुरन साँचें ॥
बिच बिच बाललीला भाव दिखावत,
त्यों-त्यों ब्रज जुबतिन में हास माँचें।
मिलन की लालसा उपजत मन में, हँसि न सकत बिरह आँचें ॥
ऐसी अद्भुत लीला स्रवन सुनत तें,
अति ही मूढ़मति मन न राँचें।
'रसिक प्रीतम' की यह छवि निरखत,
देव मुनि-नारद सारद कहत न बाँचें ॥

[२८] राग नट

बुलावति जसुदा तोतरे बोल।
अपने सुत की करत प्रसंसा, दुहुँ कर परसि कपोल ॥
कर अंगुरी गहि निरखि नचावति, आनंद हृदै अतोल।
अपुनौ जनम सुफल करि मानति, दृग सिर मुदित अडोल॥
कबहुक लै हिरदै सों चाँपत, चुंबत देत तमोल।
'रसिक सिरोमनि' धन ब्रजभूषन, बालक अंग-अँग लोल॥

[२९] राग टोड़ी

देखि दरपन में कहत गोपाल ।
अरी मैया ! यह कौन दूसरौ, मोहीं सौ तेरौ लाल ।।
याहि गोद लैं बैठि जिमावत, हौं न जैऊंगौ आज ।
हौं बाबा की गोद बैठि हों, लै अपुनौ सब साज ।।
चोंखूंगौ गैया मैं अपुनी, खेलोंगौ व्रज माँहि ।
जाइ बसोंगौ गोपिन के घर, छुओं न तेरी छाँहि ।।
सुत के बचन सुनत नंदरानी, बात कही समुझाइ ।
तेरौ ही प्रतिबिंब लढ़ैते, दरपन माँझ लखाइ ।।
जो तू मेरी कही न मानें, दरपन हृदै लगाइ ।
कहाँ दूसरौ, मेरें तूही पूत, हौं तेरी माइ ।।
बाल बिनोद मुग्धता रसमय, बरन सकै को मूढ़ ।
'रसिक' प्रगट ब्रत व्रज जुबतिन कौ, अंतर भाव निगूढ़ ।।

[३०] राग रामकली

खेलत मदन सुंदर अंग ।
जुबति जन मन उमँगि निरखत, विविध भाव अनंग ।।
पकरि बछरा पूँछ ऐंचत, आपु दिसि करि जोर ।
बच्छ लैं भाजत हरी कों, जुबति जन की ओर ।।
देखि परबस भए प्रीतम, भयौ मन आनंद ।
मोह आकुल भईं व्याकुल, गई लाज अमंद ।।
कोऊ देखत गहत कोऊ, हँसत छाँड़त गेह ।
करत भायौं आप मन कौ, प्रगट करि निज नेह ।।
अति अलौकिक बाल लीला, जानी क्यों हु न जाइ ।
मुग्धता सों महा रस सुख, देत 'रसिक' मिलाइ ।।

[३१] रागिनी धनाश्री

देखि प्रतिबिंब गोपाल खिलावै ।
लै लडुआ मेलत वाके मुख, खेलत संग बुलावै ।।
बोलि कहैं उठ चलि रे भैया ! हठ करि-करि पकरावै ।
अपुनौ हार उतार कंठ कौ, वाके गरै पहिरावै ।।

मधुर बचन कहि हित करि नीके, मधुरे बोल सिखावै ।
आपु अंग आभूषन अपने, कर लै वाहि दिखावै ।।
अरी मैया ! हौं कहा करों यह, खेलन संग न आवै ।
मेरी कही बात नहीं मानै, योंही मोहि बिरावै ।।

तू हठ करि कर गहि किन याकौ, मेरे संग पठावै ।
सुत के बचन सुनत नंदरानी, आनंद हिएँ बढ़ावै ।।
बाल-केलि रस महा मुग्ध कर, सबहिन के मन भावै ।
'रसिक प्रीतमसु'मिरत निस-वासर,गावत अति सुख पावै।।

माखन-चोरी—— [३२] राग काफी

कहूँ अकेले करि पाये प्रीतम, लै बैठी गोपी गोद,
सिखवत चोरी के मिस, आओगे मेरे गेह ।
सामग्री धरि राखी, छींके पै सिद्ध करि,
काढि लीजो, अपने मन में जिन करो संदेह ।।
जनि कोऊ और छिएँ, यह बढ़ौ ताप हिएँ,
अकेले ही भोजन करो, बरसाओ नेह ।
'रसिक प्रीतम' हम आवेंगी जसोमति के आगै,
तुम अपुने मन में, जिन कीजो छेह ।।

[३३] राग नट

अटपटी बालक लीला स्याम।
कोऊ न जानें कौन समै हरि, धँसत कौन विधि धाम॥
चाक चढ्यौ चित रहत हमारौ, सोच रहत चारौ जाम।
करि न सकें सुधि, कछुअ न भावै, घर कौ करें न काम॥
भवन प्रविस क्यों करत न भोजन, कछुक करौ विसराम।
सुचितै ह्वै तुव वदन विलोकें, सब ब्रज जन अभिराम॥
हम तेरी, घर-बार तुम्हारौ, चोरी कौ कहा काम।
'रसिक प्रीतम' इहि विधि नित खेलौ, अपुने गोकुल गाम॥

[३४] राग कान्हरौ

भावै हरि जू की उहि हेरनि।
जब चोरी मिस धँसत भवन में, चारहु ओर दृगन भुज फेरनि॥
गनि-गनि धरत चरन धरनी में, चकित विलोकनि अँगुरिन टेरनि।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत,
रहि न सकत हियरा औसेरनि॥

[३५] राग आसावरी

आछे ब्रज के खिरक रमाने बड़रे बगर।
नव तरुनी नव तरलित मंडित, अगनित सुरभी हूंक डगर॥
जहाँ तहाँ दधि मथन घमरके, प्रमुदित माखन चोर लंगर।
मागध सूत वदत बंदीजन, लज्जित सुरपुर नगरी-नगर॥
दिन मंगल दिन बंदनमाला, भवन सुवासित धूप अगर।
कौन गिनें 'हरिदास' गहर गुन,
मसि सागर और अवनी कगर॥

[३६] राग नट

जसोदा ! सुत कौ चरित सुनाऊँ ।
ढूँढ़ि लेत जहाँ तहाँ तें माखन, जो घर माँहि दुराऊँ ॥
कोटि उपाय करैं हू नीकैं, नैक पकरि नहीं पाऊँ ।
बुद्धि गही दृढ़ राखि हृदै में, नीकै हाथ लगाऊँ ॥
देखत ही दुरि जात भवन में, जतन कियै न लखाऊँ ।
'रसिक प्रीतम' लरिकाई की हौं, बार-बार बलि जाऊँ ॥

[३७] राग नट

माई ! कैसौ अनोंखौ खेलिवौ ।
आइ भवन धँसि, चोरि दूध-दधि,
देत कपिन कों, नैक मुख में न मेलिवौ ॥
लरिकन कों चुहँटी दै भाजत, हँसि पग सों पग ठेलिवौ ।
देइ न कोउ दिखाई भवन में, दूध दही घृत रेलिवौ ॥
कहौं कहा कबहुँक धँसि घर में, गहि भुज सों भुज पेलिवौ ।
'रसिक प्रीतम' जसुमति सत गुन निधि, सुकए बसन सँकेलिवौ ॥

[३८] राग सारंग

तेरौ लालन करन अटपटी, कैसैं सहें जसोदा माय ।
लरिका लियैं संग ब्रज भैया, धँसत भवन में आय ॥
औसर बिनु छोरत बछरन कों, खीझे हँसत हँसाय ।
चोरी करि पकवान आदि दै, कछुक स्वाद करि खाय ॥
ता पाछै दधि-दूध उतारै, आपही करत उपाय ।
भोजन करै भवन में बैठौ, हरैं-हरैं चित चाय ॥
कर पय पान उठै चोरी कों, चंचल चमकि पराय ।
उबरौ बाँट देत बँदरन कों, सबहिन भागि बनाय ॥
मन अनखात देखि भाँड़े बहु, फोरत बैंत चलाय ।
जो कछु चोरन कों नहीं पावै, गृहपति पै कुढ़ि जाय ॥

हाथ न पहुचै तहाँ लैवै कों, विविध उपाव रचाय ।
पींढ़ा पै ऊखल औंधौ धरि, उभकैं ऊँच चढ़ाय ।।

वासन छेद करै पय जानत, पीवै ओक लगाय ।
दधि बूरौ पकवान आदि के, वासन देत गिराय ।।

अँधियारे में धर्‌यौ प्रकासै, अंग दीप प्रगटाय ।
समौ जानि गृह काज करन कौ, चोरत चित न डराय ।।

ऐसी बरनों किती ढिठाई, नित नवीन छल छाय ।
यहाँ देखौ कैसौ सूधौ ह्वै, बैठै गुन पलटाय ।।

दुहुँ दिस देखत हँसी जसोदा, पुत्र दोस विसराय ।
चपल बाल चित धरी धूतता, नेह उमंग बढ़ाय ।।

डर्‌यौ जान सुत कों नंद रानी, वेगहि लियौ उठाय ।
लै चुंबन सुत मुख कौ रानी, लियौ अंक लिपटाय ॥

यह लीला हिय बसौ निरंतर, श्री बल्लभ सरन सहाय ।
बाल-केलि मय रस रसिकन कौ, गावत 'रसिक' मल्हाय ।।

[३९] राग हमीर

मोहि कहत हौ चोर, कहो किन कीनी चोरी ।
बिन दीने मै कहा लियौ है, ऐसी न जानत हो री ।।
आप सिखाय बताय सबै बिधि, अब तुम दैन उराहन दौरी ।
साँची बात 'रसिक प्रीतम' की, लरिकाई जानी जसुमत भोरी ॥

जागरण— [४०] राग भैरव

लालन ! जागो हो, भयौ भोर ।
दूध दही पकवान मिठाई, लीजै माखन रोटी बोर ॥
बिकसे कमल बिमल ब्रानी सब, बोलन लागे पंछी चहुँ ओर ।
'रसिकप्रीतम' सों कहत नंदरानी, उठ बैठौ हो नंदकिसोर ।।

[४१] राग रामकली

भोर भयौ जागो हो लालन ! कहा तुम अजहू रहे हो सोय।
पियौ धार अपनी धौरी की, जातें पुष्ट देह बल होय ॥
बैनी गुहो देहु दृग अंजन, मसि बिंदुका लेहु मुख धोय।
हँसत बदन सुख सदन निहारों, नान्हीं-नान्हीं दतियाँ दोय ॥
टेरत ग्वाल बाल खेलन कों, गौ-रंभन चहुँ ओरन होय।
ब्रज जन सब ठाड़े मुख देखत, अति आरत बारत सब कोय ॥
उठि बैठे, लिये गोद जसोदा, सुंदर सुत सोभा तिहुँ लोय।
'रसिक प्रीतम' जननी गरें लागे, माँगत कान्हा रोटी रोय ॥

[४२] राग विभास

मैं जान्यौ जागे कन्हाई, जातें जसुमति तेरे घर आई।
मेरें पिछवारें वैसे ही सुरन सों, किनहू मुरली मधुर बजाई ॥
जनम सुफल करि बिनती चित्त धरि,
अपनौ कान्ह किन देहु जगाई।
लेहु उछंग मोहन कों जसुमति, आँगन ठाढ़ी गोपी मुख देखत,
हँसत 'रसिक' बलि जाई ॥

शृंगार— [४३] राग रामकली

हरि मुख देख बाबा नंद।
कमल नैन किसोर मूरति, कला सोलह चंद ॥
सीस मुकुट जराय जगमग, मोर पुच्छ सुरंग।
हँसिन बिगसनि लसनि मम धन, ठाड़े ललित त्रिभंग।
कटि किंकिनी झनकार झनकत, संगीत उठत तरंग ॥
बदन पर अलकें बिराजत, मानों बल्लभ अंग।
लाल लकुटी कर जु सोभित, चाल हस्ति मतंग ॥
पाय नूपुर अतिहि रुनझुन, शब्द उठत उमंग।

पीत पट सुभ कंध सोहै, घन छटा मानों संग ॥
मुक्त-गुंजामाल उर पर, किधों त्रिबैनी गंग ॥
ऐसी सोभा निरखि मोहन, नर्तत सदा सुधंग ।
'रसिकराय' दयाल लीला, गिनत अनत न रंग ॥

[४४] राग सारग

बन्यौ माई ! पगा स्याम सिर नीकौ ।
धोती और उपरना ओढ़ें, और गहैनौ मोती कौ ॥
अंग अरगजा कमल हाथ में, मिलौ भावतौ जी कौ ।
नैन चकोर चंद मुख निरखत, 'रसिकप्रीतम' सबही कौ ॥

[४५] राग बिलावल

सुंदर स्वरूप अति सेवा सों सरस रस,
मारग प्रबीन यातें ज्ञान हू कथत हैं ।
तैसोई बागौ बनाय, तैसीयै झुकि रही पाग,
चंद्रिका सँभारि नीकै फेटा हू कसत हैं ॥
मोती माल गुंज हार, हिएँ पदक कंठ लाल,
सूथन सँभारि चरन जेहर सजत हैं ।
करिकै सिंगार गिरिधारी जू कौ बार-बार,
आरसी दिखाय 'हरिरायजू' हँसत हैं ॥

[४६] राग सारंग

आज अति राजत नंद किसोर ।
सिर पर कुलह टिपारौ सोहत, धरें पखौआ मोर ॥
मल्हकाछ कटि बाँधे फेंटा, सरस सुगंध दुछोर ।
बलि-बलि सुंदर बदन कमल पै, 'रसिकप्रीतम' चितचोर ॥

[४७] राग सारंग

कुलैह की की पाग, सिरपेच अति जगमगै,
चमक रही चंद्रिका चंद बारे।
लाल ढिग लटक भरि भौंह की चटक पर,
मोती लर भाल मानों उदित तारे॥
सघन घन कांति तन जटित भूषन दिपत,
निरखि गिरिधरन दुख दुंद टारे।
काछ कछि मल्ह 'हरिराय' बैनी गुही,
पीत पट फरहरन फवत भारे॥

कलेऊ—

[४८] राग बिलावल

जसोदा मथि-मथि प्यावत घैया।
कर तबकरी[1] धरत है आगै, रुचि सों लेत कन्हैया॥
बहुरि धरत हरि लेत हैं पुनि-पुनि, सुंदर स्याम सुहैया।
उबर्‌यौ दूध धरौ बेला भरि, पीवत कान्ह नन्हैया॥
मदनमोहन भोजन कों बैठे, परसत लै कर मैया।
खटरस के जु प्रकार धरे सब, निरखि 'रसिक' बलि जैया॥

[४९] राग रामकली

हा हा लेहु एकौ कौर।
बहुत बेर भई है भूखें, देख मेरी ओर॥
मेलि मिसरी दूध औट्यौ, पियौ होइ है जोर।
अबही खेलन टेरि हैं, तेरे ग्वार भयौ अति भोर॥
जागे पंछी द्रुम द्रुमन प्रति, करन लागे सोर।
खेलिवे कों उठि भगौगे, मानों मोर निहोर॥

---

१. बच्चों के लिए बनाई हुई स्वादिष्ट छोटी रोटी।

लेहु ँ ललन बलाय तेरी, छोर अंचल छोर।
बदन चंद बिलोक सीतल, होत हिरदौ मोर॥
बैठि जननी गोद, जेंमन लगे गोविंद थोर।
'रसिक' बालक सहज लीला, करत माखन चोर॥

[५०] राग रामकली

मानहु बात लालन मेरी।
करो भोजन रारि भूलो, हौ माता जू तेरी॥
दूध दधि नवनीत घृत पक्व, परोसि राखे थार।
कहा लोटत धरनि में, मेरे लाल ! होति अवार॥
गोद बैठौ हौं जिमाऊँ, गाऊँ तेरे गीत।
खेलिवे कों तोहि बोलत, ग्वाल तेरे मीत॥
कहौ जाकों जाय टेरौं, वैठे तेरे पास।
करौं दधि मंथान, उदयौ सूर्ज कमल विकास॥
मात के सुन बचन, हँसि उर आइ लगे गुपाल।
कियौ भोजन दियौ अति सुख, 'रसिक' नैन विसाल॥

[५१] [राग विलावल

सोहत दधि की छींटें, स्याम सलौने गात।
माँगि-माँगि लै खात रसीले, बल-मोहन दोऊ भ्रात॥
जननी के कर तें लै दोऊ, खेल खात उछरात।
दधि ऊपर मिसरी कछु लैकें, मुदित मिलावत खात॥
और मिलत में होत बिलंव तब, लोट धरनि में जात।
'रसिकप्रीतम' सों करत निहोरे, रानी जसुमति मात॥

[५२] राग गौरी

घैया पीवत सुंदर स्याम ।
मथि-मथि देत जसोदा मैया, रुचि सों लेत घनस्याम ।।
जल अँचवाय बदन पुनि पोंछ्यौ, आभूषन सब धरे उतार ।
सूक्षम भूषन रहे अंग प्रति, सो छवि निरखि जननि बलिहार।।
दूध भात फिर दियौ रोहिनी, रुचि सों खात मनोहर बाल ।
जल अँचवाय बीरी दई जननी,
यह छबि निरखत 'रसिक' निहाल ।।

[५३] राग ललित

गोद बैठाय जिमावत मैया ।
लै ओदन घृत सानि जसोदा, श्री मुख मेलत कुमर कन्हैया ।।
आस-पास ब्रज के सब लरिका, संग सखा बल भैया ।
खेलत खात हँसाति लाड़िलौ, जसुमति लेत बलैया ।।
रुचि अपनी सों भोजन कीन्हों, कछु पीयौ कर घैया ।
'रसिक' सुहित बीरी आरोगत, जे पठाइ नँदरैया ।।

[५४] राग ईमन

जोई जोई भावै, सोई सोई लीजै ।
तुम्हारे काजें करि करि लाई, मेरौ सुफल स्रम कीजै ।।
अरुन मलाई माखन मिसरी, अरु औट्यौ पय पीजै ।
ओदन बिंजन स्वाद सबरे रस, भोजन छिन छिन लीजै।।
जेंवौ बेगि खेलियों पाछै, भोजन में मन दीजै ।
दैहौं विविध खिलौना तुमकों, मेरौ कह्यौ पतीजै ।।
अलक सँभार बीजना ढोरों, पाछें बिंदु लगीजै ।
'रसिक प्रीतम' जननी सँग जेंवत, बाल लीला रस भीजै।।

[५५]　　राग नट

जेंवौ ललन मेरे बारने ।
छाँड़ि देहु हठ और खेलिवौ, मेरौ कह्यौ मानि,
　　विनवत जेंवन कारने ॥
परोसी धरी होति थारी सियरी, चलहु लै वचन निवारने ।
'रसिक प्रीतम' जेंवौ वेगी आइ वल आगै, दुरमद दानव मारने ॥

[५६]　　राग विलावल

गो-चारण —

ब्रज तें वन कों चलत कन्हैया ।
ग्वाल मंडली मधि वल मोहन, पहैलें चराई गैयाँ ॥
नंद सुनंद गोप गोपीजन, जसुमति रोहिनी मैया ।
बड़रे ग्वालन कों सुत सोंपत, पुलकित लेत वलैया ॥
दधि ओदन भाजन भरि छीकें, एकन काँधे चलैया ।
मुरली मधुर वजावत गावत, हरि हलधर दोऊ भैया ॥
वैठे जाय सघन वन अंतर, गौ दुहि मथत हैं घैया ।
आपुन पीवत औरन प्यावत, 'रसिक' निरखि वल जैया॥

[५७]　　राग सारंग

गाय चरावन चले प्रभात ।
कर गहि वेनु लकुटि करि बाँधें, पीतांवर फहरात ॥
आगे धेनु हाँकि ग्वालन संग, पाछै लगि वतरात ।
दै संकेत चलत वढ़ि आगै, फिरि-फिर देखत जात ॥
अति आतुर व्रज जुबतिन कों कछु, सेंन देत मुसकात ।
नव निकुंज सकेत ठौर कौ, मिस करि संग लगात ॥
अति सुजान काहू न जनावत, अपने मन की बात ।
मोहन सवन बाल लीला में, ढिग खेलत न अघात ॥
गूढ़ चरित रस भरित कृष्ण के, हिरदे में न समात ।
'रसिक सिरोमनि' हरि लीला रस, तजि कें कछु न सुहात ॥

छाक—— [५८] राग सारंग

भैया हो ! अबहु छाक नहीं आई ।
भई अबेर भूख लागी है, काहे बेर लगाई ।।
देखौ तौ मारग में सब मिलि, कौन हि आज पठाई ।
भूलि परी है किधों बिपिन में, पेंडें नाँहि चलाई ।।
किधों हमारे प्रेम बिबस तन, वा पै चल्यौ न जाई ।
किधों गोपाल लेत बोलति है, गदगद सुरन सुहाई ।।
रहे गोपाल अकेले जब-तब, ग्वालिन निकट बुलाई ।
आलिंगन दै अधर महा रस, सीस छाक उतराई ।।
टेर देत ग्वालन कों मोहन, ढिग ही छाक है पाई ।
'रसिक प्रीतम' कौ मधुर नाद सुनि, ग्वाल मंडली धाई।।

[५९] राग सारंग

लाड़िले ! तुमकों छाक लै आई ।
बहुत बार के भूखे जानि कें, जसुमति मोहि पठाई ।।
बीच मिले मृग नाद विमोही, जिन यह ठौर बताई ।
चरन कमल के चिह्न विलोकत, स्रम सब गयौ भुलाई ।।
ढिग आये सुन वचन मनोहर, आरति अति उपजाई ।
बेनु नाद मधि स्रवन सुधा धँसि, बिरहा अगिन बुझाई ।।
मुख निरखत अपुने मोहन कौ, छाक तरें उतराई ।
मुख चुंबन दै 'रसिक सिरोमनि', ग्वालिनि गरें लगाई।।

[६०] राग सारंग

लीजै लालन ! अपुनी छाक ।
जब तें तुम बन आये, तब तें रहत चढ्यौ चित चाक ।।
देखि लेहु नीके करि सगरे, कीन्हे बहु विधि पाक ।
भोजन करौ देखि छाया में, सीतल उनई ढाक ।।

हौं हूँ ढिग बैठों ज्यों उतरै, सो चरनन कौ थाक।
मन भावै त्यों खेल करौ तुम, आगै मेरे निसाँक ॥
पूरौ सकल मनोरथ मेरे, हौ आई इहि ताक।
'रसिक प्रीतम' कब के बिछुरे हो, मिलन आई हौं नाक ॥

[६१] राग सारंग

पीत उपरना वारे ढोटा, कबहू की टेरत ग्वालिनी।
छाक बनाय लै आई विविध विधि, कालिंदी तीर उपहारिनी ॥
कहा लेउ ऐसी गाय चराइवे में,
जाइ सँभारौ क्यों न छकहारिनी।
'रसिकप्रीतम' तुव रूप विमोही, कुंजन कुंजविहारिनी ॥

[६२] राग सारंग

तुमकों टेरि टेरि हौं हारी।
कहाँ जु रहे अबलौं मनमोहन, लेहु न छाक तिहारी ॥
भूलि परी आवत मारग में, पैंड़ौ क्यों हु न पायौ।
बूझत बूझत यहाँ लौं आई, जब तुम वेनु बजायौ ॥
देखौ मेरे अँग कौ पसीना, उर कौ अंचर भीनौ।
'रसिकप्रीतम' प्रभु प्रीति जानिकै, धाइ आलिंगन कीनौ[1] ॥

[६३] राग सारंग

लालन ! केतिक दूर बन आवत।
जसुमति मात औसेर करत है, ढिग ही क्यों न चरावत ॥
हारि परी हौं यहाँ लौं आवत, द्यौस चढ्यौ लखि धावत।
ब्रज जन तजि यों दूरि आयवौ, सो तुमही कों भावत ॥

---

१. यह पद परमानंददास के नाम से भी मिलता है।
देखिये 'परमानंद सागर' पृ० १३४, पद २९७

चलहु न उठि सो ठौर लाड़िले, जहाँ ये छाक धरावत ।
कर गहि चले निकुंज भवन में, अद्भुत भाव जनावत ॥

छाक धराय यहाँ लों आयौ, दौनौं क्यों न बतावत ।
सीतल ठौर देख भोजन की, सबै हौंहु सँभरावत ॥

गरैं बाँह धरि चले 'रसिक' प्रिय, परसत मोद बढ़ावत ।
गूढ़ चरन गोचारन कौ यह, दास मुदित मन भावत ॥

यशोदा और गोपियों की चिंता—

[६४] राग श्री

जसुमति अति औसेर करै ।
अजहु न आये बन तें मोहन, बार बार मन सोच धरै ॥
छिन-छिन बूझत सब सखियन सों, दोऊ नैनन नीर ढरै ।
देखन पठवति बार बार ही, दूरि जहाँ लों खरिक परै ॥
अति आतुर मुरली की धुनि सुनि,व्याकुल क्यों हूँ न हृदै ठरै।
'रसिक सिरोमनि' मिले नंद-सुत, बदन चूमिकै अंक भरै॥

[६५] राग मालव

लाल ब्रजभूषन मन भावते, नैक बन तें बेगै आव हो ।
जसुमति सुत करुना भरे, नैक हिरदै सुख उपजाव हो ॥

डोलात बर्हापीड़ की, स्रुति जुग कुंडल झलाकाव हो ।
नाँचत तानन तोरि कें, नैक अलाक बदन अरुझाव हो ॥

देखत इत-उत भाव सों, नैक चपल नैन चमकाव हो ।
उठत रेख मुख चंद्र की, सीतलाता हियौ सिराव हो ॥

चलान जुगल मृदु गंड की, नैक चुंबन चाव बढ़ाव हो ।
अधर सुधा रस पूर सों, मुरली के रंध्र पुराव हो ॥

गावत गुन गोपीन के, नैक स्त्रवनन सब्द सुनाव हो।
सुंदर ग्रीवा डोलनी, पलकन की परनि भुलाव हो॥
कंठसिरी दरसाय कें, नैक तन की सुध बिसराव हो।
गजमुक्ता बिचका लह्यौ, सो उर पर हार धराव हो॥
पहौंची दोऊ कर सोभतीं, नैक फुँदना स्याम लटकाव हो।
बाजूबंद भुज में बने, मेरे मन के मांझ गढ़ाव हो॥
कटि पीतांबर काछिनी, नैंक नीकै अंग नचाव हो।
छुद्र घंटिका बाजनी, ता ऊपर सरस धराव हो॥
चलन सो न्यारी भाँति की, नैक नूपुर सब्द सुनाव हो।
नख भूषन की ज्योति सों, सकलंकी चंद लजाव हो॥
आगै गोधन हाँकि कै, नैक पाछै खेल कराव हो।
बैंत सु फूलन गूँथि कै, नैक काँधै धरै दिखाव हो॥
गोप बालकन मंडली मधि, नायक नैक कहाव हो।
नाचत मिस ब्रजभूमि में, नैंक चरन चिन्ह उपराव हो॥
आवत बाँये हाथ लै, नैक लीला कमल फिराव हो।
बनमाला अलि जूथ कों, नैक कमल फिराइ उडाव हो॥
ब्रज जुबतिन के वृंद में, धँसि अपनौ अँग परसाव हो।
आलिंगन बहु भाँति दै, जुबतिन के पूरौ भाव हो॥
द्यौस बिरह व्याकुल सखी, लै अपुने अंग लगाव हो।
तुम बिन सूनौ साँझ कों, अपुनौ ब्रज फेर बसाव हो॥
घोष द्वार चलि आइ कै, बल सँग आरति उतराव हो।
दै सुख सिगरे लोग कों, नैक दिन कौ बिरह बहाव हो॥
इहि बिधि ब्रज जुबती कहै, सुनि नंद महर घर आव हो।
'रसिकन' यह बर दीजियै, नित श्री वल्लभ पद पाव हो॥

[६६] राग गौरी

अहो हरि ! आवन की भई बेर ।
मुरली की धुनि सुनियत कानन, अरु गैयन की टेर ।।
उह देखौ नँदनंदन की चढ़ि, कदम पीतांबर फेर ।
धेनु धाय ढिग आय गईं सब, कमल बदन की हेर ॥
सुन री सखी! देखन कों जैयै, जिय बिच दरस औसेर ।
'रसिकराय' पिय बेनु बजावत, उहि गोबरधन ठेर ।।

बन से वापिसी— [६७] राग अड़ानौ

कान्ह हो ! अपुनी गैया लीजै टेरि ।
दूरि गईं या बन तें भूलि गईं,
बुलाऔ कदम चढ़ि पीतांबर फेरि ।।
बिगड़ गईं न फिरत काहू पै,
लै लकुटी करियै जू इकठी घेरि ।
ग्वाल कहत सब 'रसिक प्रीतम' सों,
ह्वै मन मोहित सुंदर मुख तन हेरि ।।

[६८] राग गौरी

अहो कान्ह ! गैया कित बिडरानी ।
कहाँ चलाइ चराई कौन बन, कहाँ पिवायौ पानी ।।
भई साँझ बन माँझ फिरत हो,
बोलत पंछी कोऊ न बानी ।
'रसिक प्रीतम' तुम भूले से फिरत कहा,
हम बात तिहारी न जानी ।।

[६९] राग अडानी

गैया घेरि-घेरि राखीं तरनि-तनया तट,
कूल कलिंदी कान्ह बैठे रहत ।
हूँकि हूँकि फिरि-फिरि चितवत ब्रजनाथ कों,
उनकी ओरनि ही हेरिबौ चहत ॥
ठाड़ीं तिन्ह ठौर रहत हैं वे, जहाँ चरन अंक धरनी में लहत ।
सुमिर टेरि गोबिंद बदन की, दुहू दृगन नीर झरि बहत ॥
प्रगट होत हरि रूप हृदै में, झुकि-झुकि चरनन रज गहत ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु काहे न आवत, ब्रज सब विरह-दाह दहत ॥

[७०] राग श्री

बन ते आवत साँझ समै हरि ।
गोरज छुरित नील कुंतल मुख, राखत क्यों नहिं अपुने उर धरि ॥
बैठी कहा बिचारति मन में, सनमुख पिय के बेगि गौन करि ।
दोऊ नैन कमल संपुट इन्ह, हरि मुख चंद सुधा रस सों भरि ॥
अंग अंग प्रति परसि परम रस, सुख कौ अनुभव लेहि जु सहचरि।
दुहुँ कर लै चरन कमल गहि, काहें न पिय के दौरि पाँय परि ॥
प्रथम समागम सुख समूह लै, गोपी जन बल्लभ कों अनुसरि ॥
अंग परसि परिरंभन बहु विधि, करि काहे न द्यौस कौ दुख टरि ।
'रसिक' प्रभु ये बिनती करत सदा, गुन गाऊँ लोक वेद पद तें तरि॥

[७१] राग गौरी

देख री ! नंद-नंदन की आवनि ।
लै-लै नाम सकल सुरभिन के, मधुरे सुर मुख बेनु बजावनि ॥
दुहूँ दिसि पाँति बनी गोपिन की, सब तन चितवत सीस डुलावनि ।
'रसिक प्रीतम' की हौं बलिहारी, हँसि दृग ठौर बतावनि ॥

[७२] राग गौरी

देख री ! नृत्य करत हरि आवै ।
चितै चितै बनमाली मधुर सुर, लै कर बेनु बजावै ॥
बिविध भाँति पग धरत धरनि में, बिचरन खेद गमावैं ।
तान तोरि दृग जोरि आपुने, चरन चिह्न उपटावैं ॥
कबहुक कमल चलाइ दूरि ते, आपु लैन कों धावैं ।
मुख आमोद मत्त मधुपन कों, कमल फिराय उड़ावैं ॥
दुहूँ दिसि पंगति गोपीगन की, मधि लटकति गति भावै ।
साँझ समै आनन बिधु निरखत, सब कौ हृदौ सिरावै ॥
विविध भाँति नैनन सैनन दै, रति रस ठौर बतावै ।
कबहुँक करि पल्लव की फेरनि, अपने संग बुलावै ॥
सुरत केलि ब्रज जुबतिन के संग, बैठे रैन बितावैं ।
'रसिकराय' प्रीतम कों ऐसैं, और कहा कोऊ पावै ॥

[७३] राग गौरी

सखी री ! आवत मो मन ऐसैं ।
लटकत आवत गोधन के संग, साँझ समै भेटों कैसैं ॥
तपत सकल अंग, तलफत निस-दिन, जल ते निकरि मीन ह्वै जैसे ।
लेहुँ लगाय आपुने उर सों, 'रसिकराय' पिय थोरे वैसै ॥

माता का वात्सल्य— [७४] राग गौरी

कहौ कहाँ खेले हौ लालन ! बात कहौ मोसों बन की ।
आउ उछंग साँवरे मोहन, गोरज पौछों बदन तेरे की ॥
सुंदर बदन कमल कुँभिलानौ, औरैं दसा भई या तन की ।
'रसिकप्रीतम' सों कहत नंदरानी,
हौं बलिहारी छगन-मगन की ॥

[७५] राग देव गंधार

लाल ! तुम कैसै चराईं गाइ ।
ग्वालन सँग छैयाँ में बैठे, कौन विपिन में जाइ ॥
कहाँ-कहाँ खेलें बालक लीला, छुवत परस्पर धाइ ।
लै काँधे हारे जीतेन कों, दिये ढौर पहुँचाइ ॥
ठाड़े कहाँ कदम तर गिरिधर, मधुरी बेनु बजाइ ।
मूँदे द्दग दुरि रहे ग्वाल तुम, दीन्हे कहाँ बताइ ॥
गिरि चढ़ि कहाँ पुकारी गैयाँ, ऊँची टेर सुनाइ ।
'रसिकप्रीतम' प्रभु कहौ कृपानिधि, बूझत जसुमत माइ ॥

[७६] राग नट

आओ मेरे ढिग ललित गोपाल ।
देखौ वदन कमल कुम्हिलानौ, घाम लगी वनमाल ॥
गो-रज अलक लगी हौं पौंछों, नयौ तिलक देंउ भाल ।
राई लौन उतारों मुख पर, दूर होइ जंजाल ॥
पीत बसन कटि पट पहिराऊँ, गरैं धरों वनमाल ।
बैठि जिमाऊँ दूध भात बल, वड़े होउ ततकाल ॥
पौढ़ाऊँ लै गोद सेज पर, करों बयारि मेरे लाल !
'रसिक प्रीतम' सुनि वचन मात के, आये लटकत चाल ॥

[७७] राग रामकली

ग्वालन संग गमन वन में कियौ,
कहाँ कहाँ फिरे हौ कहो ।
कहाँ कहाँ गाइ चराइ पिवाईं,
कौन घाट खेले तरु छाँह चहो ॥
राम स्याम मुख लागी घाम कहूँ,
खेलन वन-वन फिरत अहो ।
'रसिक प्रीतम' सों बूझत नंदरानी,
साँची बतावत काहे सकुचि गहो ॥

[७८] राग गौरी

मैया ! यातें भई अबेर ।
आवत भाजि गई एक गैया, भाजि गई बन फेर ॥
दौरे ग्वाल सब वाके पाछै, पकरन की करि आस ।
चढ़ि कदंब पीतांबर फेरत, आइ गई मो पास ॥
हौं चुचुकार पीठ कर फेरचौ, लैहड़े लई लगाय ।
बतियाँ सुनत 'रसिक प्रीतम' की, फूलत जसुमति माय ॥

[७९] राग गौरी

देख्यौ एक अचंभौ आज ।
धेनु चरावत धेनुक आयौ, दैन्य रूप धरि मारन काज ॥
किनहु न लख्यौ, लख्यौ बल भैया, मारौ छिन ही माँझ ।
रहे सकल बन बालक खेलत, निकसे व्हाँते साँझ ॥
कुसल परति है तेरे पुन्यन, जहाँ जहाँ हम जात ।
'रसिक सिरोमनि' सुत की बातें, सुनि सुनि फूलत मात ॥

गो-दोहन— [८०] राग गौरी

मोहन ! गो-दोहन करि दीजै ।
यह दोहनी लियैं हौं ठाड़ी, जासै नैक न छीजै ॥
सुनियत हौं दुहि जानत नीकै, वही जुगति करि लीजै ।
अति एकांत खिरक में बैठौ, बहु मीठौ पय पीजै ॥
देखौ स्वाद हमारे रस कौ, जो नहिं कहत पतीजै ।
'रसिकप्रीतम' नित-प्रति ऐसें ही, मिलि कै अति सुख कीजै ॥

[८१] राग नायकी

पूत महरि कौ कान्हा खरिक दुहावत गैयाँ ।
साँझ समै बाँधे फेंटा, गरै गुंजमाल, पहिरै तनियाँ,
अरु बैठौ है अधपैयाँ ॥

काँधै नोई लिएँ हाथ दोहनी, रूप मोहनी मान हरैया।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत,
हँसि हँसि लीजै री बलैया ॥

[८२]　　　राग कान्हरी

भूलि रही छवि अवलोकन, स्याम सुंदर करत गो-दोहन।
कहूँ जात धार, कहूँ दोहनी, कहूँ पीतपट, मुरली परी गिर,
कहूँ लागि रह्यौ मन मनमोहन ॥
कछुए विचार करत, कछु बिच बिच मुसकात जात,
उठत मोद रस पीवन।
'रसिक प्रीतम' की अटपटी लीला, बूझि न परत सखी री!
है यह ब्रज गोपी जन कौ जीवन ॥

[८३]　　　राग आसावरी

मोहि सुहावति हैं वे गैयाँ।
नटवर भेष धरें जिन्ह पाछै, आवत बेनु बजैया ॥
चढ़ि कदंब जिनकों टेरत है, पीतांबर फेरत है कन्हैया।
जिनकों बोलत गो दोहन कों, अपने अंचल लैया ॥
पोंछत पीठ गोपाल आपु कर, हरित दूब मुख दैया।
हेठि बैठ अधपैयन पीवत, गोबिंद धार दुहैया ॥
बोलत ही ही री हरि सन्मुख, स्रवनन पूँछ उठैयाँ।
जिन्ह कौ प्यार करत सुत प्यारी, जानि जसोमति मैया ॥
जे राखी मघवा के बरसत, गिरधर गोकुल रैया।
जिनके लियें वेद ह्वै आपुन, राखी अगिन हरैया ॥
सुनत बेनु धुनि जे दृग मूंदे, रूप एक रस भैया।
'रसिक प्रीतम' मन हरत हमारे, ब्रज गोपाल कन्हैया ॥

ब्यारू— [८४] राग ईमन

रानी जू अपने सुतहि जिमावत ।
बूझत बात कहौ कैसै खेले बन-बन, मैया कहि-कहि रुचि उपजावत॥
करत बयार अपुने अंचर सों, पोंछत बदन मन मोद बढ़ावत ।
'रसिक प्रीतम' कों लै नंदरानी जू, हँसि-हँसि कंठ लगावत ॥

राधा-जन्म— [८५] राग सारंग

रावल श्री राधा प्रगट भई ।
बिधना यह भागन व्रज जन कों, रस की सिंधु दई ॥
कीरति श्री बृषभान मान दै, जाति बुलाइ लई ।
अति आनंद सबन के मन की, आरति निबर गई ॥
देखन नंद चले लै सुत कों, बात जबै जनई ।
भूषन बसन जनम दिन के सजि, सब विधि यहै ठई ॥
कही नंद जसुमति सों कीरति, लेहु बधाई नई ।
सुता हमारी पूत हमारौ, जोरी सरस ठई ॥
भीतर खोलि पटा बैठारे, दोऊ सहज एकई ॥
पगिया बाँधि उतारि आरती, आरति सब बिलई ॥
ता दिन तें सगरे या व्रज में, सुख की बेलि बई ।
लीला सुमिरत भई 'रसिक' की, मति आनंद मई ॥

[८६] राग हमीर

रावल में राधा प्रगट भई ।
रूपनिधान छबीली प्यारी, कीरति अंक लई ॥
आनंद भयौ सकल पुर व्रज में,सखी वृंद सब फूलि रहीं ।
गोपी गोप गाय अरु गोकुल, प्रेम उमंग छहीं ॥
सब गुन निपुन सकल अंग सुंदर, आनंद बेलि बई ।
'रसिक प्रीतम' पिय की यह जोरी, सोभा सिंधु मई ॥

[८७] राग सारग

प्रगटी श्री वृषभान-दुलारी।
जै-जैकार होत त्रिभुवन में, अब ऐहैं गिरधारी॥
नाचौ गावौ करौ कुलाहल, आनँद उपज्यौ भारी।
रसिकसिरोमनि 'रसिकराय' प्रभु, लीजै भेंट हमारी॥

[८८] राग कान्हरौ

महारस पूरन प्रगट्यौ आनि।
अति प्रफुलित घर-घर ब्रजनारी, श्री राधा प्रगटी जानि॥
धाई मंगल साज सबै लै, महा महोच्छव मानि।
आई घर वृषभान गोप के, श्रीफल सोहत पानि॥

कीरति सुता बदन बिधु देख्यौ, सुंदर रूप बखानि।
नाचत गावत दै करतारी, होत न हरख अघानि॥
देत असीस सीस चरनन धरि, सदा रहौ सुख-दानि।
रस की निधि ब्रज 'रसिकराय' संग, करौ सकल दुख-हानि॥

[८९] राग सारग

धनि धनि वृषभान राय, कीरति ठकुरानी।
जिनके घर प्रगटी आय, राधा मन मानी॥
सुनत स्रवन ब्रज की नारि, देखन अकुलानी।
दौरीं करि-करि सिंगार, गावत मृदु बानी॥

हमरे ब्रजराज कुमर, जोरी भई जानी।
पूजैगी आस सबै, यह मन में आनी॥
रावल सब आय जुरीं, करति जस बखानी।
सर्वहिन कौ सर्वस है, देखत पहिचानी॥

उमँगि उमँगि नाचति, तजि लाज, हिय हुलसानी।
एहैं अब पूरन-रस बल-कारि रति-दानी॥
दीन्हे आभरन बसन, पहिरें हरषानी।
मन भाई दै असीस, राजा रजधानी॥
सबहिन के तन मन की, आरति बिनसानी।
सुमिरत सुख 'रसिकन' की, नित्य श्रुति बिकानी॥

राधा की जन्म बधाई—

[९०] राग सारंग

श्री बृषभान कें आज बधाई।
आनँदनिधि, सोभानिधि, कीरति कन्या जाई॥
फूले नर नारी बरसाने, घर-घर मंगल गाई।
फूले नंद जसोदा मन में, फूले कुँवर कन्हाई॥
फूलीं आँगन नाचत जुवती, अंग-अंग छबि छाई।
फूले 'रसिक' कृष्ण हितु प्रगटी, आनँद उर न समाई॥

राधा का पलना— [९१] राग सारंग

झूलो झूलो राजकुमारी छबीली प्यारी।
श्री कीरति प्रान अधार, छबीली हो प्यारी।
सब सुंदरता की सार, छबीली हो प्यारी॥
नवल कनक को पालनो, प्यारी रतन जटित जराइ।

कबहुँ किलकि हँसि-हँसि उठै, प्यारी चितवत नैन बिसाल।
जननी दीठि उर जानि कै, प्यारी देत चखौड़ा भाल॥
जरतारी टोपी लसै, प्यारी झँगुली पीत सुदेस।
कँठ बघना कर पौंहचियाँ, प्यारी सोहत सुंदर भेस॥
माखन मिसरी देहुँगी, प्यारी घुटुरुन चलौ सुहाइ।
तेरे चरन रुनझुन करें, प्यारी षटपद सुनत लजाइ॥
वह दिन कैसौ होइगौ, प्यारी तुतरे बैन बुलाइ।
मैया कहि टेरै तबै, प्यारी सर्वस दैउँ लुटाइ॥
मैया मनोरथ यों करै, प्यारी जाकौ श्री कीरति नाँउ।
दीजै यह फल 'रसिक' कों, प्यारी श्री वल्लभ गुन गाँउ॥

[९२] राग रामकली

मेरी लाड़िली कुँवरि, झूलि पालने झुलाऊँ।
निरखि निरखि छबि, अति सुख पाऊँ॥
सुरंग खिलौनाँ, लै लै खिलाऊँ।
कंठ गुलगुली करि, नीकै हँसाऊँ॥
नाक नथुनी गरै, हार धराऊँ।
पाँय पैजनी, कटि कोंधनि पहिराऊँ॥
तेरौ सुभग रूप, देखि नाँ अघाऊँ।
दीठि लगिवे के डर, दिठोंना बनाऊँ॥
माखन मिसरी तेरे, हाथन दिवाऊँ।
मुख में तू मेलि, तेरी बलि-बलि जाऊँ॥
कहत 'रसिक प्रीतम', सदा गुन गाऊँ।
श्री बल्लभ पद प्रताप, दरसन हौं पाऊँ॥

छेड़-छाड़— [६३] राग सारंग

कहौ जू कापै सीखे लालन ! ऐसी अटपटी,
करत जासों तासों ढीठ्यौ ।
जो कोऊ चलिय जात अपनी बाट, ताके आइकें ढिग,
करत जोराबरी चित चीठ्यौ ॥
पाँच बरस के बारे ब्रज में जहाँ तहाँ लंगर देखियत,
सूधे नैनाँ न करत बसीठ्यौ ।
'रसिक प्रीतम' अपुने ब्रज की तुम टेक न मानत,
आपु ही तें करत अदीठ्यौ ॥

[६४] राग विभास

लालन ! जिन मेरी बाँह गहौ ।
मारग में लोग देखें, दूरि ठाड़े रहौ ॥
मन में है कौन बात, सोई क्यों न कहौ ।
ढीठ्यौ कहा देत एती, नैक लाज लहौ ॥
कहोंगी जाय रायजू सों, बाट रोकत हौ ।
कैसै हम आवे-जॉय, पनघट पंथ गहौ ॥
तुमहि कों कछु न बिचार, लरकाई बस हौ ।
'रसिक प्रीतम' छाँड़ि देहौ, लोक हँसत हौ॥

[६५] राग भूपाली कल्याण

यह कौन टेब तेरी कन्हैया, जब तब मारग रोकै ।
कैसै के भरन जाँहि पनियाँ जुबति जन,
आड़ौ ठाड़ौ ह्वै रहै कर लकुटी लिए दृग भोकै ॥
गगरी डारि देत कबहु पीछे तें आइ,
ऐसै बजात तारी, जासों कोऊ चोंकै ।
'रसिक प्रीतम' की अटपटी बातें सुन री सखी !
समझी न परत याकी नोकैं ॥

[९६] राग सारंग

जल क्यों न पियौ, जो तुम हौ पिय ! प्यासे ।
समझ सोच भरि लाई जमुना जल, पीवत क्यों अलसासे ।।
जल ही मिस तुम उझकत डोलत, नवल तिया रस रासे ।
'रसिक प्रीतम' जल तुम नहिं पीयो,
चाहत अधर सुधा रस आसे ।।

[९७] राग श्याम कल्याण

गेद तक मारी सँवलिया, नट नागर चितचोर ।
भयौ निसंक अंक भर लीनी, भ्रकुटी नयन मरोर ।।
कहा करूँ कछु बस ना मेरौ, ऐसौ जालिम जोर ।
'रसिक' हठीलो जिय तरसावै, मानत नाहिं निहोर ।।

[९८] राग अडानौ

नातर होती लराई दृगन में, लाजहि बीच परी ।
घूँघट पट मेरौ सरकायौ, मुरली अधर धरी ।।
फेरि मारग दिस खेल लगाई, भँमर करी चकरी ।
'रसिक प्रीतम' के अंक बसी हों, मेलि गरें भुज री ।।

[९९] रागिनी टोड़ी

कैसी यह परी बानि, बाट चलत गहत पानि,
जानि-जानि जुबतिन के अचरा गहि तानों ।
अब लौं लरिकाई मानि, राखी मैं बहौत कानि,
गुन की हौ खानि, तुम्हें नीके करि जानों ।।
छाँड़ौ लपटानि लाल, देखत सब सखा ग्वाल,
लोक लाज बड़ी हानि, आन हू न मानों ।
'रसिक प्रीतम' रस के दानि, कहु धौं कहा ये अकुलानि,
समयौ पहिचानि लगत नीकौ बतरानों ।।

मुरली-हरण — [१००] राग दादरा

चोरौ सखी बंसी आज दाव भलौ पायौ है ।
यह उपकार प्यारी सदा हम मानेगी,
गौरी राग गाय रसिक साँवरौ रिझायौ है ।।
बहुत अधरामृत चुवायौ स्याम मुरली बीच,
दिन-दिन की कसक आज काढ़ पायौ है ।
'रसिक प्रीतम' जोपै बिनती करें हजार बार,
तौ हू या बाँसुरी कौ भेद ना बतायौ है ।।

[१०१] राग भूपाली

बंसी मेरी प्यारी, दीजौ प्रान-प्रान प्रान ।
यहि ठौर काल्हि भूल्यो री, सुख-दान दान दान ।।
नहिं काम की तिहारी, दीजै आन आन आन ।
जाते करूँ मैं तेरौ री, गुन-गान गान गान ।।
बिनती सुनौ हमारी, दै कान कान कान ।
कीजै कृपा 'रसिक' पै, जन जान जान जान ।।

[१०२] राग हमीर

तेरी हौं कहूँ आज लाल मुरली मैं पाई ।
तौ दैहों जो मेरे ढिग आओ, ह्वै अधीन ब्रजराज दुहाई ।।
एक बेर धुन मोहि सुनाओ, जो खग मृग पसु तरुन सुनाई ।
'रसिक प्रीतम' छबि बदन कमल की, मो मन बार-बार बलि जाई।।

[१०३] राग हमीर

दै री मुरली मेरी, हौं ताहि बजाइ सुनाऊँ ।।
कर गहि कहत रसिक नँद नंदन, तोहि अकेली पाऊँ ।।
सबहि सकुच सुर होत न वैसौ, जैसौ अकेलें गाऊँ ।
'रसिक प्रीतम' प्यारी सों कहत हैं,
तू रीझै तैसै रिझाइ, अधर-रस पाऊँ ।।

दान-लीला — [१०४] राग विलावल

श्री गोबर्धन की सिखर ते, मोहन दीनी है टेर ।
अंतरंग सों हम कहत हैं, सब ग्वालिनि राखौ घेर ॥
नागरि ! दान दै ॥

ग्वालिन रोकी ना रहैं, ग्वाल रहे पचिहारि ।
अहो गिरिधारी दौरियो, सो कह्यौ न मानत ग्वारि ॥ नागरि०

चली जाति गोरस मदमाँती, मानों सुनी नहिं कान ।
दौरि आये मनभाँवते, सो रोकी अंचल तान ॥ नागरि०

एक भुजा कंकन गहे, एक भुजा गहि चीर ।
दान लैन ठाड़े भये, गहबर कुंज कुटीर ॥
मोहन ! जान दे ॥

बहुत दिना तुम बचि गई हो, दान हमारौ मारि ।
आजु हौं लैहौं आपुनौ, दिन दिन कौ दान सँभारि ॥ नागरि०

रसनिधान नवनागरी, निरखि बदन मृदु बोल ।
क्यों मुरि ठाड़ी होत हौ, घूँघट पट मुख खोल ॥ नागरि०

हरखि हियें कर करखिये, मुख तें नील निचोल ।
पूरन प्रगट्यौ देखियै हो, मानों चंद घटा की ओल ॥ नागरि०

ललित बचन समुदित भये, नेति नेति यह बैन ।
उर आनंद अति ही बढ़्यौ, सो सुफल भये मिलि नैन ॥ नागरि०

या मारग हम नित गईं, कबहूँ सुन्यौ नहीं कान ।
आजु नई यह होति है, सो माँगत गोरस दान ॥ मोहन०

तुम नवीन नव नागरी, नूतन भूषन अंग ।
नयौ दान हम माँगहीं, सो नयौ बन्यौ यह रंग ॥ नागरि०

चंचल नयन निहारियै, अति चंचल मृदु बैन ।
कर नहिं चंचल कीजियै, तजि अंचल चंचल नैन ।। मोहन०
सुंदरता सब अंग की, बसनन राखी गोय ।
निरखि-निरखि छबि लाड़िली, मेरौ मन आकरषित होय ।। ना०
लै लकुटी ठाड़े रहे, जानि साँकरी खोरि ।
मुसुकि ठगोरी लाइके, मोसों सकत लई रति जोरि ।। मोहन०
नैक दूरि ठाड़े रहौ, कछुक और सकुचाय ।
कहा कियौ मन भावते, मेरे अंचल पीक लगाय ।। मोहन०
कहा भयौ अंचल लगी, पीक हमारी जाय ।
याके बदले ग्वालिनी, मेरे नैनन पीक लगाय ।। नागरि०
सूधे बचनन माँगियै, लालन गोरस दान ।
मोहन भेद जनाइ कें, सो कहत आन की आन ।। मोहन०
जैसें हम कछु कहत हैं, ऐसौ तुम कहि लेहु ।
मनमानी सो कीजियै, पर दान हमारौ देहु ।। नागरि०
कहा भरें हम जात हैं, दान जु माँगत लाल ।
भई अबार घर जान दै, सो छाँड़ौ अटपटी चाल ।। मोहन०
भरें जात हौ श्रीफल कंचन, कमल बसन सों ढाँकि ।
दान जो लागत ताहि कौ, तुम दैकर जाहु निसाँकि ।। नागरि०
इतनी बिनती मानियै, माँगत ओली ओड़ि ।
गोरस कौ रस चाहियै, लालन ! अंचल छोड़ि ।। मोहन०
संग की सखी सब फिरि गईं, सुनिहैं कीरति माय ।
प्रीति हिये में राखियै, सो प्रगट किये रस जाय ।। मोहन०
काल्हि बहुरि हम आइहैं, गोरस लै सब ग्वारि ।
नीकी भाँति चखाइ हौं, मेरे जीवन हौं बलिहारि ।। मोहन०
सुनि राधे नव नागरी, हम न करै बिसवास ।
कर कौ अमरित छाँड़ि कै, को करै काल्हि की आस ।। नागरि०

तेरौ गोरस चाखिवे कों, मेरौ मन ललचाय ।
पूरन ससि कर पाय कैं, चकोर न धीर धराय ।। नागरि०

मोहन कंचन कलसिका, लीन्हीं सीस उतारि ।
स्रमकन बदन निहारिकें, सो ग्वालिन अति सुकुमार ।। मोहन०

नव बिंजन गहि लाल जू, श्री कर देति ढुराय ।
स्रमित भई चलौ कुंज में, नैक पलोटों पाँय ।। नागरि०

जानत हौ यह कौन हैं, ऐसी ढीठचौ देत ।
श्री वृषभानु कुमारि हैं, अरी तोहि बीच को लेत ।। नागरि०

गोरे श्री नंदराय जू, गोरी जसुमति माय ।
तुम याही ते साँमरे, ऐसे लच्छिनु पाय ।। मोहन०

मन मेरौ तारेन बसै, और अंजन की रेख ।
चोखी प्रीति हिए बसै, याते साँवल भेख ।। नागरि०

आपु चाल सों चालियै, यहै बड़ेन की रीति ।
ऐसी कबहुँ न कीजियै, हँसे लोग बिपरीत ।। मोहन०

ठाले ठूले फिरत हौ, और कछू नहिं काम ।
बाट घाट रोकत फिरौ, आन न मानत स्याम ।। मोहन०

यहाँ हमारौ राज है, ब्रज मंडल सब ठौर ।
तुम जु हमारी कुमुदनी, हम कमल बदन के भौंर ।। नागरि०

ऐसे में कोऊ आइ है, देखै अद्भुत रीति ।
आज सबै नंदलाल जू, प्रगट होइगी प्रीति ।। मोहन०

ब्रज वृंदावन गिरि नदी, पसु पंछी सब संग ।
इन सौ कहा दुराइयै, प्यारी राधा मेरौ अंग ।। नागरि०

अंस भुजा गहि लै चले, प्यारी चरन निहोर ।
निरखत लीला 'रसिक' जू, जहाँ दान मान की ठौर ।।नागरि०

[१०५] राग सारंग

तू दै दै री हमारौ सूधें दान।
कहाँ जात है री कतराएँ, राख्यौ अब लों मान॥
ढिग आवै तौ करि हौं भलाई, एती बुलाई करी सयान।
'रसिक प्रीतम' ग्वालिन उर लाई, कियौ महा रस पान॥

[१०६] राग सारंग

अरे तू काहे कों ब्रजराज कुमर गरवीले, माँगत दान गोरस कौ।
कब तें लागत, जब तें तू देख्यौ, मैं न सुन्यौ,
तातें मैं सुनायौ, कहा सुख तेरे दरस कौ॥
यह न भली, जो भली सोई कहु, कहा कहों,
जो कछु मन भावै, दरसन करि हों भरि रस कौ।
'रसिक प्रीतम' करि बचनन चातुरी, आतुर करि दीनी,
सो है रस नव नेह परस कौ॥

[१०७]

ए हो ब्रजराज कुँवर! कहा कहत?
हौं दान माँगत, काहे कौ? तेरे गोरस कौ।
कब तें लागत? जब तें तू देइ,
यामें कहा सुख? तेरे दरस कौ॥
यह न भली, भली सोई कहौ,
परस न कर, करहुँ रस बस कौ।
'रसिक प्रीतम' पिय बचन चातुरी,
आतुरी करि लीनी, भावत अंग परस कौ॥

[१०८] राग सारंग

कान्हा कैसों माँगत दान दही कौ, यह न सुन्यौ कबहू हम कान।
हम नित ही आवत या मारग लिएँ दधि, काहू भूलें न रोकीं आन॥
कहेंगी जाय व्रजराज के आगैं,
ढीठ साँमरौ मारग देत न गति पहिचान।
'रसिक प्रीतम' सुनि वचन प्रिया के अति उनमद भए,
दौर गहीं वहियाँ न दीन्हीं जान॥

[१०९] राग विलावल

अरी यह को है री, जात मेरे या गहवर वन में,
बाँह वरा बाजूबंद बारी।
लर लटकन गजमोती झलकत, चाल जोबन मतवारी॥
दधि कौ दान देत नहीं सुंदरि, कहत कुमर गिरधारी।
'रसिक सिरोमनि' नंद लाड़िलौ, दान लियौ उर सुरति निवारी॥

[११०]

सुनि-सुनि जसुमति के लाल, देखत सब ग्वाल बाल,
बिनती सुनि हा हा हरि, छुवो-ना देह मेरी।
रोकि रहत मारग में, इत उत नहि जान देत,
घिरवत लिएँ लकुटि हाथ, राखीं सब घेरी॥
एतौ कहा बल दिखात, दोऊ दृगन ही नचात,
भावत नहीं हमें ढीठ, लंगर गति तेरी।
'रसिक प्रीतम' छाँड़ि देहु, चाहौ सोई माँगि लेहु,
नाँहिन कछु है सँदेहु, हौं तौ निज चेरी॥

गोबर्धन-लीला— [१११] राग सारंग

आज कहा संभ्रम है, तुमरे घर तात।
गोप लगे काजन, आनंद नाँ समात॥
हाथ जोरि ठाड़े हरि, पूछत हैं आई।
मोसों यह बात कहौ, बाबा ब्रजराई॥
बोले नंदराइ, देव इंद्र बली दैहैं।
बरसै जल नाज निपजि, सुख बरस लों पैहैं॥
बहुत द्यौस करत आवें, पूजा सब कोई।
अब जो हम छाँड़ि दैहिं, तौ न भलौ होई॥
बोले हरि सुनौ तात, बात एक मेरी।
करम बस सबै जु होत, मिलि सुभाव हेरी॥
कृत के आधीन दैव, कहो कहा करि है।
मन की कछु चलै नाँहि, करम बिनु न सरि है॥
जो तुम ईसादि जानि, पूजत सुख चाँहीं।
कौन काज वाकौ, गोचारन बन जाँहीं॥
गिरि कानन राखत है, पूजौ ता ईस।
सो तौ द्विज देव गाइ, ठाकुर जगदीस॥
गोबरधन पूजौ, दै विप्रन बहु गाई।
अरपौ बलि देहु दान, धेनु तृन चराई॥
करवाऔ पाक विविध, जुबतिन बुलाई।
खीरि आदि दारि अंत, सबै बिधि बनाई॥
औट्यौ संजाव पूआ, चकुली दै आदि।
रखवाऔ दूध सबै, खरचौ जिनि बादि॥

परबत बलि देउ बिप्र पूजि, गौ अघाइ ।
गिरि की करौ सकट जोरि, परिकम्मा जाइ ॥

भूषन बहु मोल सबै, बसन तन बनाई ।
हँसत खेलत गावत, चलौ फेरी करि आई ॥

मेरौ तौ ये ही मतौ, सुनि हो ब्रजराज ।
भावै तौ कीजै जू, उत्तम यह काज ॥

जैसें हरि कह्यौ सबन, तैसें ही कियौ ।
रूप बड़ौ धरि कें, बलि खात दरस दियौ ॥

सबहिन संग पायन परे, मोहन निज रूप ।
दीनीं परतीत सबन, गोकुल के भूप ॥

हरि स्वरूप फल लै, सब अपने ब्रज आये ।
निज कर ब्रजबासी हरि, फेरि ब्रज बसाये ॥

कोपि इंद्र पठये घन, बरसौ दिन सात ।
गिरि धर ब्रजबासी, राखि लीन्हे दुख पात ॥

देखि रूप आनंद निधि, भूख प्यास भुलाई ।
बरसत हैं कहाँ मेघ, काहू न सुधि आई ॥

सात दिवस ठाड़े हरि, नाँहि पगु हलायौ ।
ऐसौ ब्रजबासी, बड़भागनु इन पायौ ॥

सुरपति कौ गरब गयौ, रह्यौ अति खिसाय ।
उघर गये मेघ सबै, प्रगट्यौ रबि आय ॥

बोले प्रभु निकसौ सब बाहर, गयौ मेह ।
निडर होइ फिरौ गोप, करौ जनि संदेह ॥

राखौ गिरि भूमि धरि, भेंटे ब्रजबासी ।
पायौ सब परमानंद, गोकुल सुखरासी ॥

प्रेम भरी व्याकुल है, चूँमत मुख माई।
बार-बार बालक कर, लेत है बलाई॥

हरषित ब्रजवासी सब, आये घर फेरि।
निस दिन जीवंत, हरि सुंदर मुख हेरि॥

पछितानौ इंद्र, कामधेनु संग लायौ।
अपनौ अपराध, पाँय परि छिमा करायौ॥

कीनौ अभिषेक तहाँ, गंगा जल आनि।
एरावत सूढ़ि हू तें, अपनौ प्रभु जानि॥

गोबिंद यह नाम धर्‌यौ, आप भयौ दास।
मेरौ सब गरब गयौ, पाई चरन आस॥

हरि के अभिषेक होत, सबन बैर तूट्यौ।
गोबिंद यह नाम लेत, सहज दोष छूट्यौ॥

यह लीला अति अद्‌भुत, 'रसिक' होइ गावै।
अन्य भजन छाँड़ि, चरन हरि जू के पावै॥

[११२] राग बिलावल

बाम भुजा गिरिराज कों, नीकै करि राख्यौ।
सब ब्रज तामै थापि कै, वाकौ रस चाख्यौ॥

इंद्र हृदै अति कोपि कै, करि गर्व समानौ।
याही कों मानौ सदा, सेवन कौ रानौ॥

भोजन बहु बिधि सों कर्‌यौ, घृत सों सरसानौ।
भोग धर्‌यौ दधि दूध कौ, करि कै पकवानौ॥

लीला ब्रज जन प्रेम की, हमकों दरसानौ।
श्री बल्लभ पद कमल तें, यह 'रसिक' सिरानौ॥

[११३] राग सारंग

गुर के गूँझा पूआ सुहारी। गोवरधन पूजत ब्रज नारी ॥
घर घर गोमय प्रतिमा धारी। बाजत रुचिर पखावज थारी ॥
गोद लिएँ मंगल गुन गावत। कमल नयन कों पाँय लगावत ॥
हरद दही रोचन के टीके। यह ब्रज पुर सुर लागत फीके ॥
राती पीरी गाय सिगारी। बोलत ग्वाल दै दै कर तारी ॥
'हरिदास' प्रभु कुंजबिहारी। मानत सुख त्यौहार दिवारी ॥

विवाह-मंगल— [११४] राग विलावल

माई मेरौ लाल दूलह बन आयौ।
रतन जटित कौ सीस सेहरौ, हीरा मोतिन जरायौ ॥
नंदराइ कौ कुमर कन्हैया, जसुमति लाड़ लड़ायौ।
'रसिक प्रीतम' जू की बनिक निरखत रोंम-रोंम सुख पायौ ॥

[११५] राग नट

तू बनरा रे बनि-बनि आया, मो मन भाया सुख उपजाया।
अति उतंग नीली घोड़ी चढ़ि, धरि सिर सेहरा अति सुंदर,
अंग सुगध लगाया ॥
अपने संग सकल जन सोहें, तिलक लिलार बनाया।
'रसिक प्रीतम' बलिहारी जाऊँ, उठि हँसि अंग लगाया ॥

[११६] राग नट

बसौ मेरे नैनन में दोऊ चंदा।
कनक बरन वृषभान नंदिनी, स्याम बरन नँदनंदा ॥
गजमोतिन कौ सीस सेहरौ, निरखौ आनँद कंदा।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, परौ प्रेम कौ फंदा ॥

[११७] राग गौरी

दूलह दुलहिन अधिक बनी ।
पूजन चलो कलप तरु सुंदर, औरै ठान ठनी ॥
कियौ सखिन गठजोरौ सबन मिल, आगै धन पाछै धनी ।
गावत गीत चलीं मंगल के, सबै सुघर सजनी ॥
रुनक झुनक पग धरे धरनि पै, छबि पावत अबनी ।
छिरकत सुगंध भूतल रूप ज्यों, फूलन माल बनी ॥
अंगुल जोर यहै बर माँगत, रहौ सुख प्रेम सनी ।
'रसिक' बिहारिन देख छके, कलि केलि कला जु बनी ॥

[११८] राग गौरी

सखी हो! करौ लडैती जू कौ आरतौ, मन मोहन कौ मुख जोई ॥
भागन भरी सखी सब गावत, अति आनंद उर होई ।
अतर बोर बातीन सँजोवौ, कपूर अंतर पुट सोई ॥
रतन जटित लै कनक थार में, दीपक जोति सँजोई ।
जोरी अद्भुत रूप जुगल की, त्रिभुवन छबि नहीं कोई ॥
गौर स्याम सोभा अति राजत, बरनी जात न सोई ।
'रसिक' बिहारी रस में पागे, रहे प्रेम रस भोई ॥

राधा का रूप— [११९] राग कल्याण

ए सुन गोप कुँवरि ! तेरी छबि नीकी ।
जब तू बदन निहारत पिय सनमुख, तब चंद जोत होत फीकी ॥
कहाँ लौं बरनौ सब अंग निरूपम,
तातें सजो बिधना जोरी पी की ।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत सकल अंग,
नयन सीतलता छबि नीकी ॥

[१२०] राग बिलावल

रसिक रस माती हो, गिनत न काहु त्रिभुवन में ।
अपने रूप गुन गर्व भरी खरी, फिरत सखिन के गन में ।।
मन पिय कौ भँवरी करि राखत, अपने रूप जोवन में ।
'रसिकप्रीतम' बस करिवे कों बनी, अद्‌भुत भूषन बसन में ।।

[१२१] राग गौरी

तुव मुख चंद सहज सीतलता जामें, विधु तें औरहि भाँति ।
डर नहीं राहु कलंक दोस नहीं, वढ़त नित्य प्रति कांति ।।
अलकन के मिस जा ढिग निस-दिन, रहै मधुपन की पाँति ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु कों ताही तें, तोहि तजि और न सुहाति।।

[१२२] राग केदारो

कवि मंद जे उपमा देत, चंद कों तेरे वदन की ।
भौह बिसाल, कटाच्छ विलोकन, अरुन अधर नासा कपोल,
कहाँ पाइयत सोभा दृगन की ।।
छिनु छिनु अधिकहि जोति होति, तिय सनमुख लाजत,
सुंदरता रूप सदन की ।
'रसिक प्रीतम' पिय मुख छबि निरखत, नहि अपुने बस,
भूली गति राय मदन की ।।

[१२३] राग केदारो

बानिक बैनी को लागत आली नीकौ ।।
अँचरा ओट, माथें सीसफूल, मानों मनि भुजंग कंचुली कौ ।
अलक व्याल बिधु वदन पैं बिथुरि रहे,
मानों तकि आसरौ अमी कौ ।।
नासा सुक मानौ बिझुकि अधर पर, नव रस पियत कली कौ ।
'रसिक प्रीतम' जब गहि हैं सुरति करि, जहै डर सब ही कौ ।।

[१२४] राग अड़ानौ

नैन तेरे री अति चपल अरुन सुंदर,

मो मन बस करन कारन बिधना रचे।

खंजन मीन मृग कुरंग औ तुरंग चल दल,

सबहिन के गुन इकठे आन सचे ॥

याही तें लगत तान बान से पिय हिय आन,

मारति है सुजान घाइ नैक नाँ बचे।

'रसिक प्रीतम' अधीन भये, तन की सुधि बिसरि गये,

टरत नहीं पसु पंछी, एक टक देखन ललचे ॥

[१२५] राग सारंग

तेरौ जोबन सिंगार और आभूषन, नव रूप जाल,

पिय के मन हरिवे कों करचौ करतार।

कजरारी आँखें स्रमबिंदु, नासिका कौ मोती,

अधर अरुन मानिक सौ, उरज प्रस्वेद कन सोहें जैसैं हार ॥

नाभि दरी, पदक रोमावली, मृगमद भाल,

अलक छवि चरन नख सोहत लाल।

'रसिक प्रीतम' संग तू ही ऐसी सोहति,

तोपै सकल त्रिलोकी तिय वारों बाल ॥

[१२६] राग ईमन

तेरे अंग स्याम सारी सोहै।

मानों पिय के अभिसार करन कों,

कारी अँधियारी दबी, जुन्हाई जाती जोहै ॥

तौ हू अति ही नीकी करि लागत,

तेरी नवल उपमा कों, काम तिय को है।

'रसिक प्रीतम' अपुने ढिग राखत,

तातें छिन कों तोहि, होत नाँ बिछोहै ॥

युगल भोजन— [१२७] राग मालकोष

जेंमत लाल-लाड़ली राजें ।
ललितादिक सब सखी परोसत, कनक पात्र मधि साजें ॥
करि मनुहार जिमावत प्यारौ, प्यारी जेंमत लाजें ।
'रसिक प्रीतम' तहाँ करत कलेऊ, विविध मनोरथ साजें ॥

[१२८] राग सारंग

प्रानप्यारी प्राननाथ दोऊ संग मिल,
करत भोजन सघन कुंज में रस भरे ।
कनक पात्रन मध्य विविध व्यंजन सजे,
सरस पकवान ओदक आदि घृत भरे ॥
खीर नवनीत दधि-दूध सिखरन आदि,
ओदन कढ़ी बरी पापर धरे ।
'रसिक' कौ दास तहाँ करत मनुहार बहु,
लेत दोऊ कौर, छबि निरखि मनमथ टरे ॥

[१२९] राग सारंग

जुगल रस भरे भोजन करत कुंज में,
तरनि तनया तीर अति सुहायौ ।
लेत झुकि-झुकि कौर झपटि दोऊ हाथ तें,
हँसत बहु भाँति मन करत भायौ ॥
करत मनुहार बहु भाँति मिलि सुंदरी,
लीजियै लाल बहु विधि बनायौ ।
दीजियै कृपा कर 'रसिक' के दास कों,
सेस यह परम फल मुनिन गायौ ॥

[१३०] राग ललित

भोजन करत पिय अरु प्यारो ।
रंग महल में धरी अँगीठी, परदा परे सुखकारी ।
दोऊ परस्पर लेत देत हैं, बहु विधि कर मनुहारी ।।
'रसिक प्रीतम' प्रभु की यह लीला, डारत तन-मन वारी ॥

[१३१] राग धनाश्री

जेंमत ललना लालन संग ।
मनिमय महल बिराजत दोऊ, परदा परे हैं सुरंग ।।
धरी अँगीठी धिकत कनक की, सनमुख दोऊ राजें ।
रतन जटित सिंहासन तामें, गादी तकिया साजें ॥
सुंदर झारी भरि जमुना जल, धरी सखी की ओर ।
कनक थार नव ओदन खिचरी, धरि ब्रजजन चहुँ ओर ।।
रोटी लीटी बहु घृत चुपरी, नीकी धरि करि प्रीत ।
ललितादिक मनुहार करत दोऊ, जेमत अति रस रीत ॥
प्यारी कौर देत पिय के मुख, प्यारौ मुख में मेलें ।
'रसिक प्रीतम' रस रीति पियारी,
रति-पति कंठ भुजा दोऊ झेलें ॥

[१३२] राग गौरी

हँसि-हँसि दूध पीवत नाथ ।
मधुर कोमल वचन कहि-कहि, प्रान प्यारी साथ ॥
कनक कटोरा भरौ अमृत, दियौ ललिता हाथ ।
लाड़िली अँचवाय पहिलै, आप पुनि अचवात ।।
चितामनि चित बस्यौ सजनी, देखि पिय मुसकात ।
स्यामा-स्याम की जुगल छवि पर,
'रसिक' बलि-बलि जात ।।

[१३३] राग सारंग

पान खवावत कर करि बीरी ।
इक टक ह्वै मोहन मुख निरखत, पलक न परत अधीरी ॥
हँसत निहारत बदन स्याम कौ, तन की सुधि बिसरी री ।
'रसिक प्रीतम' के अंग संग मिलि, छतियाँ भई अति सीरी॥

दाम्पत्य प्रेम— [१३४] राग कान्हरौ

नई बात कछु, नई रीति सब, नई देखियत प्यारी ।
नई हँसनि, चितबन नैनन की, अधरन फरकत न्यारी ॥
नई चलनि, नई मुरली, नई गति, नई अंग सोहे सारी ।
'रसिक प्रीतम' सों नई रति उपजी, बरनत कवि मति हारी॥

[१३५] राग केदारौ

लाड़िली लालन देखत लाढ़ैं।
मोहन मुख देखन कों आवत, घूँघट पट दै आढ़ैं ॥
कबहुक हरि के मुख देखन कों, अपनौ बदन उघाड़ैं ।
'रसिक प्रीतम' सों इहि विधि भामिनि, अधिक बढ़ावत चाढ़ैं ॥

[१३६] रागिनी टोड़ी

तेरे सिर री छूटे बार सोहैं ।
मानों पिय के मन बाँधन कों, पास मैंन के अति कठोर जो हैं ॥
चितबन टेढ़ी अधखुले नैनन, सरस मधुर बोलन बैन मोहै ।
मद मुसकान प्रान बस राखत, बिरह ताप तन मन दुख खोहैं ॥
हँसनि बिलसनि छवि मुख की बनी, सुघर कपोलन कुटिल भौंहे ।
'रसिक प्रीतम' जुबती जन दुरलभ,
सो बस कियौ तलफत री अबलों है ॥

[१३७] रागिनी टोड़ी

बिथुरे बार, सुथरी सारी सिर तें उतरी,
लागत पुतरी सी जु ठाड़ी ।
आवत ही पिय के चौंकि लजावन लागो,
देह प्रस्वेद मानों रस-सागर में बोरि काढ़ी ।।
नैन जुरे, बिछुरे की बेदन दूर भई,
भई सियराई, नई प्रीति जिय बाढ़ी ।
'रसिक प्रीतम' के संयोग रस भोग भरी,
खरी जुबतिन मधि गुनन गाढ़ी ।।

[१३८] राग विभास

श्री बृंदाबन निकुंज ठाड़े उठि भोर ।
बाँहें जोरि बदन मोरि, हँसत सुरति-रस बिभोर,
सकुचत पुनि कछु लजात, नैनन की कोर ।।
कबहुक करत बेनु नाद, पायौ रस सुधा स्वाद,
पंछी जन प्रेम मुदित, बोलत चहुँ ओर ।
'रसिक प्रीतम' छबि निहार, प्रगट्यो रवि जिय बिचार,
बार-बार उमँगि तहाँ नाँचत हैं मोर ।।

[१३९] राग नट

[१४०] राग विलावल

नैना तेरे अलि रसमाते ।
इन्ह महिँ अरुन अरुन डोरे कछु, लागत सहज सुहाते ॥
कबहुक इकटक देख रहत, कबहुक मुरि-मुरि मुसकाते ।
'रसिकप्रीतम' सँग निसदिन बिलसत, नैंक नहीं सकुचाते॥

[१४१] राग पीलू

भाग्यवान वृषभानु-सुता सी, को तिय त्रिभुवन माहीं ।
जाको पति त्रिभुवन मनमोहन, दियैं रहति गलबाहीं ॥
ह्वै अधीन संगहि संग डोलत, जहाँ कुँवरि चल जाहीं ।
'रसिक' लख्यौ जो सुख वृंदाबन, सो त्रिभुवन में नाहीं ॥

कुंज केलि— [१४२] राग सारग

वृंदावन सघन कुंज, माधुरी द्रुम भँवर गुंज,
नित बिहार प्रिया प्रीतम, देखिबौई कीजे ।
गौर स्याम नंद किसोर, सुंदर अति चित्त चोर,
निरखि-नरखि रूप सुधा, नैनन भरि पीजे ॥
सखियन संग करत गान, सारंग सुर लेत मान,
मंद-मंद मधुर-मधुर, सुनि-सुनि सुख लीजै ।
बाढ्यो अति हिय हुलास, प्रफुलित सब सुखद हास,
तन मन धन 'रसिक' ऊपर, वारन कर दीजे ॥

[१४३] राग गौरी

दुहुन की देखि सखी लपटानि ।
तरु तमाल मानों आलिंगत, लता कनक की आनि ॥
जमुना स्याम गौर तन गंगा, संगम तीरथ जानि ।
परत लमोत धार अधरन तें, बीच सरसुती मानि ॥

करत स्नान काम तहाँ स्रम जल, होत बिरह दुख हानि ।
अधर पान आलिंगन अति फल, पीवत नाँहि अघानि ॥
मनहुँ मिले रस दोऊ बिधि के, को कहै भेद बखानि ।
इनही के मन राज हंस दोऊ, न्यारे करत मिलानि ॥
यह स्वरूप रसरूप सदा, मन बसौ बिरह रस खानि ।
'रसिक' सदा लीला यह गाऔ, परौ रसना यह बानि ॥

[१४४] राग केदारौ

रसिक स्याम संग राधा रानी, कुंज सदन रति मानी ।
अंग अंग प्रति परसि महा सुख, बस कीन्हे रस दानी ॥
आलिंगन चुंबन अवलंबन, बोलत मधुरी बानी ।
रति विपरीत जीत अपुनी तें, कोकिल के सुर गानी ॥
पिय संग रति रस बिलसत, पूरव बिरह बिथा बिनसानी ।
क्यों हूँ न होत सुरति संपूरन, मुख मृदु हास बिकानी ॥
रहि न सकत छिनु पिय ते न्यारी, निकसि नीर ज्यों पानी ।
सुरति अंत बैठी सखियन में, पिय की कहत कहानी ॥
का पै कही जाइ यह लीला, गुपत न काहू जानी ।
कछुइक श्री बल्लभ करुना बल, 'रसिक' बिचार बखानी ॥

[१४५] राग केदारौ

कुसुम सेज पिय प्यारी पौढ़े, करत हैं रस बतियाँ ।
हँसत परस्पर आनँद हुलसत, लटक-लटक लिपटावत छतियाँ ॥
अति रस रंग भीने, रीझे री रिझवार,
एक तन मन भई एक मति गतियाँ ।
'रसिक' सुजान निरभय क्रीड़त दोऊ,
अंग अंग प्रतिबिंबित दोउन के बसन भतियाँ ॥

[१४६] राग सारंग

नवल नागरि नवल नागर किसोर मिलि,
कुंज कोमल कमल दलन सज्या रची।
गौर साँवल अंग रुचिर ता पर मिले,
सरस मानों नीलमनि मृदुल कंचन खची॥
सुरति निवी बंध हेत प्रिय मानिनी कुच भुजन में,
स्रम जल कलह मोहन मची।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत रोस हुंकर,
गर्व जुत अंग भामिनी लची॥
कोक कोटिक कला रहत मन पीय कौ,
विविध कल माधुरी रति काम नाँहिन बची।
प्रनय में 'रसिक' ललितादिक सखी सब,
पियत मकरंद सुखरास अंतर नची॥

युगल विहार— [१४७] राग विहाग

पौढ़े प्रिय दोऊ सेज हरे।
प्रमुदित प्रिय बानी रस बरसत, आनंद नैन भरे॥
कनक बेलि वृषभान नंदिनी, स्याम तमाल तरे।
रतिपति केलि जु करत 'रसिक', प्रिय दरसन दिव्य झरे॥

[१४८] राग नायकी

पौढ़े रंग-महल नंदलाल।
दोऊ ओर धरी है अंगीठी, परदा परे रंग लाल॥
ललितादिक सखी चरनन चाँपत, निरखत होत निहाल।
'रसिक' स्वामिनी लाइ लई उर, भर लीनी अंक बाल॥

[१४९] राग बिहागरौ

पौढ़े स्याम राधे संग ।
सुरँग पलंग सुरंग बिछौना, कसना कसे सुरंग ॥
सुरँग सरस रजाई नीकी, ओढ़ी है दोऊ अंग ।
रहे हैं लिपटाइ दोऊ मिलि, 'रसिक' निरखत ढंग॥

[१५०] राग केदारौ

आज हौं देखे आली री ! दोऊ मिलि पौढ़े बातें करत ।
बदन निहारत परसि कपोलन, हँसि-हँसि आँकौ भरत ॥
कबहूँ करत सुरति एक मन भये, कछु इक लाजै धरत ।
'रसिकप्रीतम' राधा पिय प्यारी, रस बस ह्वै मन हरत॥

[१५१] राग केदारौ

चंद बदन पर चाँदनी सोहत, घूंघट कौ पट मानौ सेत सारी ।
पिय दृग दोऊ चकोर पीवन कों, मानों विधि राखे सम्हारी ॥
प्रगट होत तब ही तें पिय हिय, गई बिरह अँधियारी ।
अंचर दूरि करि गरें बाहु धरि, भेंटी 'रसिक' पियारी ॥

[१५२] राग केदारौ

रहत करि नीची नारि, रूखी-रूखी अँखियन,
देखि रही पिय ओर ।
बदन निहारत अँचरा ऐंचत, ठठकि रही लाज जोर ॥
आलिगन देत लेत उसास, सकुचत जिय जानि कुच कठोर ।
'रसिक प्रीतम' के अंग परसि, रस परबस भई,
क्रीड़त है गयौ भोर ॥

[१५३] राग केदारी

यह विधि सचु सों रैन बिहानी।
बहुत दिनन के बिछुरे प्रीतम, मिले सकल सुखदानी॥
अति आनंद चंद मुख देखत, चितै चतुर रति मानी।
भेंटी सकल अंग-अंग स्यामा, मदन केलि रस ठानी॥
एक भये मिलि भेद गयौ सव, तन की दसा न जानी।
अधर सुधा रस पीवन कों फिर, चित वृति रहत लुभानी॥
सुन री सखी ! आनंद सिंधु में, सिगरी निसा बिहानी।
अतिहि उछाह कहत सखियन में, निसि की कही कहानी॥
'रसिक' राधिका स्वामिनि की, यह लीला कहत बखानी।
श्री बल्लभ पद कमल कृपा ते, काम कुमति विनसानी॥

[१५४] राग सारंग

पिय सों बातन बीती रात।
बदन बिलोकत सखी स्याम कौ, भूलि गई सुधि गात॥
खेलत हँसत समौ नहीं जानौ, पिय दरसन की भाँति।
छिन-छिन औरहि औरे उपजत, सुंदर मुख की कांति॥
तब तें मोहि न भावै री कछु, कही-सुनी न सुहात।
'रसिक प्रीतम' के सुख की सुधि मोहि,
क्यों हू नाँ बिसरात॥

[१५५] राग केदारी

सकल ब्रज तियन में तूही जीती।
सबन कौ भाग भोगवत सगरी निसा,
लाल गिरधरन संग तोहि बीती॥
केती महिमा कहूँ रावरी एक मुख, स्याम सुंदर गरें लाइ लीती।
'रसिक प्रीतम' महा रस दियौ राधिका,
याही ते कमला रही है रीती॥

नव विलास —

प्रथम विलास— [१५६] राग मालव

प्रथम विलास कियौ स्यामा जू, कीन्हों विपिन बिहार जू ।
उनकी केहिं विधि सोभा बरनों, कहत न आवै पार जू ॥
वाके जूथ की गणना नाँहीं, निर्गुन भक्त कहावे ।
ताकी संख्या कहत न आवे, सेस हुँ पार न पावे ॥
घोष घोष प्रति गलिन गलिन प्रति, रँग रँग अंबर साजें ।
कियौ सिंगार नखसिख अंग जुबती, ज्यों करिनी मधि राजे ॥
बहु पूजा लै चली वृंदाबन, पान फूल पकवानें ।
ताके जूथ मुख्य चंद्रावलि, चंद्र कला सी बानें ॥
पहुँची जाइ निकुंज भवन में, दरसी बृंदा देवी ।
ताके पद वंदन करि माँग्यौ, स्याम सुंदर बर ऐवी ॥
तिहि छिन प्रभु जो आपु पधारे, कोटिक मनमथ सोहै ।
अंग अंग प्रति रूप रूप प्रति, उपमा रवि ससि को हैं ॥
द्वै जुग जाम स्याम स्यामा संग, केलि विविध रंग कीने ।
उठत तरंग रंग रस उछरित, दास 'रसिक' रस पीने ॥

द्वितीय विलास— [१५७] राग मालव

द्वितीय विलास कियौ स्यामा जू, खेल समस्या कीनी ।
ताकी मुख्य सखी ललिता जू, आनँद महारस भीनी ॥
चली संकेत बिहार करन, बलि पूजा साजि संपूरन ।
बहु उपहार भाग पायस लै, बाँह हलावत मूरन ॥
मंदिर देवी गान करत जस, आइ मिले गिरधारी ।
मन कौ भायौ भयौ सबन कौ, काम बेदना टारी ॥
स्यामा कौ सिंगार स्याम कियौ, ललिता नीबी खोली ।
लीला निरखत दास 'रसिक' जन, श्री मुख स्यामा बोली ॥

तृतीय विलास--　　[१५८]　　राग मालव

तृतिय विलास कियौ, स्यामा जू प्रवीन।
खेलन कौ उछाह, सखी एकत्र कीन॥
तिन्ह में मुख्य सखी, बिसाखा जू ऐंन।
चलीं निकुंज महल में, कोकिला ज्यों बेंन॥
भोग धरि सँभारि, वासोंधी सनी।
कुसुम रंग अनेक, गुही कामिनी॥
गान स्वर कियौ, बनदेवी विहार।
नव तिया कौ भेष, कोटि काम वार॥
ढिग आसन कराय, प्यारी कों बैठाय।
दोऊ एकत्र कीने, निरखत लेत बलाय॥
यह लीला कौ ध्यान, मम हिरदै ठहराय।
देखत सुर नर मुनि भूले,'रसिक' बलि-बलि जाय॥

चतुर्थ विलास--　　[१५९]　　राग मालव

चौथौ विलास कियौ स्यामा जू, परासौली वन माँही।
ताके बृच्छ लता द्रुम बेली, तन पुलकित आनंद समाँही॥
चंद्रभागा मुख्य जूथावलि, अपनी सखी सब न्योंति बुलाई।
खंडमंडा जलेबी लडुआ, प्रत्येक अंग कौ भाव जनाई॥
साजि कियौ पूजन देवी कौ, बहु उपहार भेंट लै आई।
खेलन चली बनों तेहि सोभा, ज्यों घन में चपला चपलाई॥
पहुँची जाय दरस देवी तब, ह्वै गये स्याम किसोर कन्हाई।
मन कौ चीत्यौ भयौ लालन कौ, हास विलास करत किलकाई॥
स्यामा स्याम भुजन भरि भेंटे, तृन तोरत और लेत बलाई।
कही न जाय सोभा ता सुख की, कुंजन दुरे 'रसिक' निधि पाई॥

पचम विलास— [१६०] राग मालव

पाँचौ विलास कियौ स्यामा जू, कदली बन संकेत।
ताकी सखी मुख्य संजावलि, पिया मिलन के हेत ॥
चलीं रलीं उमगीं जुबती सब, पूजन देवी निकसीं।
धूप दीप भोग संजावलि, कमल कली सी बिकसीं ॥
आनंद भरि नाचत गावत बधू, रस में रस उपजाती।
मंडल में हरि तत्छिन आये, हिलिमिलि भए एक पाँती॥
द्वै जुग जाम स्याम स्यामा सँग, भामिन यह रस पीनौ।
उनकी कृपा दृष्टि अवलोकत, 'रसिक' दास रस भीनौ ॥

षष्ट विलास— [१६१] राग मालव

छठौ विलास कियौ स्यामा जू। गोबरधन सों चली भामा जू ॥
पहिरै रंग रंग सारी। हाथन पूजा - थारी ॥
ताकी मुख्य सहचरी राई। खेलन कों बहुत सुघराई ॥

छंद—चलीं बन बन बिहँसि सुंदरि, हार कंकन जगमँगे।
आइ मंदिर पूजि देवी, भोग सिखरन सगमँगे ॥
ता समय प्रभु जी पधारे, कोटिक मनमथ मोहहीं।
निरख सखियन कमल मुख, मानों निधन धन ज्यों सोहहीं॥
खेल कौ आरंभ कीनों, राधा माधव बिच किये।
वाकी परछाँईं परी तब, 'रसिक' चरनन चित दिये ॥

सप्तम विलास— [१६२] राग मालव

सातौ विलास कियौ स्यामा जू, गहबर बन में मनौ जु कीन।
मुख्य कृष्णावती सहचरी, लघु लाघव अति ही प्रवीन ॥
बन देवी है गुंजा कुंजनि, पुहुपन गुही सु माल।
चंद्रावली प्रमुदित बिहँसत, मुख ज्यों मुनियाँ लाल ॥

रच्यौ खेल देवी ढिग जुबती, कोक कला मनोज।
अति आवेस भये अवलोकत, प्रगटे मदन सरोज ॥
कोऊ भुज धर कर चरन उर, कोऊ अंगौ अंग मिलाय।
कुँवर किसोर किसोरी रसिकमनि, दास 'रसिक' हुलराय ॥

अष्टम विलास— [१६३] राग मालव

आठौ विलास कियौ स्यामा जू, सांतनकुंड प्रवेस जू।
उनकी मुख्य भामा सारंगी, खेलत जनित आवेस जू ॥
सूरज मंदिर पूजन करि, सेवा सामग्री भोग धरी।
आनंद भरी चली ब्रज ललना, क्रीड़न बन कों उमँगि भरी ॥
भद्रबन गमन कियौ बन देवी, पूजन चंदन वन लीने।
भोग स्वच्छ फैनी ऐनी सब, अंबर अभरन चीने ॥
गावत आवत भावत चितवत, नंदलाल के रस माँती।
कृष्ण कला सुंदर मंदिर में, जुबती भई सुहाती ॥
देखि स्वरूप ठगी ललना तें, चकचौंधी सी लाई।
अँचवत दृगनु अघात दास, 'रसिक' बिहारिनि राई ॥

नवम विलास— [१६४] राग मालव

नवम विलास कियौ जु लड़ैती, नवधा भक्ति बुलाये।
अपुने अपुने सिंगार सबै सजि, बहु उपहार लिवाये ॥
सब स्यामा जुरि चलीं रंग भीनी, ज्यों करनी घनघोरें।
ज्यों सरिता जल कूल छाँड़ि कै, उठत प्रवाह हिलोरें ॥
बंसीबट संकेत सघन बन, काम कला दरसाये।
मोहन मूरति वेनु मुकुट मनि, कुंडल तिमिर नसाये ॥
कछिनी कटि तट पीत पिछौरी, पग नूपुर झनकार करें।
कंकन वलय हार मनि मुक्ता, तीन ग्राम सुर भेद भरे ॥

सब सखियन अबलोकि स्याम छवि, अपुनौ सर्बसु वारें ।
कुंज द्वार बैठे पिय प्यारी, अदभुत रूप निहारें ।।
पूआ खोआ मिठाई मेवा, नवधा भोजन आनें ।
तहाँ सत्कार कियौ पुरुषोत्तम, अपुनौ जनम फल मानें ।।
भोग सराय अँचवाय बीरा धरि, नीर जनहिं उतारें ।
जय जय सब्द होत तिहुं पुर में, गुरुजन लाज निवारें ।।
सघन कुंज रस पुंज अलि गुंजत, कुसुमन सेज सँभारें ।
रति रन सुभट जुरे पिय प्यारी, काम वेदना टारें ।।
नव रस रास बिलास हुलासन, ब्रज जुवतिन मिल कीने ।
श्री बल्लभ चरन कमल कृपा ते, 'रसिकदास' रस पीने ।।

सुरतांत— [१६५] राग ललित

आलस भोर उठी री सेज तें, कर सों मींड़त अँखियाँ ।
सिगरी रैन जगी पिय के संग, देख चकित भई सखियाँ ।।
काजर अधर कपोलन लीक लगी है, रची महावर नखियाँ ।
'रसिकप्रीतम' दरपन लै प्यारी, चीर सँभार मुख ढँकियाँ ।।

[१६६] राग केदारौ, चर्चरी

लाल संग रस रैन जागी ।
अरुन भये नैन पलकें लगें नाँ,
सुरति रस अरसाई नेह पागी ।।
देखियत डंक दसनन के गंड जुग,
अधर अंजन उलटि लीक लागी ।
'रसिक प्रीतम' कियौ आपु बस तैं सखी,
कौन तिहुँ लोक तिय तो सी बड़भागी ।।

[१६७] राग केदारौ

आज छवि देखियत तेरे बदन की।
कहूँ अंजन कहूँ पीक कपोलन, कहूँ उलटी है पाँति रदन की॥
काहै छिपावति री मो आगै, हौं तौ दासी तेरे सदन की।
जानति हौं तैं 'रसिक प्रीतम' संग, जीती है लराई मदन की॥

[१६८] राग रामकली

लटकत आवत कुंज भवन तें।
ढुर ढुर परत राधिक ऊपर, जाग्रत सिथिल गवन तें॥
चौंक परत कबहूँ मारग विच, चलत सुगंध पवन तें।
भर उसास राधा वियोग भय, सकुचे दिवस रवन तें॥
आलस मिस न्यारे न होत है, नैंक हू प्यारी तन तें।
'रसिक' टरौ जिन दसा स्याम की, कबहू न मेरे मन तें॥

वेणु-वादन— [१६९] राग विहाग

मुरली मोहन मधुर बजावै।
स्रवन सुनत स्रवनन के मारग ब्रज जन हिरदै आवै॥
प्रकट प्रेम भवनन में बैठी, मिलि यों पिय गुन गावै।
मदन उगौ सबहिन के मन में, भयौ बचन कहि आवै॥
निज स्वरूप पर रूप प्रकट करि, नारि अधर रस चावै।
बेनु रंध्र पूरित कर छित सों, लीला सहित पढ़ावै॥
पैठत जाय सरस हिरदै में, अनुभवौ सकल करावै।
पाइ परस सुख रस गोपी मुख सिगरी बात कहावै॥
अपने दृग अवलोकि भाव सों, मृगन जाति बिसरावै।
रूप देखि सुनि नाद विवस तन, हरिनी दृगन पुजावै॥

जुबति मनोहर रूप, नाद करि सुर नारिन मुरझावैं।
बेनु मधुर धुनि गा उनके उर, दिव्य बिहार भुलावै॥
चढ़े द्रुमनि धुनि सुनत मूँदि दृग, बिहँगन मौन गहावै।
दरसन रस तें अधिक नाद रस, सरस जननि समुझावै॥
गीत सुनाइ भाव उपजावैं, दिनकर गमन थमावै।
लै उपहार कमल भ्रू भंगनि, चरन कमल परसावै॥
देख घाम में धेनु चरावत, जलद देह धरि छावै।
सुनत बेनु धुनि प्रेम मुदित मन, फुही-फुही बरसावै॥
चरन परसि प्रमुदित गोबर्धन, कंद मूल अति भावै।
पूरन भाव पुलंदिनि नीकी, कुमकुम आधि छिड़ावै॥
बिपिन चलत गो दोहन बिरिया, अद्भुत चरित बतावै।
गनि थावर जंगम थावरता, गति बिपरीत लखावै॥
गुन गावत गोपी जन मन सों, तिन कौ ताप नसावै।
सुमिरत मुख की देख आरती, 'रसिक' इहै फल पावै॥

[१७०] रागिनी टोड़ी

सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूरछनाँ,
तान उनचास मिलि मंडल मधि गावें।
चारि करन हस्तक सिर नैन भेद बहु भाँति,
ताल सुरन उपजत गति नृत्य कर नचावे॥
ता तक धिग किट थोंग थोंग कुकुझं कुकुझं,
झनकिट धिनकिट धिम् धिम् मृदंग बजावें।
'रसिक प्रीतम' छबि निरखत देव जुवती मोहीं,
तन मन उमँगि उमँगि बिबिध कुसुम बरसत सुख पावें॥

[१७१] राग-सारंग

नव रसाल पल्लव अरु सिखि सिखंडि कमल माल,
पीत बसन रुचि बिचित्र भेद दोऊ माई।
बन लीला गोपन की, सुखद गोष्ठि मधि बिराजे,
रंग मंडप नट की ज्यों नाचत सुखदाई॥
कबहुक मिलि योंहों गावें, हस्तक करि गति बतावें,
सखन सुख बढ़ावे, सुनत तन की सुधि जाई।
ब्रज जन बहु गुन गावत, अंतर गति सुख पावत,
'रसिक प्रीतम' चरन रेनु, भागन निधि पाई॥

[१७२] राग नायकी

देखे जा सुर लेहुगे तान।
तान तिहारी प्यारो उठत ऊँचे स्वर,
ताहि न मिलवत कोऊ समान॥
हमहु सुनें कैसे हो गवैया, करत फिरत कल गान।
'रसिक प्रीतम' सब सखियन आगै, हमहूँ करि हैं करतब बखान॥

ब्रज-बालाओं की आसक्ति—

[१७३] राग सारंग

जब तुम मुरली टेर सुनाई।
विकल भई तन मन अति व्याकुल, छिनहु रह्यौ नहीं जाई॥
लोक बेद कुलकान सबै तजि, तुमहिं मिलन उठि धाई।
तुम या वन ते गये आन बन, हों अति दूरि भ्रमाई॥
स्वास न बदन समाइ, पसीना अंगिया सबै भिजाई।
थाके चरन चल्यौ नहिं जात है, करि बल मैन हराई॥
सुनि कें बसन देह श्रम मिटि गौ, हरि हँसि बाँह गहाई।
घोस विपिन बिहरत दोऊ रस मय, 'हरि' राधा सुखदाई॥

[१७४] राग हमीर

आली री ! वृंदाबन में मोहन मुरली बजाई।
जब ते भनक परी मेरे कानन,
तब तें भवन मोपै छिनहु रह्यौ नहीं जाई ।।
सखी समाज सकल गृह कारज, लोक-लाज कछुऐ न मन आई ।
'रसिक प्रीतम' मुख बिधु अवलोकत, पति-सुत तजि बन धाई ।।

[१७५] राग सारग

माई मेरौ मन मोह्यौ साँवरे, अब मोहि घर-अगना न सुहाय।
ज्यों-ज्यों आँखिन देखियै, मेरौ त्यों-त्यों जिय ललिचाय ।।
मनमोहन अति सोहनौ, इत ह्वै मारग निकस्यौ आय।
मोहि देखि ठाड़ौ भयौ वह, चितयौ री मुरि मुसिकाय।।
रूप-ठगोरी डारिकै चल्यौ, अंग छबि छैल दिखाय।
नैन सैन दै साँवरौ, मन लै गयौ मेरौ संग लगाय ।।
लोक-लाज कुल-कान की, मेरे जिय कछु न ठहराय।
लेकै चलि मोहि स्याम पै, कै स्यामहिं आनि मिलाय।
प्रान-प्रीति पर बस परी, अब काहू की न बस्याय।
रसनिधि बालक नंदलाल पै, 'रसिक' सदा बलि जाय।।

[१७६] राग सारग

देखे क्यों मन राखि सकें री।
उहि मुसिकन उहि चाल मनोहर, अबलोकत दोऊ नैन छकें री ।।
जिनकों अनुभव अबहू नाँहीं, ते घर बैठी न्याउ बकें री।
जिन्ह न सुनी मुरली उहि काननि, ते पंछी मृग पसु विथकें री ।।
बिनु देखें अब रह्यौ जात नाँ, सुंदर बदन कुटिल अलकें री।
'रसिक प्रीतम' यह भई अवस्था, ये हरि रूप निरखि अटकें री ।।

[१७७] राग सारंग

बिन देखें पिय तेरे, मेरे नैन तपै ।
जब जब बन में धेनु चरावत, वेनु बजाय रहे धुनि पै ॥
कैसै जाऊँ, उपजत मन ऐसी पाऊँ सुख सुंदर प्रीतम पै ।
'रसिकप्रीतम' सहि सकों बिरह नहिं, छूटों कैसे अनंग सर पै ॥

[१७८] राग सारंग

मधुर मुख वेगि बजाओ वेनु ।
अधर सुधा जो हिरदै आवैं, जीवन की विधि औरै है नु ॥
तुम तौ बन-वन चारत डोलत, लीन्हैं संग आपुनी धैनु ।
गोपिन की गति कहा होत है, सिगरौ द्यौस उसासन लैनु ॥
जो गावें गुन तन सुधि विसरैं, अवधि साँझ दहै हिरदै मैनु ।
'रसिक प्रीतम' समझाय कहत हौं, चित लावों हौं तो पद रैनु ॥

[१७९] राग सारंग

हरि की चितवनि भावै ।
कर गहि अधर धरै, मृदु मुरली, नीकी तानन गावै ॥
गाय चरावत छाँह कदम की, ठाड़ौ रति उपजावै ।
कबहुक करि कटाच्छ इत चितवत, नैनन नैन मिलावै ॥
कबहुक सैनन दैकें मोकों, लीला ठौर बतावै ।
'रसिकराइ' प्रीतम या विधि सों, तन मन धन बिसरावै ॥

[१८०] राग अड़ानो

जहाँ तहाँ ढरि परत ढरारे, प्रीतम तेरे नैन ।
जे निरखत तिन्ह के मन बस करि, सोंपत है लै मैन ॥
छिन सनमुख छिन ही होत टेढ़े, एक अवस्था कबौ है न ।
'रसिक प्रीतम' इनके बिनु देखें, छिन नहीं मन में चैन ॥

[१८१] राग अड़ानौ

तेरी बलैयाँ लीजै हो सुंदर जन सलौनें ।
तब ही गावत बेनु बजावत, मेरे द्वार ह्वै कै गयौ,
जब हौं बदन देखन कों ठाड़ी, पौरि भवन के कौनें ।।
जेती मधुर नाद मोहीं, एक टक हेरत, सुख चाहत हीं,
देह सुरत गईं, रहीं बहु भुंडन, चकित भईं धरि मौने ।
'रसिक प्रीतम' एक बेर, बहुरि के फेर, गाइ सुनाओ,
स्रवनन सुख उपजाओ, तब हौ जैहां जु भौनें ।।

[१८२] रागिनी टोड़ी

नंदकुमार सुंदर सखी कैसै देखिहौं नैनन ।
भेखु धरै नट नाचत, रंग मधि गावै, बोलत मधुरे बैनन ॥
रति उपजावति भावति मन में, गृह बिसरावति दै दै सैनन ।
'रसिक प्रीतम' की ऐसी बानिक जाके दृष्टि परी,कैसै रहै घर चैनन।।

[१८३] राग ईमन

आवत मो सनमुख जब ही, चतुर बरनें या चलनि ।
बन-माला चरनन पर लटकत, नमित ग्रीव मुख,
हँसनि लसै अति मोर मुकट हलनि ॥
कमल फिरावत मधुरे गावत, अधर सुधा की मुख तें गलनि ।
'रसिक प्रीतम' की छबि पर बलि जैयै री लखि टलनि ।।

[१८४] राग हमीर

चतुर चितै चित चोर लियौ ।
चपल कटाच्छ सुलच्छन मिलिकै, छिन में बिकल कियौ ।।
भूल्यौ भवन गमन तब ही तें, सब सुख हरि हिए बिरह दियौ ।
'रसिक प्रीतम' गति और भइ मन की, छिनु-छिनु भर आवै हियौ ।।

[१८५] राग ईमन

मो मन रही है बसी मूरति साँवरी,
अरी कैसें देखों जाइ भरि इन नैननि ।
जमुना के तीर संग लीने सब ग्वाल-बाल,
मो तन निहारि जब बोलि लई सेननि ॥
हरि लियौ सरबस सु दियौ दरसन,
रस बस करि लई हौं मधुर मुख बैननि ।
'रसिक प्रीतम' बिनु देखै आली तब तें,
भौन न भावै बलिहारी वाकी तान लैननि ॥

[१८६] राग हमीर

कैसे मिलै मेरी माई, कुँवर कन्हाई मो पै रह्यौ न जाई ।
हौं जु गई जमुना भरन जल, कंकरी डार दई मो पर,
तब तें कछु न सुहाई ॥
जो मोहि आइ मिलावै उहीं, ताहि देहुँ मन भाई बधाई ।
'रसिक प्रीतम' जो तोहि सुखदाई, नातरु सब दुखदाई ॥

[१८७] राग धनाश्री

लगन इन नैनन की है जु बाँकी ।
देखें दुख, अनदेखें हू दुख, पीर होत दुहुधाँ की ॥
टारी टरत जाय बिन देखें, जाइ फबत है साँकी ।
'रसिक राय' प्रीतम मन अटक्यौ, कहूँ लगत नहीं टाँकी ॥

[१८८] राग आसावरी

लगन मन लागी हो लागी ।
कहा करेंगे लोग मेरौ कछु, हौं प्रीतम रस पागी ॥
कछु न सुहाय न जाय कहूँ मन, ऐसी बनि आई अनमाँगी ।
अब धरियत चित आसपास ही, रहियै 'रसिक प्रीतम' बड़भागी ॥

[१८९] राग नायकी

जो जैयै तौ लोक-लाज लहियै,
देखन न पैयै री, प्रीतम कों नैन भरि।
जो रहियै तौ छिनहू न रह्यौ जाइ,
हियौ भरि आवै, ये दुख सहियै री कैसै करि॥
मन में आवत ऐसो, सुत-पति-गृह तजि,
भजियै री प्रीतम कों नचियै री उघरि।
'रसिक प्रीतम' जीवन तब सुफल मानौं,
जब मिलै एक रस ह्वै कै जु हरि॥

[१९०] राग गौरी

गुरुजन लाज भरी, अरी हौं देखन न पाऊँ।
जब मोहन चाहत तन चितवन, नीची नारि करि जाऊँ॥
मन की कहि न सकों काहू सों, मन ही मन अकुलाऊँ।
बिरह बाफ काढ़न औरन सों, झूँठे ही बतराऊँ॥
आवत है मन ऐसी मेरें, सगरी लाज गमाऊँ।
'रसिक प्रीतम' सों प्रीति जोरी, सो सखी कहाँ लौं दुराऊँ॥

[१९१] राग अड़ानौ

पिय मेरी अँखियन ही में बसत, नैक नाँ इत उत खसत।
दुख पावत हैं बिरह प्रान वे, तौहू मृदु उर नहीं धँसत॥
जद्यपि लीला सहित हृदै में, सदा प्रान प्रिय लसत।
तौहू ना देत आपुनौ दरसन, बिरह कसौटी कसत॥
छिनु छिनु तन यह घटत दयानिधि, बल प्रभाव सब नसत।
ऐसी दसा देखि दीनन की, 'रसिकराय' जग हँसत॥

[१६२] राग सारंग

भावत है काहे कों जियरा।
छाँड़ि चरन गोविंद चंद के, और कछू नहीं बियरा।
नैनन सीतल बैनन सीतल, और सीतलता हियरा॥
'रसिकराय' प्रीतम सुमिरत ही, प्रगट देखियत नियरा॥

[१६३] राग अड़ानो

लगाई संग तब तें, जब तें मो तन चितयौ इन नैन।
मोर मुकट सिर धरैं बनमाल सोहै गरैं, हरैं हरैं चलत दै सैन॥
चितै चितै तिरछे नैनन करि, अधर सुधा पूरित मृदु बैन।
'रसिक प्रीतम' आधीन करी ज्यों,
मीन तलफत, निस दिन परत न चैन॥

[१६४] राग विहाग

कहाँ पाऊँ पीय कों रे, लाग्यौ जासों मन मेरौ।
क्योंई मेरौ मन समझ समझाऊँ, कहि हारी घनेरौ॥
जा दिन तें नैनन पथ आयौ, ताही तें भयौ चरन तेरौ।
'रसिक प्रीतम' जाइ अटक्यौ मन, क्योंहूँ न होत निबेरौ॥

[१६५] राग विहाग

पिय तेरी चितवन ही में टौना।
तन मन धन बिसर्यौ जब ही तें, निरख्यौ बदन सलौना।
ढिग रहिवे कों होत बिकल मन, भावत नाँहिन भौना॥
लोग चबाव करत घर-घर प्रति, धरि रहियै जिय मौना।
छूटी लोक-लाज सुत पति की, और कहा अब हौना॥
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, भूलि गई गृह गौना॥

[१९६] राग सारंग

तुम बिन प्रीतम मोहि छिनु न सुहाई ।
सो नहीं पायौ परम कृपानिधि, जो मग दियौ तुम मिलन बताई ।।
लोग चबाऊ सब घर-घर प्रति, ठाले ठूले करत चबाई ।
सुमिरत ही वह टेढ़ी चितबन, देखन कों मेरौ मन ललचाई ।।
कहा कहौं कछु कहि नहीं आवै, तन मन धन सब रह्यौ बिकाई ।
'रसिक प्रीतम' अब कैसै मिलि हैं, मोहि नहीं सूझत कछुक उपाई।।

[१९७] राग हमीर

हौं तो न रहि सकों बिनु देखै, देखै रहैगी कैसे लोक लाज ।
मोहन रूप मन मोहि लियौ, मोहि भूल्यौ री गृह काज ।।
कछु कोऊ कहो रहौ रूसे कोऊ, रहूँ बावरी जोरि समाज ।
'रसिक प्रीतम' की मया के बल मोहि काहू नहीं डर,
पायौ री मै कुँवर ब्रजराज ।।

[१९८] राग विहाग

नंद दानी नागर नैन सुलोन ।
पाँच बरस दानी मनमोहन, बड़ौ अजोभी हौन ।
रहि न सकोंगी बिनु देखै, का जानै कछु तारी टौन ।
'रसिक प्रीतम' बिन मोहै नैक न भावै, खानौ पीनौ सौन ।।

[१९९] रागिनी टोडी

तू जिनि कहै कछु हौं न सुनोंगी, पिय यह तौ वाही सों कहौंगी।
मेरे बीच परी जिन कोई, रस अनरस मुख देख ही सहौंगी ।।
अपुनौ नैम तजत कोऊ कैसै, दुखहू पाय सो अरि निवहौंगी ।
'रसिक प्रीतम' प्रीतम मिलिहैं तौ, बन दूरन रस हू तौ लहौंगी ।।

[२००] राग विहाग

माई हौं हरि की, हरि मेरौ, जिनि कोऊ बीच परौ।
रस अनरस की हौं ही समझों, न दुरै प्रीति कोई कछू करौ ॥
क्योंहूँ न छाँड़ों हरि कौ संग, जु औगुन जीवित धरौ।
'रसिक प्रीतम' सों प्रीत हमारी, दुरजन देख जरौ ॥

[२०१] राग नायकी

अरी मोहि ऐसी जिय आवै,
मिलों जाइ चलत पिय पै, नेह भरिकै ।
आँकौ भरत कैसें सहोंगी बियोग दिन रैन,
भरोंगी फेंट, गहोंगी अंग हठ करिकै ॥
ना काहू की कानि करोंगी, ना काहू ते डरोंगी,
यह बात निधरक चित्त धरिकै ।
'रसिक प्रीतम' जो न रहें मेरे घर तौ,
यै सब सुख जैहौं री विसरिकै ॥

[२०२] राग भैरव

दीनौ दरस सपने में आइ ।
छिन एक सुख उपज्यौ मेरे मन, गयौ कहूँ हरि बिरह बढ़ाइ ॥
हा हा पाँय परत हौं तेरे, क्यों हू करि लावै न बुलाइ ।
अब न परत मोपै रह्यौ एक छिन, बिन भेंटे जिय अति अकुलाइ ॥
यह दुख कौनें कहों सखि ! तो बिन, मेरे तू ही एक सहाइ ।
कहा बिलंब करत जैवै कों, कहत सखी हौं सोंहै खाइ ॥
वह मूरति गढ़ि रही हिये में, निकसत नाँहिन और उपाइ ।
उठि एहं सुनि बिनती मेरी, जसुमति सुत 'रसिकन' कौ राइ ॥

[२०३] राग नायकी

देखत बदन सोभा-सदन मदन-मूरति कौं, रहै कैसै लाज राखी।
तू तौ सिखवत मोहि भाँति-भाँति,
मोपै रह्यौ कैसै परै लाज राखी॥
जो मेरे मन होत, विरह अगिन जोति,
ताकौ एक मेरौ हृदौ है जु साखी।
'रसिक प्रीतम' बेगि मिलें आइ मोहि,
सोई जाइ करौ याते दीनता भाखी॥

[२०४] राग आसावरी

राखत ही पिय प्रीति गुपत, इन नैनन ही हो दई उघारि।
देखन लगी बदन छबि एक टक, सबहिन में पट घूँघट बिसारि॥
छुटि गई सकुच्च कुटिल कच देखत, सहचरी सिगरी रहीं बिचारि।
'रसिक प्रीतम' तुम हौ मनमोहन, मन न रुकत हौं रही पचहारि॥

[२०५] राग सारंग

माई मेरौ मन मोह्यौ साँमरे, अब मोहि घर अँगना न सुहाइ।
ज्यौं ज्यौं आँखिन देखियै, मेरौ त्यौं त्यौं जिय ललचाइ॥
हेली मनमोहन अति सोहनौ, मारग इत निकस्यौ आइ।
मोहि देख ठाड़ौ भयौ वह, चितयौ री मुरि मुसकाइ॥
हेली रूप ठगोरी डारिकै चलौ, अँग छबि छैल दिखाइ।
नैन सैन दै सामरौ, मन लै गयौ संग लगाइ॥
हेली लोक लाज कुल कान की, मेरे जीय न कछु ठहराइ।
लै कै चलि मोहि स्याम पै, कै स्वामहिं आनि मिलाइ॥
हेली प्रान प्रीति परबस परे, अब काहू की न बस्याइ।
रसनिधि वा नंदलाल पै, 'रसिक' सदाँ बलि जाइ॥

दूती— [२०६] राग सारंग

कहा तू बैठि रही धरि मौन ।
अपनी बात कहै किन मोसों, आय बसौ मन कौन ॥
काके बिरह उसास लेत है, आत दीरघ तोहि पौन ।
अति आतुरता ये काके लियै, भावत नाँहिन भौन ॥
काके देखें भई ऐसी गति, कहि प्रगटी अबलौं न ।
किन डारी यह प्रेम ठगोरी, लगी छीन तन हौंन ॥
क्यों न दिखावै मोहि हाथ गहि, उठ सुंदरी कर गौन ।
जो न मिलाऊँ आन निरंतर, तेरी दूती तौ न ॥
जानति हों मोहन कहूँ देख्यौ, तोसों भई सुख सौंन ।
'रसिक प्रीतम' बिनु मिलें, सखी ! नहिं बुझै बिरह की दौंन॥

[२०७] राग सारंग

रही दृग दोऊ नीचे ढारि ।
मन में सोच करत मिलिवे कौं, कर कपोल तर धारि ॥
सूझत नहीं उपाय मोहि, हौं बहुतक रही पचिहारि ।
ज्यौं मनाय पाऊँ मनमोहन, सो जिय जतन बिचारि ॥
बहुतन कौ नायक क्यों आवैं, मेरें सबनि बिसारि ।
बिरह अगिन बाढ़ी मेरे उर, अंतर मारति जारि ॥
काहे कों दुख पावति स्वामिनि, अपनौ रूप सँभारि ।
'रसिक प्रीतम' तेरे बस ह्वै है, तजि सगरी ब्रज नारि ॥

[२०८] राग हमीर

हौं लाऊँगी जनि होहु जू अनमने ।
काहे कों उसास लेत हौ दीरघ, करोंगी उपाय अब जाइ घने ॥
धीरज धरौ तहाँ लौं मोहन जू, करि आऊँ हौं छल बल अपने ।
'रसिक प्रीतम' ऐसी काहेकों रूसियत, जा बिनु देखें छिन ना बने॥

[२०६] राग ईमन

तन की निकाई वाकी, कही न जाइ मोपै,
जब तें हौं देखि आई, लागि रही है मन ।
है तौ मिलिवे ही जोग, रावरे ही भोगिवे कों,
करौंगी उपाय जाइ, पाऊँ जो मुख वचन ॥
मोहि सीख दीजै, मोपै छिनहू न रह्यौ परत,
जहाँ लौं तिहारे ढिग बैठी न देखौं धन ।
'रसिक प्रीतम' दूती साँची सोई कहियत,
पिय के काज बीचि, डारै धन-जीवन ॥

[२१०] राग कान्हरी

चलियै हो पिय सेज सँभारी ।
विविध भाँति फूलन सों रचि पचि,
अपने हाथ प्यारी रची, तेरे बिरह बिहारी ॥
सीतल करत उपाय अनेकन, पहिरैं अंग सूच्छम सारी ।
'रसिक प्रीतम' चलि मया कीजियै, वाकी देह भाँति भई न्यारी ॥

प्रिय-मिलन— [२११] राग केदारौ

प्रानन हू तें प्यारे, छिन न होउ न्यारे ।
बचन सुनन कों स्रवन तरसत हैं, देखन कों दृग तारे ॥
तन तलफत है नित मिलिवे कों, रसना अधर सुधा रे ।
'रसिक प्रीतम' इतनी सुनि बिनती, प्रगटे बेनु सँभारे ॥

[२१२] राग अड़ानौ

पिय तोहि नैनन ही में राखूँ ।
तेरी एक रोम की छबि पर, जगत वारि सब नाखूँ ॥
भेटौं सकल अंग साँवल कों, अधर सुधा-रस चाखूँ ।
'रसिक प्रीतम' संगम की बातें, काहू सों नहिं भाखूँ ॥

[२१३] राग केदारो

बैठी पिय कौ बदन निहारै ।
लालन ऊपर बारि बारि मन, तन धन जोवन वारे ।।
कबहुँक निकट जाय प्रीतम के, पगिया पेच सुधारै ।
कबहुँक चुंबन करत कपोलन, हेरि चंद उजियारै ।।
कबहुँक प्रीतम अधर सुधा रस, भेंटत अंग उघारै ।
'रसिक प्रीतम' के संग में प्यारी, पूरव विरह विसारै ॥

[२१४] राग विहाग

अरी मै रतन जतन करि पायौ । ऐसौ लालन मो मन भायौ ।।
उघरे भाग आज मेरे गृह, रसिक सिरोमनि आयौ ।।
लाय हिरदै मुख देखत अटकी, अपने ढिग वैठायौ ।
मुख चुंबन करि अधर पान दै, भेंट सकल अंग लायौ ।।
अद्भुत रूप अनूप स्याम कौ, अपनौ मन बौरायौ ।
निसि-दिन यह अपने ठाकुर कौ, गूढ़ 'रसिक' गुन गायौ ।।

[२१५] राग कान्हरो

मो ढिग तें बलमा कित जाऔ ऊठि ।
अब ही तौ आये भवन पिय रावरे, मिलन होति है झूठि ।।
देखत ही नैननि मृदु मूरति, रहत ठगी सी लागी मूठि ।
'रसिक प्रीतम' मै करत बीनती, हा हा खाऊँ चरनन लूठि ।।

[२१६] राग गौरी

परम रस पायौ ब्रज की नारि ।
जो रस ब्रह्मादिक कों दुरलभ, सो रस दियौ मुरारि ।।
दरसन सुख नैनन कों दीन्हौ, रसना कों गुन-गान ।
बचन सुनन स्रवनन कों दीन्हौ, बदन अधर रस पान ।।

आलिंगन दीन्हौ सब अंगन, भुजन दियौ भुज बंध ।
दीन्ही चरन बिबिध गति रस की, नासा कों सुख गंध ॥
दियौ काम सुख भोग परम फल, त्वचा रोम आनंद ।
ढिग बैठिवौ दियौ जु नितंबन, लै उछंग नँद-नंद ॥
मन कों दियौ सदा रस भावन, सुख समूह की खानि ।
'रसिक' चरन रज ब्रज जुबतिन की,
अति दुरलभ जिय जानि ॥

रूपगर्विता— [२१७] राग ईमन

रसिक रस माती हो, गनत न काहू त्रिभुवन में ।
अपने रूप गुन गर्व भरी सखी, ए चितवत सब धन में ॥
मन पिय कौ गहि डारत री, करि भाँवरी अपने रूप जोबन में ।
'रसिक प्रीतम' कों बैठी निहारति, आभूषन सब तन में ॥

प्रेमगर्विता— [२१८] राग मालकोस

भोरे भोरे कान्ह, तू मेरौ कह्यौ मान,
अथमैगो भान, आप चलि आऊँगी ।
तुम तौ चतुर नर, छाँड़ि दै हमारौ कर,
तुमकों तौ नाँहीं डर, लाज मरि जाऊँगी ॥
तुमकों तौ चहियै भोग, भोग कौ नाँहीं संयोग,
देखेंगे नगर लोग, अब नहिं आऊँगी ।
'रसिक' के स्वामी स्याम, धरूँगी तिहारौ ध्यान,
जहाँ लौं घट में प्रान, तुमकों रिझाऊँगी ॥

[२१९] राग सारग

आवैगी मेरी बलाय, अरी मोहि गारी दीनी ।
डारि दई मेरे सिर ते गगरिया, ईंडुरिया गहि छीनी ।।

करि डारी चिरकुट चोली की, गहि आलिंगन लीनी ।
दै कपोल दोऊ दिसि चुंबन, अधर सुधा रस पीनी ।।

लाज गँवाई सब सखियन में, करी आपु आधीनी ।
तन की दसा बिसरि जु गई मोहि, भई विकल मत हीनी ।।

लोक चबाव भयौ घर-घर प्रति, हौं प्रसिद्ध अब कीनी ।
'रसिक प्रीतम' की बात अटपटी, वरनौं कहा नगीनी ।।

प्रेम-पत्र— [२२०] राग नायकी

लाई हौं पतियाँ पिय की ।
'लाई हौं पतियाँ' सुनी कान, जिय भई आन,
देखे ही बनें दसा तिय की ।।
आदर दै उठि लई आपु, कर छतियाँ लाई,
जानेंहि जियावन जिय की ।
बाँचत ही सब बात लखी, अनुराग भरी गति,
'रसिक प्रीतम' के हिय की ।।

आगमपतिका— [२२१] राग कान्हरौ

अरी माई देखन की मोहि चाहि पिय के बदन की,
मेरौ सलौनौ नाँह ।
फरकत आँख बाँई, अधरा हू फरकत, अरु फरकत बाँई बाँह ।।
छिनहू नाँ बिसरत है आली ! मेरे बसौ तू हियरा माँह ।
'रसिक प्रीतम' जब देखि हौं नैननि, तब सुख ह्वै है री छत्र छाँह ।।

[२२२] राग कान्हरौ, पूरिया

फूली फूली फिरत अँगना में, डोलत इत उत चितवत,
पिय आवन की फूल ।
बिसरि बिसरि जात गृह के काज, छुटि गई लाज,
कुल कान आन, जिय होत बिरह के सूल ।।
कछू कहत कछु सोच धरत मन, कछू गहत, कछु चाहि रहत तन,
गई तन-मन सुधि भूल ।
'रसिक प्रीतम' तिहिं औसर आये, अंग लगाय भयौ बहु आनंद,
गयौ सकल दुख मूल ।।

बासक-सज्जा— [२२३] राग खम्माच

मेरी पलकन सों मग झारूँ ।
या मग में मेरौ पिय आवत है, तन-मन प्रानन वारूँ ॥
सेज सँभारूँ चमर ढुराऊँ, मधुर मधुर सुर गाऊँ ।
'रसिक प्रीतम' मेरे पिय जो मिलें मोहि, हँसि-हँसि कंठ लगाऊँ ।।

[२२४] राग सूहौ

मेरी अँखियन की पलकन सों डगर बुहारूँगी ।
जो या घरी मेरौ पिय आवै, तन-मन-जोबन वारूँगी ।।
सेज सँभारों चरन तलासों, और मधुरे सुर गाऊँगी ।
'रसिक प्रीतम' पिय अबकै मिलें, तौ नैनन सों समझाऊँगी ।।

उत्कंठिता— [२२५] राग रामकली

सुघर पिय स्याम, अजहू न आये धाम ।
सिगरी रैन मग जोवत बिसरि गई, बिसरि गयौ हरि नाम ।।
कौन सुघर जिन बस करि लीन्हे, राखे चारों जाम ।
'रसिक प्रीतम' रस वाही के भोगी, औरन सो नहीं काम ॥

[२२६] राग ललित

भई री आली तमचर बन खग रोर ।
आवन कहि गये अजहूँ न आये, जागत भयौ मोहि भोर ।।
किन सौतिन के बस परे प्रीतम, चितवत चंद चकोर ।
'रसिक प्रीतम' कुमुदिन सकुचानी, फूले कमल रवि भोर ॥

धीरा— [२२७] राग रामकली

सुघर पिय आये, भुज भरि कंठ लगाये, नैनन हियौ सिराये ।
खुले कपाट ठाड़ी मग जोवत, सिगरी रैन बिहाये ।।
कौन तिया के रति-रंग राचे, चारों जाम आवन नहीं पाये ।
'रसिक प्रीतम' ऐसौ कबहुँ न कीजै, बसि ब्रज जन सुख समाये ।।

[२२८] राग रामकली

सुघर तिय कौन, वाही पै उतारौं राई नौन ।
नागर नटवर तनिक चितबन में, बसे वाही के भौन ॥
जा सुख कों सनकादिक तरसत, मुनि-जन धरिहैं मौन ।
'रसिक प्रीतम' चारि जाम बसे तहाँ, अनहौनी भई हौन ॥

[२२९] राग हमीर

रहौ रहौ चुपकै चतुर रसनायक, समझावत ये बातें ।
हौ तौ लालची मधुर मुख बोलत, यह सीखी चतुराई कहा तें।।
जो तुम डार डार डोलत हौ, हौं हू डोलत पात पाते ।
'रसिक प्रीतम' मनमाने की सब, इतनी कहि मुसकातें ।।

[२३०] राग सारंग

मेरी सौं, मेरी सौं प्यारे ! मोसों कहौ उह बात ।
जा बातन रस तुम मन ही मन, बैठे हौ मुसिकात ॥
हा हा परौं पॉयन पिय तेरे, मेरौ जिय अकुलात ।
'रसिकराय' प्रीतम सों सब सुख, पावै मेरौ गात ॥

[२३१] राग सारंग

बैठौ, देखों चरन कमल तल ।
गड़त होंयगे इहि तृन अंकुस, धरनि धरत पद चंचल ॥
अपने अंचल पोंछ हृदै में, धरि राखों करि कर बल ।
ब्रज जन हृदौ छॉड़ि वे धरियत, और ठौर अति सीतल ॥
जानं कहा मरम कोऊ इनकौ, नव प्रबाल तें कोमल ।
धरनि धरे दुख पाय कृपा करि, गोचारन कौ करि छल ॥
जद्यपि कठिन हृदौ जुबतिन कौ, पूर रह्यौ है रस-जल ।
भली बनाइ जुगति राखोंगी, ज्यों कुँभलाइ नहीं पल ॥
लालन ! तुमकों देखि दुखारी, परत न पलक कहूँ कल ।
'रसिक प्रीतम' बनिता यह मानै, अनत हमारौ नहीं फल ॥

अधीरा—— [२३२] राग रामकली

जाही कौ लहनौ, ताके भवन पधारौ ।
सोऊ धनि-धनि जाकों उर पर धारौ ॥
आऔ न पिय मेरी दिसि, क्यों न निहारौ ।
कछु एक जिय में दया तौ बिचारौ ॥
पूरब प्रीति काहे तें जु बिसारौ ।
दीने सुख पुनि काहे नाँ सँभारौ ॥
किन्हें मिलै ऐसौ प्रान पियारौ ।
'रसिक प्रीतम' टेढ़ी पगिया वारौ ॥

[२३३] राग विभास

पिय बिन जागत रैन गई ।
अवधि बदि गये सो नहीं आये, बड़ी बेर भई ॥
कछुक हँसत बातें जु करत कछु, कौन ये सीख दई ।
साँच नहीं बोलत एकौ अंग, कहा रीति लई ॥
कैसै कीजै बिसवास बचन कौ, मन भय हौ बिसई ।
'रसिक प्रीतम' रावरी है छिन-छिन, गति कछु प्रगट नई ॥

[२३४] राग सारग

तुम बहुनायक चतुर सिरोमनि,
मीठी-मीठी बतियाँ मन न पत्याइ ।
छाँड़ि देहु मन की कठिनाई,
मानों कह्यौ अब दीजै दरस ढिग आइ ॥
जाहि बनै सोई तौ जानै,
अनजानौ कहा जानै, जैसौ जिय अकुलाइ ।
'रसिक प्रीतम' तिय की गति तिय जानै,
कहा जानै इन बातन रावरी बलाइ ॥

[२३५] राग मल्हार

मीठी मीठी बतियन मोहि रिझावत ।
सो न कहत रजनी की बातें जो मन भावें,
सरस अरुन दृग मोय जनावत ॥
कहा भयौ बहुनायक जे ते, घर-घर के पाहुने कहावत ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु कों डर काकौ, जाके लिएँ ये करम छिपावत ॥

[२३६] राग विहागरौ

कहौ कैसें कीजै हो, ऐसे कपटिन कौ बिसवास ।
एकन के चित लेत चोर कै, एकन लेत उसास ॥
जो कोउ मान करत ताहि मनावत, चेरी ह्वै रहै तासों होत उदास ।
'रसिक प्रीतम' की जानी नाँ परै, हाँसी किधौं उपहास ॥

खंडिता— [२३७] राग ललित

सुघर पिय ऐन, जाके रहे तुम रैन ।
लटपटी पाग सुभग सीस पैं, ढरकि रहे कछु नैन ॥
कौन सुघर जिन्ह रस बस कर लीन्हे, तनिक नहीं चित चैन ।
'रसिक प्रीतम' पिय निसि के उनींदे, बोलत अटपटे बैन ॥

[२३८] राग केदारौ

मोहन नैननु की अरुनाई ।
दुरै दुराई कैसैं, घूँमत लोचन लेत जँभाई ॥
नख छत पाँति कपोलन प्रगटी, देखत लगत सुहाई ।
'रसिक प्रीतम' तुम ही पै ये बिधि, भली भाँति बनि आई ॥

[२३९] राग आसावरी

बदन की कांति मोपै बरनी न जात ।
लालन अदभुत भाँति बने हौ, दोऊ कपोल नख छत की पाँत ॥
अलक बरुनि फहरात पवन गति, आधी-आधी बात ।
अधरन पीक लीक पलकन, उर बिन गुन माल सुहात ॥
दूनौ दाह होत इन देखत, कैसै अगिन बुझात ।
'रसिक प्रीतम' गति और लखावत, छिन-छिन जिय अकुलात ॥

[२४०] रागिनी टोडी

बतियाँ काहे कों बनावति प्रीतम, सौंहें खावत केती ।
अग अंग चिन्ह प्रगट देखियत, नैन अरुनई एती ॥
यह निस्चै मै कियौ नैननि में, झूठ बात कहौ तेती ।
'रसिक प्रीतम' सों कहौ ऐसे कैसे, छबि उपजत तन जेती ॥

[२४१] राग सारंग

बूझत हौं पिय अबही तुमकों, उत्तर न आवै ।
बातें बनावत हौ बलि, मोकों न भावै ॥
देखियत सब अंग चिह्न प्रगट, कैसे प्रतीति आवै ।
'रसिक प्रीतम' तुम सब जानत हौ, बातन क्यों सचु पावै ॥

[२४२] राग विलावल

भली कीनी आये हौ लालन, भोर भएँ हमरें भये भोरें ।
हमहि दिखावत चिह्न राति के, जानत हौं किये बहौत निहोरें ॥
काहे कों होत उघारे प्रीतम, लोकि निहारि देखे ता खोरें ।
'रसिक प्रीतम' तुम उहाँहीं सिधारौ, निसि बस भये लाल दृग डोरें॥

[२४३] राग रामकली

लालन जागत रैन बिहानी ।
देख पंथ अँखियाँ अति हारीं, कहाँ लाल रति मानी ॥
कटौ काल कहाँ लाल सखिन संग, पूरब बिथा कहानी ।
रंग अनंग सुरति चित आवत, छतियाँ अधिक पिरानी ॥
भोर भएँ आये मेरे गृह, देखत सखी हिरानी ।
'रसिक प्रीतम' दोऊ अखियाँ अरुन भईं, कहाँ-कहाँ रैन सिरानी ॥

[२४४] राग सारग

मन की क्यों हू न रहत ढकी ।
कहें देत लालन ये अँखियाँ, रति रस रंग छकी ॥
जद्यपि बहौत दुरावत, तौहू कछु न चलत छल की ।
'रसिकराय' अपराध छिमा करौ, हौं मुख बहौत बकी ॥

[२४५] राग कान्हरौ

कहा मोसों करत हौ कपट, आवत तन तें सौंधे की लपट ।
प्रगट देखियत रँगे बाहु, वदन कमल पै बिथुरी अलकन की झपट॥
और कहों कहा क्यों न लेहु सुधि, अपने तन की बेनी भई अटपट ।
'रसिक प्रीतम' प्यारी के कहत सुख पायौ,
दौरि गयौ मन घूँघट अंचर पट ॥

मानाभास— [२४६] राग मल्हार

सखी री ! हौं तौ रूसि रहूँगी ।
जो पै स्याम मनोहर आवेंगे, तो मैं बाँके-बाँके बचन कहूँगी ॥
जो वे मनावें मैं तौहू न मानूँगी, मदन के बान सहूँगी ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु पाँयन परेंगे, तौ मैं रूठ न करूँगी ॥

[२४७] राग केदारौ

प्रीतम आवत जानि, मान कर घूंघट तानि रही ।
बदन कमल पर आवत मधुप दृग, रूप उघारि चही ॥
रति उपजावन चोंप बढ़ावन, आवन नाँही कही ।
'रसिक प्रीतम' रस जानि सिरोमनि, आँकौ भरि धाइ गही ॥

[२४८] राग बिहागरौ

मान कियौ मानिनी, मनायौ हू न मानें नैक,
मान ही में सोइ रही, मानिनी न मान कै ।
उझकि पिय देखै आय, चाँपत चरन सखी,
सैन दै उठाई पिय, बैठे पग पान कै ॥
पिय कौ परसि जान, जानकै भई अजान,
चतुर बिहारी जू सों, बोली मिष आन कै ।
रहौ रहौ 'रसिकराय', छिनहू न होओ न्यारे,
हम तुम पौढ़ें दोऊ, एक पट तान कै ॥

[२४६] राग सारंग

पिय की कहावति, कहि समभावति,
तेरी तौ कही, मेरे मन में न आवति ।
मोहि न भावति, रिस बिसरावति,
सौह लै भूँठी, ये प्रीति जनावति ॥
वाते बनावति, मनहि बढ़ावति,
अपने जिय जानें, का चित चावति ।
काहे कों मोहि योंही ललचावति,
'रसिक प्रीतम' संग बहु सुख पावति ॥

मान-मनावन— [२५०] राग हमीर

तो ही सों अखियाँ प्यारे पिय की लगीं ।
इक टक चाहत देखे बिनु छिन ही में बिकल होत,
इत उत तें नैक न डगी ॥
अनत न कहूँ जाँय प्यारे सुन, ऐसी विरह दगीं ।
'रसिक प्रीतम' सों तू हू सुन नहीं छाँड़तीं, वे तेरे रंग रँगी ॥

[२५१] राग हमीर

तू हित नैनन ही में जनावति ।
हँसत कटाच्छन तब चितऊ दिसि, केती तिय जु गावत ॥
छिन ही में रूखी ह्वै जात, कौने पद जु दुरावत ॥
'रसिक प्रीतम' के मन ताही ते, तो तजि और न भावत ।

[२५२] राग कान्हरौ

प्रीतम तेरे ही वस मैं जान्यौ, तू काहे न बजावै री दमामै ।
अब ही लै आऊँगो तेरे घर, नख-सिख अंग अभिरामै ॥
मिलि मनमोहन सों नीके करि, क्यों न जमावै भरम गये कामै ।
'रसिक प्रीतम' सों दूती समभावै, मान बढ़ाइ मानवती बामै ॥

[२५३] राग कान्हरौ

तू अलबेली न जानें,पिय कौ मन लै कर ।
तू तौ अपुने ही सुहाग भाग पूरी काहू न गनति,
वे तौ रसिक बहु नायक बर ॥
ऐसे री लालन पर तन मन जोबन धन वारि डारियै,
और प्रान हू भेंट दीजै धर ॥
'रसिक प्रीतम' सों हिलमिल बैठियै, अनुभव किएँ री,
बहु रस महा सुखन भर ॥

[२५४] राग कान्हरौ

हा-हा री जिनि दुख दीजै, तेरौ मग जोवत वे आतुर ह्वै ।
छार परौ ऐसे कठिन हठ पै, क्यों न अधर रस पान कर लै ॥
तेरौ भाग सुनि मुग्ध ग्वालिनी, मुरली रस सगरौ जात च्वै ।
मेरे कहै क्यों न 'रसिक प्रीतम' संग, हिलमिल रहै लाड़िली ह्वै ॥

[२५५] राग सारंग

तू कहत है एरी अयानी, वे हैं जाके ताके ।
तेरी सों तोसों साँची कहति हों, तेरौ ही ध्यान है जू वाके ॥
तो तजि और न भावै पिय कों, तेरौ नाम लेत उन छाके ।
'रसिक प्रीतम' प्यारौ तेरे ही बस, मानत तेरी धाके ॥

[२५६] राग सारंग

आली ! हौ तौ कहूँगी तेरी, सब कही बातें पिय सों ।
जा बिनु न सरै तासों ऐसी कहैवाई बात,
तू न बिचार देखै जिय सों ॥
हों तौ नीके जानत ही यह, तो तजि लगन कहूँ है न आन तिय सों ।
'रसिक प्रीतम' की प्रकृति पहिचानति,
मिलति क्यों न लगाइ वेह हिय सों ॥

[२५७]　　राग सारंग

उठि चलियै, ऐसौ न कीजै मान ।
हौं तौ वहौत रीझि ह्यॉं आई, तै न राख्यौ मेरो मान ॥
जा बिनु न बनै रूसियत तासों, तेरौ ही अनुभव परमान ।
देखि विचार आपुने मन में, है कोऊ 'रसिक' समान ॥

[२५८]　　राग विभास

पिय हिरदे में राखति निसदिन, आज कहा तुम आर्त रही री ।
बिच बिच नाँही नॉही करति हौ,
सब तियन में तूही कठिन कही री ॥
मो गरीब पर कीजै कृपा ऐसी, मति तेरी किनहू धों सही री ।
'रसिक प्रीतम' सों मिलि प्रभात ही,
रुचि तोसों निसदिन निवही री ॥

[२५९]　　राग मल्हार

कित होत अयानी काहू के कहें सुनें,
पिय के औगुन मन मॉंझ धरत ।
वे तो गुन पूरन सबही के हितकारी,
तोसों तौ अधिक प्रीति, टारी नाँ टरत ॥
जेती बात कहीं तेती सबही उराहने की,
अपने री जिय में विचार धरत ।
'रसिक प्रीतम' सों ऐसौ कहा अनरस,
हिलमिल रहियै नीके कै, काहे कों लरत ॥

[२६०]　　राग विहाग

लाल करत मनुहारी प्यारी, मान मनायौ मेरौ ।
मदनमोहन पिय नव निकुंज में, नाम रटत है तेरौ ॥
नवलनागर गुन के आगर, रितुराज सो आयौ नेरौ ।
'रसिक प्रीतम' सों हिलमिल भामिनि, ज्यों रीझै चित तेरौ ॥

[२६१] राग विहाग

बढ़ावती है री झूँठी रारि, बिचारि चित्त-
पिय बिन मिले कसै सरिहै ।
नेरे अनरस सौतिन बस परिहै री बहुनायक,
पाँय पीछे कहा तू करि है ॥
अब ही तौ सबहिन तें मन काढ़ि,
तेरौ ध्यान धरत तातें बस परिहै ।
'रसिक प्रीतम' चतुर तू तौ तीय,
संग लाइ-लाइ कहीं बिरह अगिन तें बरिहै ॥

[२६२] राग विहाग

तोकों हरि नीकौं समुझावै । मेरी हितू तू मन में न लावै ॥
अति ही निठुर मन कर रही, अरी तू छिन-छिन मान बढ़ावै ।
हित की कहत तोसों मन धरि ती मेरी,
काहे कों योंही वृथा दुख पावै ॥
'रसिक प्रीतम' कौ कोमल अंग, क्यों न आपने अंग लगावै ॥

[२६३] राग आसावरी

आली मदन-गोपाल लाल सों, जो तू मान धरैगी ।
चंद्र बदन बिकसे अधरन, कुच श्रीफल से इन्ह कहा करैगी ॥
साँमल अंग संग बिन प्यारी, दुसह बिरह जल कैसे तरैगी ।
मेरे कहे चलि 'रसिक प्रीतम' पै, नहीं पाछै जल नैन भरैगी ॥

[२६४] राग आसावरी

चलि चलि मेरे कहे पिया पै, रिस नहीं भरियै री बे काज ।
मोहि पठाई री मनभावन, तू हठ ठान रही गहि लाज ॥
वे बहुनायक तहाँ सुखदायक, जुर्‌यौ रहत जहाँ जुबति समाज ।
'रसिक प्रीतम' कही मन धारौ, उठ मिलि छिन बिलसौ रतिराज॥

[२६५] राग नायकी

पल-पल यह बिचारि चारि सखियन मिलि,
आली तोहि कछु न सुहाय, मिलिबौ कैसै बनै ।
जो बात कहत मानत नहीं कोऊ आन ज्ञान ध्यान बिचार,
हित की कहत उचार ताहि लेखे में नहीं गनै ।।
तौलों कीजत मान प्रीतम समीप जौलों मिलै नहीं मान,
तू रही एती सुजान बनत अजान ठान ठनै ।
ताही कौ बड़ौ भाग बाढ्यौ सकल भाँतिन सुहाग,
'रसिक प्रीतम' अनुराग नव सनेह सुख अंग सनै ।।

[२६६] राग नायकी

मानिनी मान मेरौ कह्यौ, तोहि देत हौं दुहाई मन की ।
जाके बल तू एतौ मान धरत, सो तौ मान रहित भयौ,
देखत सोभा बदन की ।।
कहा एतौ कियौ हियौ कठिन आली री,
तोहि सुधि न आवै वा नंदनंदन की ।
'रसिक प्रीतम' संग लाड़िली ह्वै विलसै क्यों न,
संपति कुंज सदन की ।।

[२६७] राग नायकी

ऐसी तौ तोही विधि बनि आवै,
मन भावै प्रीतम के निस-दिन ।
तोहि न बिसरावै तेरे ही गुन गावै,
अनत न चित लावै तो बिन न रहि सकै छिन ।।
तेरौई रूप ध्यावै तोहि हिरदै बसावै,
तोहि आलिंगन देत रति न और नारिन ।
'रसिक प्रीतम' पावै तूही पिय मन बढ़ावै,
तोसी मैं चतुर तिया देखी कोऊ नाँहिन ।।

[२६८] राग नायकी

अदभुत हौं देखे आली, बदन कमल पर मीन नैन ।
पिय बस करिवे कों जुबतिन के, मानों पठयौ बाहन मैन ॥
तेरौ मान उन्ह आकुलताई, लखि न परत चित चैन ।
'रसिक प्रीतम' तेरे अति अधीन, तातें चलियै पियहि सुख दैन ॥

[२६९] राग कान्हरौ

तोहि बिनु देखे री, पल-पल जुग भई जात ।
छिनक उठत बैठत तलफत छिन, ऐसें रैन बिहात ।
सकल नारि सिंगार कर बैठी, तौहू कोऊ न सुहात ॥
'रसिक प्रीतम' आली तेरे ही बस, तोहि मिलत अकुलात ॥

[२७०] राग केदारौ

देखिवे में तैं कहा कछु कियौ ।
तब तें लालन भावै नाँहि भौन, ते महामंत्र सिखाइ दियौ ॥
तेरौ नाम जपत निसदिन लाज तजि, तेरे ई विरह ते सोच छियौ ।
'रसिक प्रीतम' न धारै मन भूलि कहूँ, तैं तौ ऐसौ कठिन मान लियौ॥

[२७१] राग केदारौ

प्यारी तोहि तज और न भावै ।
काहे कों रूखी ह्वै बोलत, अपुने पियहिं सताइ ॥
तेरे चरन रस रीझ्यौ, फिरि फिरि सीस नवावै ।
तू इतने पर हू नहीं नैकहु, नैनन नैन मिलावै ॥
एक टक देखि रहत तेरौ तन, तौहू तू न बचन सुनावै ।
भाँति-भाँति करि जुगत चारु सों, सुदृढ़ मान बिसरावै ॥
अति अगाध हिरदौ जुबतिन कौ, कोऊ पार न पावै ।
'रसिक प्रीतम' ऐसी कों बस करि, कैसै नाँच नँचावै ॥

[२७२] राग केदारौ

पिय सों खीजत अनखनात बोलत, तेरी सों नीकी लागति ।
मेरे कहें चलि मिलि प्रीतम सों, हौं तो पै यह माँगति ।
करि एतौ दृढ़ मान बृथा ही, बैठी सब निसि जागति ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु तो बिनु भेटे, ह्वै है री कहाँ पागति ॥

[२७३] राग केदारौ

री लालन के तू मन मानी ।
तोही सों रस तेरे ही बस, तो ही संग रति ठानी ॥
जब ते दृष्टि लगी है री तोसों, लालन तुही चित आनी ।
तोही सों रति, तोही सों मति,
'रसिक प्रीतम' तोहै मानी नेह निधानी ॥

[२७४] राग केदारौ

निकाई तेरे विमल बदन की, कैसै हू न बरनी जाई ।
जहाँ कमल मीन जहाँ रवि ससि सूक,
जहाँ बिबाफल देखत कवि उपमा न पाई ॥
जहाँ अंजन सब ही कौ मन रंजन बसै,
बिंदुली भाल देखि राची दरपन में बनाई ।
'रसिक प्रीतम' भेटे बिनु बृथा जात सिगरी छबि,
उठि चल तजि मान, तोहि मेरी है दुहाई ॥

[२७५] राग केदारौं

चलि चलि मेरौ कह्यौ मान सखी, नाँतर पछितैहै करि मान ।
अब ही तौ पिय पाँय परत है, तजे मान पावै बहु सनमान ॥
बहुनायक सुखदायक सों कहि, काहू कौ निबह्यौ है गुमान ।
'रसिक प्रीतम' सौ पिय जो पैयै, तौ सहियै री कोटिक अपमान ॥

गुरु मान— [२७६] राग केदारी

प्यारी क्यों हू न मानति है ।
जद्यपि कहत बनाय बहुत तऊ, कपट बचनि करि जानति है ॥
पॉयन परे पीठि दै बैठत, भॉति भॉति हठ ठानति है ।
कबहुक भौंह चढ़ाय बिवस ह्वै, पिय के दोस बखानत है ॥
कबहुक आर्त्त बिबस ह्वै सखियन, कछू नहीं पहिचानति है ।
कबहुक सुधि आये मानवती, मुख पर अंबर तानति है ॥
जो कछु बात तिहारी कहियत, भाँति भॉति कहि छानति है ।
ता पर अपने मन उपजाई, बातें बहुविधि तानति है ॥
अपुनौ हृदौ चरन रस हरि कौ, ऐसें करि कै सानति है ।
'रसिक प्रीतम' वैसी ही बातें, फेरि फेरि जिय आनति है ॥

[२७७] राग नायकी

जैसी कहाई वैसी हौं कहि आई,
बात वाके मन न आई तौ कहा करौं माई ।
जब हौ चलाई बात मोतें खीझि धाइ कही,
उठ किन न जाइ ह्यांतें छाँड़ि झूठी चवाई ॥
बात बनाइ साधि रही री रुखाई जब,
प्रीतम मुख को मिलन लगन बात पाई ।
'रसिक प्रीतम' के हँसि दूती मन भाई,
राखी जो बात दुराई सो पिया जू बताई ॥

[२७८] राग ललित

सखी री ! मोहि सौनौ सीतल लाग्यौ ।
मिल रस सदा प्रेम आतुर ह्वै, चारि जाम पिया जाग्यौ ॥
करि मनुहारि बहोरि हों पठई, अधर सुधा रस माँग्यौ ।
'रसिक प्रीतम' पिय वो रस नायक, तेरे प्रेम रस पाग्यौ ॥

[२७६] राग केदारौ

लागत सौनौ सीरौ, रैन बिहानी मै जानी ।
नैनन नैक न आवत झपकी, तन न कछू अरसानी ।।
जे तुम कहीं अटपटी बातें, अनेक जतन करिकै बिसरानी ।
'रसिक प्रीतम' आप चलियै,
रस बस करि मोहि लीजे महारानी ।।

[२८०] राग आशावरी

करि करि बिनती हौ हारी ।
मानत नहीं मानिनी दोऊ कर पाँय गहें,
पजारति उर हाथ के छुए तें हौ विचारी ।।
बहुतै मनाई तिय आन मिलाई मै,
ये तौ खरी देखो कठिन रिस वारी ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु बहुरचौ जाति हौं,
कहौ जिय फारिनी हौ निहारी ।।

[२८१] राग हमीर

मनाइ लीजियै आपुही जाइ प्रिया कों, मेरे कहे नहीं मानै ।
बात चलावति जो हौ तिहारी, मूँद लेति दोऊ कानै ।।
क्यों हूँ कर जो हौं हूँ बुलाऊँ, बात-बात ऊतर ठानै ।
'रसिक प्रीतम' की प्यारी अटपटी, एक बात सौ बेर छानै ।।

[२८२] राग नायकी

कहिवौ हौ जोई, सो तौ सब मै कह्यौ जाइ,
उन हँसि सुनी मेरी बात ।
जौ नैक नियरै पात, बेलि सी ऐंठी जात,
बचन मधरे सुनें नाँ स्रवन मूद उठि जात ।।

बहुतै निआरी तरु कुंज केतकीन की,
सुधि आवत ही ऐसी बतरात ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु आप कूजौ कल बेनु,
सो बस ह्वै है रहै पछितात ॥

[२८३] राग नायकी

हरि हौं तो हारी, तिहारी प्रिया के पाँयनु परि-परि ।
धरि रही सिर चरनन बड़ी बार भई,
तौहू लेति उठाइ रूठी मानत नहीं क्यौं हू करि ॥
जैसै-जैसै रात जात, तैसे-तैसै सतरात,
मो सों तौ बतराति अति अभिमान धरि ।
'रसिक प्रीतम' आपुहि पाँउ धारियै,
देखें तुव बदन, जैहै सब दर्प ढरि ॥

[२८४] राग अडानौ

लालन ! मानिनी न मानै, हौं बहौत मनाई ।
जेती कही बात मन में न आनै, जानै तुम ऊँसी रिझाई ॥
जब मैं देखी वाकी रिस अति ही, बात राखि उठि आई ।
'रसिक प्रीतम' सुन आपही उठि चले, दौरि प्रिया गरै लगाई ॥

[२८५] राग भूपाली

बिनती कुँवरि किसोरी, मेरी मान-मान-मान ।
बिन चूक मोते मान की, मत ठान-ठान-ठान ॥
काहे कों बैठी स्यामा, भौंहै तान-तान-तान ।
तू ही तो मेरें जीवन-धन, प्रान-प्रान-प्रान ॥
मेरे हिया की पीर कों, तू जान-जान-जान ।
जान 'रसिक' लीजै, दीजै दान-दान-दान ॥

[२८६] राग सारंग

अरी ! तू काहै अनमनी, बोलति नाँहि बुलायें ।
अबलों हँसत खेलत ही नीकै, कहा भयौ मोहि आयें ।।
चितवत नाँहिन मो तन सूधै, बैठी भौंह चढ़ायें ।
'रसिकराइ' पिय कब के ठाड़े, बिनवत हैं परि पाँयें ।।

[२८७] राग सारग

मान री मानिनी साँच बात ।
मेरे कहे आइ है प्रीतम, तेरें री पछतात ।।
जनि तू कही सुनें काहू की, तोहि मिलन अकुलात ।
तो तजि कहुँ नाँहीं पिय की रति, तो बिन छिन न सुहात ।।
तेरौ रूप अनूप विचारत, सिगरी रैन बिहात ।
लेत उसास सुमिर पूरब सुख, विरहा उर न समात ।।
बिझुक उठत तेरे आवन भ्रम, पवन चलत चल पात ।
अतिहि निठुर तेरौ री हिरदौ, सुनत हूँ नहि सरसात ।।
अति कोमल तन मोहन कै तू, दोस गहत न अघात ।
काहे कों हठ ठानि रही अति, सुख कौ समयौ जात ।।
हारी हौं समझावत तोकों, गहि पद सौंहै खात ।
'रसिक प्रीतम' बिनु तोहि मिलें सखी, दहियत साँमल गात ।।

[२८८] राग केदारौ

हठ छाँड़ि दै री कहत तोसों, पिय आपु मनावत हैं ।
तेरे चरन कमल पर ए री, सीस नवावत हैं ।।
बार बार लै चरन रैनु, सब अंग लगावत है ।
तेरी ओर निहारि एक टक, बिरह गँमावत है ।।
हा हा करत भरत दोऊ नैनन, रति उपजावत हैं ।
'रसिक प्रीतम' की प्यारी कों, यों सखी सिखावत है ।।

[२८९] राग कल्याण

मानिनी मान जिनि एतौ करै, आपु पाँयन परे नाथ तेरै ।
दरस जाके करन जगत तरसत सदाँ,
सो तौ इकटक तेरौ बदन हेरै ॥
हौं कहत सुमुखि उठि बेगि मिलि मीत सों,
मेरौ हित बचन जिनि भूल फेरै ।
'रसिक प्रीतम' संग बिहरि रस रंग सों,
क्यों न दुःख अनंग कौ सब निबेरै ॥

[२९०] राग भूपाली कल्याण

तेरे मुख पर सोहे मान ।
परत पाँयन पीय बन्यौ हू, बनि है री भौंह कमान ॥
कबहुँ रिसात, कबहुँ अनखाति, कबहुँ रूखी सी–
इक टक निरखत को कर सकै बखान ॥
दृष्टि बचावत तिरछे चितवन,
विनय बचन सुनि, वे अजान ।
'रसिक प्रीतम' की अटपटो बतियाँ,
ताहि मनावत भयौ विहान ॥

[२९१] राग केदारौ

तू तौ समुझावति है बहु बिधि, कैसै कै मन समुझै ।
अनुभव की बातें को जानैं, जो जानैं सो अरुझै ॥
गाँठि परी गाढ़ी अनमन की, सो कैसे कै सुरझै ।
'रसिकराय' बिछुरे की पीर यहै, सो कैसै करि सुरझै ॥

मान-मोचन— [२९२] राग सारंग

तैं इतने ही में अरी हौं मोल लीनी ।
भलौ मानिहै प्रीतम जू, अरु सबहिन में कीरति दीनी ।।
हाँ कही जब ही तब ही ते, मेरी छतियाँ भई प्रेम-रस भीनी ।
'रसिक प्रीतम' ह्याँ तेरे ढिग पठई, सो मया मो पर कीनी ॥

[२९३] राग अड़ानौ

हाँ हाँ री, हौं हारी वे जीते ।
राखौ मेरौ मान सुंदरवर, अभिलाष हमारे पूरी मनचीते ।।
सिगरी निसि ढरकनि अँसुवन की, रोय-रोय होत नैन रीते ।
'रसिक प्रीतम' अब रह्यौ न परत मोपै,
बलि-बलि जाऊँ केते दिन बीते ॥

[२९४] राग नट

अहो ! मै क्यों हू क्यों हू करिकै मनाई ।
तुम्हरी पियारी अतिहि निठुर है,
चतुर कहावति क्यों हू न देत पकराई ॥
बहौत निहोरनि पाँयन परि-परि, हरै-हरै तुम ढिग लाई ।
कैसैहु कै रिझाइ लेउ, उठौ 'रसिक' पिय !
देखिये तिहारी चतुराई ।।

[२९५] राग केदारौ

अतिहि निठुर तिय मानवती, हौं क्यों हूँ क्यों हूँ करि मनाई ।
अपुने जानि मैं बहौत भाँति करि, नीको जुगत बनाई ।।
जो तुम कहीं कपट की बाते, अनेक जतन करि विसराई ।
'रसिक प्रीतम' चलि रस बस कीजै, मोहि दीजै रीझि बधाई ।।

[२९६] राग कान्हरौ

जब तें आये री प्रीतम मनावन, तब तें बातें सब भूली।
जिय तें गयौ री विरह परम दुख,
अति ही उमँगि मन रोम-रोम फूली ॥
तेरौ बड़ौ री भाग, पिय सों बढ़ो अनुराग, तातें रस-सिंधु में झूली।
'रसिक प्रीतम' प्रभु तेरे आधीन ह्वै कैं,
तोहि मनावत, को है तो समतूली ॥

[२९७] राग ईमन

ऐसी क्यों रुसाई प्यारे तुम हू नें,
जो मनुहार न मानै, कछु नहीं जानै।
तुम जो मनावत वो नहीं मानै,
पाँयन परिहौ सुनकैं पट तानै ॥
सुनत स्रवन पिया भवन गमन कीन्हे,
परसि चरन चाहै रस पानै।
'रसिक प्रीतम' पिय प्यारी उठी अंक भरि,
भूल गई तिय रोस दोस, हियैं कर रस बस दानै ॥

[२९८] राग अड़ानौ

आली ! तेरी लटकन में मन अटक्यौ, मन इत उत नैकु न भटक्यौ ॥
देखत रूप ठगी तब ते मन, अनत न गौहन हटक्यौ।
एते पर तू मान करति है, कह्यौ न मानत बिसूरत मुख लटक्यौ ॥
'रसिक प्रीतम' दूती के बचन सुनि, मान तुरत सब सटक्यौ ॥

[२९९] राग अड़ानौ

आज मेरौ लहैनौ हौ, पिय बोली मीठी बोले।
सौतिन की सिखई बातन की, गाँठ हृदै की खोले ॥
बिन जानै मैं मान कियौ हौ, वे प्रीतम मति भोले।
'रसिक प्रीतम' की हौ चेरी भई, आली री बिन मोले ॥

विरह— [३००] राग सारंग

हरि के विरह विकल ब्रजबाल ।
बिथुरे बार बसन सुधि बिसरी, कहत फिरत बन बन गोपाल ॥
कहाँ गये चित हरि लै कै हरि, यों बूझत द्रुम वेली जाल ।
उझकि परत बीचहि भुँइ में, दुहू कर रमकि गहत नंदलाल ॥
कबहुँक लीला करत फेरि सब, लीलामय है अतिहि बेहाल ।
ढूँढत फिरत चिन्ह चरनन के, पद रज लै लावत सिर भाल ॥
कबहूँ धँसत महा गहबर में, अंधकार लखि फिरत कराल ।
कबहुँक गुन गावत जमुना तट, सावधान ह्वै मिलि एक चाल ॥
कबहुँक रोदन करत दीन अति, दीजै दरसन 'रसिक' रसाल ।
अति उदार करुना रस पूरन, प्रगट भये श्रीपति ततकाल ॥

[३०१] रागनी टोडी

बिछुरत ब्रजनाथ, बाल बिकल भई तन बेहाल,
बिथुरि रहे बार, धार दृगन नीर बरसै ।
लेति है उसास, आस मिलिवे की छूटी जानि,
बँधी प्रेम-पास, बचै कैसै बिनु दरसै ॥
नीची करि रहीं नारि, मन में औरै बिचारि,
पुहुमि तल निहारि, दुखित भू पद नख परसै ।
'रसिक प्रीतम' ब्रज भामिनी, कीरति रस सुख स्वामिनी,
व्याकुल मन विरह दसा देखन कों तरसै ॥

[३०२] राग केदारौ

नाथ हौ काहै दीनीं छाँड़ि ।
कौन दोस मेरौ करुनानिधि, मन में राख्यौ गाढ़ि ॥
फेंट पकरि करि एक आपु बस, लड़ौ प्रेम की राड़ि ।
मोहि मिलौ कहूँ 'रसिक प्रीतम' प्रभु, अपनौ नेह उघाड़ि ॥

[३०३] राग सारंग

बिरहिनि कौन नींद निसि सोवै ।
सुमिर नाथ ब्रजनाथ प्रानधन, कहि उर अंतर रोव ॥
कबहुक नैन उघारि चकित ह्वै, प्रान प्रीतम मग जोवै ।
कबहुक बिह्वल बिकल दीन ह्वै, आपुनौ प्रान बिगोवै ॥
कबहु देखि लीलामय मोहन, आपु अपुनपौ खोवै ।
कबहुक फिरत सकल बृंदाबन, चरन कमल चिन्ह ठोवै ॥
'हरि' पहिरावन कारन, कबहू माल कुसुम कर पोवै ।
प्रेम नीर बिरहानल पजर्‌यौ, तुम बिन कौन समोवै ।

[३०४] राग गौरी

सोचत पिय कौ बदन निहारि ।
सूखि गई, रही ठाड़ी ज्यों, अनल लपट सुकुमारि ॥
पलक न परें, सीस नहीं डोलै, चरन चलै न बिचारि ।
कहि न सकी मन की बतियाँ कछु, रही बिरह मन मारि ॥
भई दसा ज्यों चित्र पूतरी, सकी न बसन सँभारि ।
'रसिक प्रीतम' बिछुरन तिय जिय की, दीनीं प्रीति उघारि ॥

[३०५] राग सारंग

बिनु ब्रजनाथ रह्यौ नाँ परै री ।
कौन निकाज काज या तन कौ, चिंता यों ही करै री ॥
मेरी सोंह सखी ! जिन कोऊ, कमल पाँखुरी हृदै धरै री ।
बीजन बाय करै जिन कोऊ, कोऊ चंदन मेरे तन न ढरै री ॥
जरों दिबस निस बिरह जराई, नित उठि कै ये दुख निबरै री ।
'रसिक प्रीतम' सों प्रीति पूरब की,
छिन-छिन बिलसत नहीं बिसरै री ॥

[३०६] राग सारंग

माधौ राधा बिरह बढ़्यौ ।
सुधि न रही नैक हु तन-मन की, हरि उर आन चढ़्यौ ॥
भूलीं बात सबे संगम की, मनमथ उलटि उठ्यौ ।
उर न समात उसास बिरह बस, हा-हा मंत्र पढ़्यौ ॥
बदल्यौ रूप भाव रस प्रीतम, माधव रूप मढ़्यौ ।
कबहुँक हरि कबहुक फिर राधा, अद्‌भुत भाव गढ़्यौ ॥
अब कीजै करुना करुनामय, निसदिन नाम रट्‌यौ ।
'रसिक प्रीतम' बिनु भेंटे, मोपै नाँहिन जात कढ़्यौ ॥

[३०७] राग गौरी

माधौ मधुर मुरलिका प्यारी ।
छिन हु न होत अधर रस पीवत, मुख तें इत उत न्यारी ॥
कर गहि राखी फिर फिरि चाखी, कटि पट बिच रचि धारी ।
मुरलीधर कहवाइ लोक में, जिय तें लाज निकारी ॥
सब देखत बहु आदर दीन्हों, भई निडर मन हारी ।
'रसिक प्रीतम' ऐसें हम हू करि हैं, यों बिलपति ब्रज नारी ॥

[३०८] राग सारग

बिरहिनि बैठी बात बिचारै ।
सौंपों प्रान प्रानपति ही कों, बृथा मैन तीखे सर मारै ॥
पीरी भई पीय पथ पेखत, स्वेद निचोरि सर्बस तन डारै ।
जल प्रबाह निकसत नैनन तें, सूख्यौ अंग बिरह लै जारै ॥
लेत उसास जरत तन ज्वाला, देखत दावानलहिं निहारै ।
छूटे बार सुरत नहीं कछुऐ, डोलत बन ब्रजनाथ पुकारै ॥
गिर-गिर परत बिकल अति, प्रीतम प्रगट दुहूँ कर धारै ।
देखत रूप परसि प्रीतम कौ, 'रसिक' निहाल बिरह जुर टारै ॥

[३०९] राग गौरौ

बहुरि कब देखों नंद कुमार ।
लकुटि लिएँ धावत ब्रज बीथिन, बालक अति सुकुमार ।।
बिथुरी अलक लटन लटकत सिर, राजत मुक्ता हार ।
कंठ बघनखा कर पहोंची सोहत, बाजूबंद सुचार ।।
बैनी गुही जसोदा सुंदर, सोभा देति अपार ।
'रसिक प्रीतम' की यह बानिक, कब ह्वै है मम सिंगार ।।

[३१०] राग केदारौ

कहा चित लाई हो ललन ! निठुराई ।
दीजै दरस, छाँड़ि दीनी दया, कीनी कहा भलाई ।।
मोसो कही कछु, कीनों कछू तुम, ऐसी बात बनाई ।
'रसिक प्रीतम' बूझौ अबहि रावरे, कछु मन की गति पाई ।।

[३११] रागिनी टोडी

भूलीं भूलीं वे बातें तुमकों, प्रीतम कहीं जे मोतें सरमाते।
अबतौ न कबहु करत सुधि मेरी, कहा जाने किनहू भरे कान तातें।।
तियन पैं चूक परति आई है, ये न ऐसी बूझियै मदमाते ।
'रसिक प्रीतम' एती बिनती करति हौं, विरह खुटक उर हटाते ।।

[३१२] राग पूर्वी

सुरतिया बिसारि दई मेरी, काहे ते करुनानिधि ।
हौ अति दीन अधीन तुम्हारी, निसदिन तलफत जीवौ केहि बिधि ।।
देत नहीं हौ दरस आपुनौ, इतनी कहा भई है वृधि ।
'रसिक प्रीतम' अब जीवन नाँही, दीजै अधरामृत की सिधि ।।

[३१३] राग केदारौ

मेरे साँवरे मोहि दीजै दरस ।
इतने ही ते निहाल हौंहुगी, छाँड़ौ हो अंग कौ परस ॥
पलकन पग की धूरि झारि हौं, स्रवन वचन सुनौं सरस ।
'रसिक प्रीतम' प्यारे मोहि तुम बिनु, पल-पल होत है बरस ॥

[३१४] राग बिहाग

तो पर वारी रे साँवलिया साँहीं ।
कब देखोंगी बदन चंद सौ, अरु कब भेटोंगी करि गलबाँहीं ॥
कब आवेंगे वे दिन मोकों, अब एई दिन जाँहीं ।
'रसिक प्रीतम' के संग में मिलि सब, लागि रहों उर माँहीं ॥

[३१५] राग गौरी

अहो हरि दीन्हीं मोहि बिसारि ।
बहुत द्यौस भये प्रभु मन-भावन, पठई न पतियाँ सँभारि ॥
हौं तौ भरी बहौत अपराधन, तुम करुना ब्रत धारि ।
गही हाथ अपने मानत मनि, दीजत कैसैं डारि ॥
राखि लेहु ढिग चरन कमल के, बिसन समूह निवारि ।
करहु जु दृष्टि धृष्ट दासी पर, चित राखौ रिस टारि ॥
सरन जाहि अब रहों कौन पै, तुम तजि अबला नारि ।
'रसिक प्रीतम' बिछुरें मोहि बिरहा, छिनु-छिनु डारत मारि ॥

[३१६] राग केदारौ

ऐसी निठुराई मन आई कब तें, पाती हू न पठवत तब तें ।
कहा करत पिय सकुच कौन की, ऐसे भये कौन ढब तें ॥
हौं तौ तरसत संदेस सुनिवे कौं, ब्रज तजि चले जब तें ।
'रसिक प्रीतम' न रह्यौ कछु मोसें, तुम रे बिनु गई सब ते ॥

[३१७] राग गौरी

लाल ! यह बिछुरन सह्यौ न जाइ ।
जान परयो रहत ढिग मोकों, अब मन अधिक दुखाइ ॥
धीरज रहै नहीं नैनन कों, फिरि-फिरि चित पछिताइ ।
मिलिबौ कठिन मोहि सूझत है, डारत विरह जराइ ॥
भूले क्यों वे बात रावरी, चलत कहीं मुसिकाइ ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु कीजै करुना, जो भेटों अंग लगाइ ॥

[३१८] राग सारग

अरी मोहि कठिन परी दुहूँ भाँति ।
लाज तजों तौ प्रीतम लाजै, न तजै पीर बढ़ाति ॥
लागे बान कठिन उर मेरे, काढै हू न कढ़ाति ।
छिन छिन हाइ हाइ कटि क्यौं हूँ, काल गंमावति जाति ॥
मन की कहि न सकत काहू सों, मन में तौ न समाति ।
'रसिक प्रीतम' जब मिल कै बिछुरे, कहा कुराति सुराति ॥

[३१९] राग सारंग

है कोऊ लै उनपै मोहि डारै ।
बिरह जरावत निस दिन मोकों, या आरति तें तारै ॥
सुधा मधुर बचनामृत सींचत, सींच सींच हिय टारै ।
मेरे दोस भुलाइ लाल गुन, कहि समुझाइ सँभारै ॥
जीवन दान देइ मो दुरबल, कृपा कोर कछु पारै ।
'रसिक प्रीतम' के आगै, मेरी इती पुकार पुकारै ॥

[३२०] राग केदारौ

नाँ जानों किन्ह कान भरे री, सखि प्रीतम ! अनत ढरेरी ।
रस के समय कहे जो मो सों, तेहू बोल बिसरे री ॥
कैसै कै सचु पावे प्रान ये, बिरहा अनल जरे री ।
'रसिक प्रीतम' अब मिलबौ कैसै, औरन के पाले जु परे री ॥

[३२१] राग सारंग

कैसै कै बिसरति हैं, आली वे बातें ।
मोहन ब्रज चलत कहीं, मोतें मुसकातें ॥
सैनन हौ बोलि लई, गोधन संग जातें ।
लोक-लाज आढ़ भई, रहि गई पछितातें ॥
रहे गढ़ि हृदै में उठे, बैनु सुर जहाँ तें ।
ताते अकुलाये प्रान, जीयवौ कहाँ तें ॥
मोहन मन मोहि लियौ, अधर रस सुधा तें ।
'रसिक प्रीतम' बिछुरन दुख, कहों कौन नातें ॥

[३२२] राग सारंग

ए हो बिरह कहाँ लों दिखै हौ ।
यों ही दुख पावत प्रानेसुर, सिगरौ जनम गमै हौ ॥
कब वह मदन मोहनी मूरति, इन प्यासे दृग बहुरि दिखैहौ ।
कब करि मंद हास गहि मोकों, दृग आँकों भरि लैहौ ॥
कब वृंदाबन बिहरत मेरे, दै गरबाँह ऊँचे सुर गैहौ ।
'रसिक प्रीतम' यह मेरे मन की, लागी भाँवरि कबहि पुरैहौ ॥

[३२३] राग अडानौ

लालन ! आउ रे आउ रे, मोहि अब की बेर जिवाउ रे ।
तू अपुनौ दरस दिखाउ रे, मोहि मुरली नाद सुनाउ रे ॥
मेरे स्रवनन सुख उपजाउ रे, तू मो मन रुचि उपजाउ रे ।
हिय विरहा अगिन बुझाउ रे, मिलि रति रस रंग मचाउ रे ॥
मोहि अपुने संग लगाउ रे, हौं तौ भूली पंथ बनाउ रे ।
हौ हारी ढूँढ़ि मन लाउ रे, मेरे हृदै विरह कौ घाउ रे ॥
मोहि दासी टेरि बुलाउ रे, मिलि आपु अंग परसाउ रे ।
पिय है मिलिवे कौ दाउ रे, अब 'रसिक प्रीतम' सुख पाउ रे ॥

[३२४] राग विहाग

नैक बोलौ नाथ अमृत रस बैन ।
और न सुहाइ घरी, करत हौ हाइ नित,
चित लागत कहूँ नहीं चैन ॥
दीन जन मन मनोरथ के पूरन करन,
और तिहुँ लोक में देखियत है न ।
जो मिलत आय, ते लेत रस बस भाय,
कहौ कैसै हरि मन रहै ऐन ॥
अरथ सब रावरौ है तिहारे हाथ नाथ,
कहौ और समरथ है को दैन ।
'रसिक' पिय जनि कठिन होउ जन दीन पर,
परसि कै तजत यह लखन तौ घटै न ॥

[३२५] राग गौरी

जसुमति-सुत ! मोहि दीजे दरसन ।
तन मन प्रान तपत हैं निसदिन, छिन इक होत बराबर बरसन ॥
सियरौ हो तौ पहिलै हिरदौ, अब तौ अखियाँ लागीं तरसन ।
'रसिक प्रीतम' बिनती चित धरियै,
समौ सरस कहा लागे अरसन ॥

[३२६] राग सारंग

जानें कौन बिरह की बेदन ।
देखे बिनु मुख बिधु मोहन कौ, क्यौं हु न मिटत महा मन खेदन ॥
टूटत आसा हरि मिलिवे की, काहू भाँति रह्यौ कछु भेद न ।
'रसिक प्रीतम' छिन हू जनि बिसरौ,
और उपाव नहीं दुख छेदन ॥

[३२७] राग सारग

देखि सखी खेलत ब्रजनाथ ।
कौन कहत हरि छाँड़ि गये ब्रज, आवत हैं गोधन के साथ ।।
बैन बजावत गति उपजावत, कमल फिरावत बाँयें हाथ ।
यौ ही भाँवरि करत निरंतर, ब्रजजन 'रसिक' रटत गुन गाथ ।।

[३२८] राग केदारौ

लाल हौं तुम सों बहौत लरी ।
सपुनें में मोहि छाँड़ि गये क्यों, नैक न कान करी ।।
सिथिल करे मै पेच पाग के, अलकावलि बिथुरी ।
डस्यौ अधर, छत किये कपोलन, चित नहीं सकुच धरी ।।
बिबिध भाँति स्रम करत समर में, अधिक उसास भरी ।
करत जुद्ध भयौ प्रगट बीर रस, सुधि बुधि सब बिसरी ।।
कहौं कहाँ लों लिपटी अब लौं, बहुतै चूक परी ।
जाग परी मन में पछितानी, बिरहा अगिन जरी ।।
बिनती करत परत पाँयनु में, मन में निपट डरी ।
करुनासिधु 'रसिक प्रीतम', मेरौ हरौ अपराध हरी ।।

[३२९] राग सारग

बिरह व्यापौ मेरे सब अंग ।
सीतल बृथा उपाव करत क्यौं, काट्यौ मैन भुजंग ।।
इन उपाय कहौ कैसै उतरै, वह तौ सखी अनंग ।
सदा जियावति ही सो तौ अब, रही सुधा हरि संग ।।
मुरली मंत्र सुनायौ कानन, बेदन स्यामा अंग ।
अपनी जान जाहि हे सजनी, सुखी होइ अरधंग ।।
हौं तौ परी चेतना तजि कै, सब विधि भई अपंग ।
रहें प्रान तौ हरि मुख देखों, 'रसिकन' होत उछंग ।।

[३३०] राग सोरठा

सखी री ! तू गुप चुप ह्वै क्यों रही ।
अँसुवन पोंछि बदन कुम्हिलानौ, दुबरी कैसै भई ।।
स्वामी हमारे अंतरजामी, मेरी सुधि नाँ लई ।
या जीवन तें मरिबौ भलौ री, बिरथा पीर सही ।।
मिल बिछुरन की पीर कठिन है, सैय्या बैरि भई ।
'रसिक प्रीतम' पिय आवन कहि गये, तारे गिनत रही ।।

[३३१] राग सारग

हा हा हरि धरि रही आस ।
देखोंगी मुख कमल मनोहर, मधुकर बेनु और मंद हास ।।
बिरह बढ़यौ उर रह्यौ न जाई, छाई आरति लेत उसास ।
अवधि गनत सुधि सबै गँमाई, मन कौ मिट्यौ बिवेक बिसवास ।।
'रसिक प्रीतम' कौ टरत न चित तें, टार्यौ सखी सुबेस विलास ।

[३३२] राग सारंग

ता दिन तें हौं बिरह जरी ।
जा दिन ते मो पर मनमोहन, तिरछी दृष्टि करी ।।
हिएँ पीर मनमथ की बाढ़ी, लोक लाज सब रही ढरी ।
घर न सुहाय अटक्यौ मन माँहीं, प्रेम ठगोरी आनि परी ।।
जुग सम बीतत बिन प्रीतम मोहि, मन यह निस्चै बात अरी ।
'रसिक प्रीतम' कहि बेगि आइ हैं, अब यह जीवन पहर घरी ।।

[३३३] राग केदारौ

प्यारे दरस ही की खेंचि, काहै न लेहि प्रान ऐंच ।
अपुनौ तन मन धन जोबन, सबै रही हौं बेच ।।
जैसै लगि हारिल की लकरी, सूआ रहत दै चेंच ।
'रसिक प्रीतम' मन ऐसै लाग्यौ, अब किन छुटै अनेच ।।

[३३४] राग अडानौ

रहे प्रान तेरे लिएँ प्राननाथ ! हार्‌यौ री दुख दै विरहा ।
अब जो न दैहौ दरसन अपुनौ, ह्वै है कहा जानै कहा ।।
चंद दहत देह चंदन विष सौ, माथे बैरी काम महा ।
'रसिक प्रीतम' अब कहों कहाँ लों, भयौ दुख दुसह हहा ।।

[३३५] राग सारग

मै मन हरि जू के हाथ दयौ ।
ताही के संग सरबस अरप्यौ, विरहा माँगि लयौ ॥
कहा होत अकुलाये सजनी, नित कौ सोच भयौ ।
कैसैं जाय निकारौ जतनन, उर में पैठि गयौ ।।
सूझत नाँहि उपाय मोहि अब, नैनन आयि छयौ ।
जारैं नहीं जिबावै नाँहिन, यौं जीवन लजयौ ॥
पीरी भई सखी री या दुख, तपत सरीर तयौ ।
धीर न लाज विवेक, सकल सुख सूनौ ज्ञान ठयौ ॥
अब हौ हारी हौ सहि-सहि दुख, छिन-छिन होत नयौ ।
'रसिक सिरोमनि' हौं अपुने कर, दुख कौ बीज बयौ ॥

[३३६] राग सारग

विरह दुख कहत न आवै पार ।
जीवन मरन कहूँ सुख नाँही, क्यों रहियै संसार ।।
सुरति बिसारि दई दामोदर, बहुत लगाई बार ।
जानि अकेली दाव पाय, सर मारन लाग्यौ मार ।।
छिन-छिन घटत तेज बल तन कौ, भावत नाँहि आगार ।
वन न सुहाइ नैक मोकों, विन देखै ब्रज आधार ।।
मौन धरें कबलों अबला बनि, रहें सहें दुख भार ।
'रसिक सिरोमनि' पति तुमही सुख देहु न देहु उदार ।।

[३३७] राग श्री

अब कैसौ हरि कौ ऐवौ री।
अटके जाय अनत नँदनंदन, जनम वृथा ऐसौ जीवौ री॥
दोस कौन सौ धारचौ उर में, विरह उसास नित लैवौ री।
कहा जान हरि करिहैं करुना, धरि किन रहौ मौन ए बौरी॥
जानत हौं निस दिन ऐसै ही, विरह महा दुख यहि सहिवौ री।
'रसिक' सदा मन बसौ हमारे, आनँद गोपीजन कहिवौ री॥

[३३८] राग सारंग

वे हरिनी हरिनी न रहाईं।
जिन तन कृपा कटाच्छ चितै तुम, अपुने ढिग बैठाईं॥
जे गुन सिधु जानि हरि मूरति, कृष्ण सार तजि आईं।
जिन अपुने नैनन सों गोपिन, हरि की सुरति दिवाईं॥
करि करुना हरि गोपिन की जो, घर की आस छुड़ाईं।
मनि माला लै गनें गैयन कों, सो छबि अंतर लाईं॥
जिनकी दृष्टि वृष्टि अमृत की, देखत नैन सिराईं।
मोहि अंस भुज धरि जिनकौ हरि, लीला गूढ़ दिखाईं॥
जहाँ-जहाँ हरि तहाँ-तहाँ ये, संग चलत उठि धाईं।
बेनु-नाद सुनि बंचित चित जे, चली बिकल की नाईं॥
प्रेम बिबस ह्वै हरि दरसन कों, तन सुधि जिन्ह बिसराईं।
'रसिक प्रीतम' करुना तें तिनहू, गोपिन की गति पाईं॥

[३३९] राग केदारौ

प्रानन हूँ तें प्यारे, छिनहु जनि होहु न्यारे।
बचन सुनन कों स्रवन तरसत हैं, देखन कों दृग तारे॥
भेटन कों भुज जुग, पीवन कों अधर सुधा रसना रे।
'रसिक प्रीतम' तुम बिरह बावरे, ब्रज-जन किये बिचारे॥

[३४०] राग सारग

बिरह बस सिगरी सुरति गई ।
आपुन पै जो जानत होंहि हरि, सब गति उहै भई ।।
स्त्रवन जुगल ताटंक, मकर कुंडल की झलक नई ।
आभूषन देखत सब हरि के, कंचुकी कन छुकई ।।
नील निचोल लखति पीतांबर, मुरली जलज लई ।
सारी सरस काछनी जानी, सोभा नूपुर ई ।।
नृत्यत धरि भुज कंठ सखन के, लीला रास भई ।
इहि विधि कहौ कहाँ लगि जीहै, विरहा अगिन छई ।।
'रसिक सिरोमनि' तुम बिनु ऐसै, सिगरी निसि बितई ।।

[३४१] रागिनी टोडी

कासों कहों हिय कौ दु:ख सखी री, दुखी सदा बिनु देखें हरि के ।
नैन तपत, तन मैन दहत, कछु लैंन प्रान सर साधि समरि के ।।
घर न सुहाय, बन जायौ न जाय,
दुख पावत जिय निपट ही उरि के ।
'रसिक प्रीतम' तुम हौ कृपाल, कहौ सो उपाय,
जो आवे कछु मोपै कर के ।।

[३४२] राग सारग

कहियत फूल अनंग के बान ।
लगत कठिन ह्वै, सरस ठौर लखि, मरम बचाउ करत नहिं आन ।।
उर धँसि रहत, निकारै न निकसत,
हरत जुबति जन के मन मान ।
एतौ बल है, कहा कुसुम कौ, जानत मुरली नाद निदान ।।
अब न उपाउ, कछू मोहि सूझै, मन में रह्यौ कछू न सयान ।
'रसिक प्रीतम' जो आइ मिले अब, काढ़ि देंय रस रूप निधान ।।

[३४३] राग सारंग

ढूंढ़त बन-बन फिरत अकेली ।
हरि गयौ सर्वस हर किहि मारग, बूझत यों द्रुम बेली ॥
अति अकुलात सुहात नहीं कछु, कहा ठगोरी मेली ।
'रसिक प्रीतम' के बिरह विकल तन, भूली संग सहेली ॥

[३४४] राग आसावरी

मदनगोपाल बिना, बन-बन बावरी डोलों ।
बूझत फिरों बिपिन द्रुम बेली, अनबोलेन सों बोलों ॥
ऐसौ कोऊ न मिलौ मोकों सखी, जा आगै मन खोलों ।
'रसिक प्रीतम' मन मिली न सहचरी, कहि जीवन अब कोलों ॥

[३४५] राग सारंग

सुनौ हों ब्रजपति बहौत चुक्यौ ।
काहे कों संदेस दियौ रस, अब क्यों रहत रुक्यौ ॥
उदयौ विरह ताप हिरदै, सुनि आवत मोह झुक्यौ ।
बरनोंगी गुन जनम-जनम के, रहे कहाँ जु दुबक्यौ ॥
जिनकौ हुतौ डहकि हमकों, फिर उतही जाइ धुक्यौ ।
बिरह रूप प्रिय 'रसिक' हमारौ, हिरदै आय रुक्यौ ॥

[३४६] राग देव गंधार

क्यों बिसरै वह गाय चरावनि ।
बाम कपोल बाम भुज कर पर, दच्छिन भोंह उचावनि ॥
कोमल कर अंगुली गहि मुरली, अधर सुधा बरसावनि ।
चढ़ि बिमान जे सुनत देव तिय, तिनन्हुँ मोह उपजावनि ॥
हारहास उर थिर चपला सम, अदभुत रूप सिलावनि ।
दंत धरें तृन रहत चित्र लौं, गैयन सुधि बिसरावनि ॥

मोर मुकुट स्रवनन पल्लव कटि, मल्ल स्वरूप बनावनि ।
चरन रेनु वाँछित कंपत भुज, सरित जंगमन थँभावनि ॥
आदि पुरुष त्यौं अचल भूति है, संग सखा गुन गावनि ।
वन बन फिरत कबहु मुरली कर, गिरि चढ़ि गाय बुलावनि ॥
लता बिटप मन में प्रसन्न ह्वै, फल भरि भूमि नबावनि ।
तत छिन हरित होत प्रति अवयव, मधु धारा उपटावनि ॥
सुंदर रूप देखि बनमाला, मत्त मधुप सुर गावनि ।
आदर देत सरोवर-सागर, हंस निकट बैठावति ॥
बल सँग स्रवन पुहुप सोभा गिरि, सिखर नाद पुरवावनि ।
विविध भाँति बन गमन बिचच्छन, नूतन तान बजावनि ॥
सुनत नाद ब्रह्मादिक सुर गन, अधिक चित्त मोहावनि ।
चलत ललित गति हरत ताप ब्रज, भूमि सोक बिनसावनि ॥
ब्रज जुबती मन मैन उदै करि, थावरता ठहरावनि ।
दिव्य गंध तुलसी माला उर, मनि धरि गाय गिनावनि ॥
बेनु नाद बंचित करि सब ब्रज, हरिनिन मोह छुड़ावनि ।
कुंद दाम सिंगार सकल अंग, जमुना जल उछरावनि ॥
बेनु बजावत ब्रज सुख दैवे, गौअन लै ब्रज आवनि ।
मुदित सकल गंधर्व देव गन, सेवा उचित करावनि ॥
गावत गोप बिसद कीरति संग, लगी फिरत बर भामिनि ।
घूमत भ्रू दृग देत मान कछु, स्रुति कुंडल झलकावनि ॥
बादर सहस सुचित सूचत, बिधु ज्यों अंग सिरावन ।
गुन गावत ह्वै प्रगट रूप सों, द्यौस वियोग बुझावनि ॥
चार जाम हरि के संग क्रीड़त, लीला माँहि समावनि ।
दीजै दास 'रसिक' कों यह फल, ब्रज जन पद रज धावनि ॥

[३४७] राग सोरठी बिलावल

भले नाथ ठगी, मोकों, को जानें सोई लगी होवै ।
जाकों प्रेम आद्र है कै रोकू । अब निरदै भए बनें न तोकू ।।
ढाल– निरदै भए बने न तोकू बिनती सुनकै लीजियै ।
धाइ मोकों कंठ लावौ, अधर सुधा-रस पीजियै ॥
तुमकों तौ तन-मन-प्रान दीने, बिन देखे कैसै जीजियै ।
हाइ-हाइ कर कंठ लगावे, वेग दरसन दीजियै ।।
प्रीतम जब सुध आवत । तब तें प्रान बहुत दुख पावत ।।
विविध भाँति समझावत । नैनन जल - धारा बरषावत ।।
ढाल– बरषात नैना धार-जल, अब पलक बिथुरे किम बनें ।
विविध भाँति दिखाइ लीला, काहै मेरौ मन हनें ।।
कोऊ निंदौ कोऊ बिंदौ, चित्त चरनन में अरै ।
निकस नांहि निकास तें, अब मीन जल बिन किम करै ॥
लगी लगन नहीं छूटै । परमानंद सुख लूटा लूटै ॥
प्रेम सुधा-रस क्यों नहीं खूटै । तातें जगत सूं नातौ टूटै ॥
ढाल– टूटै जगत से नातौ ताकौ, जाके श्री गिरधर प्रान हैं ।
सो कहा जाने बात तिहारी, जो नर मूढ़ अज्ञान हैं ॥
सिव सनकादिक और ब्रह्मादिक नांहि जानें यह कान कों ।
जाकों कृपा कर तुमही दिखावौ, सो भयौ फिरमान कों ॥
पिय कीनौ मोपै टौना । भावत नहीं नगर के भौना ।।
श्री ब्रजरानी जी के छौना । सब गुन भर्यौ है स्याम सलौना ॥
ढाल–भर्यौ स्याम सलौना सब गुन, कहो कहा गावे बीनती ।
फिर-फिर आवै तेरी सुधि पिय कंठ लगाई जु लिती ।।
रोम-रोम प्रानन में रहे, तुम ही कहूँ न रही रिती ।
'रसिक प्रीतम' कृपा-निधि तुम, पाइ सब जग सों जिती।।

[३४८] राग ललित

बोलै री आली ! कुहुक कुहुक कोयलिया ।
मैं बिरहिन कहा करूँ पिया बिन, हूक उठत मेरे जिया ॥
तैसोए मंद हेमंत महा रितु, काँपत थर-थर हिया ।
'रसिक प्रीतम' बिन कल न परत है, सुनि आये घर पिया ॥

[३४९] राग केदारौ

उघर गये बदरा चंद छबि दई दिखाई ।
मानों बिरहिनि बिरह अगिन उठि, मूरति गगन बनाई ॥
मानों जुबतिन हृदय कमल मूँदन प्रगटायौ, हिम कुंडल की नाँई ।
देत मदन 'रसिकन' सुख यामें, ताकी देखियत भसम समाई ॥

[३५०] राग मारू

आयौ री मेह देह मेरी काँपत, पिय बिनु बिपन अकेली ।
मोर पुकारत मारुत मारत, बन उपवन द्रुम बेली ॥
दामिनी दमकत, छिनु-छिनु झिझकावत, बिरह बढ़ावत,
तिय पिय सँग मनों खेली ।
'रसिक' प्यारौ जो मिलै री आप, ताप घटै,
नाँ तौ प्रान रहेंगे नहीं, बिरह हृदै अगिन मेली ॥

[३५१] राग नट

पठावत नाँहिन प्रीतम पतियाँ ।
कौन मेरौ अपराध धरौ मन,
ऐसे निठुर भये, भूलि गये वे बतियाँ ॥
जो सुमिरों तौ बढ़ै दुख दूनौ,
बिन सुमिरे छिनहु गृह न भतियाँ ।

रह्यौ न परै छिनहु विनु देखें,
बिरह दहत अति छतियाँ ॥
परी पुकारौं हाइ-हाइ करि,
धीरज परिहरि दिन रतियाँ ।
तुमहिं न बूझियै ऐसो 'रसिक' पिय,
मानत नाँहि जु बिनतियाँ ॥

[३५२] राग सारंग

काहे तुम छाँड़ी हम वृंदावन बासी हो ।
बार-बार आवत मन, भये क्यों उदासी हो ।।
पठवत हौ पतियाँ नहीं, गति मति सब नासी हो ।
क्यों हू मन समुझत नहीं, आवत कछु हाँसी हो ॥
छाँड़े हू छूटत नहीं, परी प्रेम - फाँसी हो ।
तुमकों तौ लाज नहीं, जुबती जन त्रासी हो ।।
बिनती अब बेगि सुनौ, बिमल जस बिलासी हो ।
'रसिक प्रीतम' सदाँ बसौ, गोकुल सुखरासी हो ॥

[३५३] राग सारंग

हौं तौ लिखि-लिखि हारी पतियाँ, ऊतर न एकौ पायौ ।
कहा भयौ बीचहि किनहू उन्ह, कागद लै जु दुरायौ ।।
किधों जानि रुख सुमुखि रावरौ, औरै बाँचि सुनायौ ।
किधों दियौ कहूँ डारि देखिकें, दोस हृदै सुधि आयौ ॥
किधों देखि विनती आरति की, जानिकै विफल बनायौ ।
किधों दिखायौ ही है नाँहीं, बातन ही में लुभ्यायौ ।।
किधों कहूँ धरि भूल्यौ प्यारौ, बहुरि न मन में आयौ ।
'रसिक प्रीतम' बिरहानल उर में, दूनौं बढ़ि न समायौ ।।

[३५४] राग पूर्वी

बमना ! तू कहि रे महूरत, कब मेरौ पिय घर आवै ।
निसदिन बैठी मारग देखों, ऐसी कोऊ बात सुनावै ॥
तोहि देहुँगी इच्छा भोजन, जो तेरे जिय भावै ।
'रसिक प्रीतम' के विरह व्याकुल हों, मोकों क्योंहूँ जिबावै ॥

गोपी-उद्धव संवाद— [३५५] राग सारंग

ऊधौ ! सूधौ बचन कहौ ।
हरि ह्यां के है, बोलौ नातर छांने क्यों न रहौ ॥
जो ह्यां है तौ का की पतियाँ, पढ़ि पढ़ि मन न दहौ ।
इन बातन उपजत दुख दूनौ, सूनौ ब्रज न चहौ ॥
हम जानति है जहाँ रहत हरि, तुम तौ मौन गहौ ।
देत दिखाई बिच बिच सब कों, निहचै करिजु लहौ ॥
तुम उपदेस करत हौ का कों, मरम न गह्यौ यहौ ।
'रसिक राइ' सिखवत ब्रज नारी, ब्रजपति मीत अहौ ॥

[३५६] राग सारंग

अहो सुधि कबहु हमरी करत ।
अपनी दिसि अवलोकि नंद सुत, कछु करुना हमरी मन धरत ॥
दीनीं सार विसार स्याम अब, कहौ जु काहे तें दुख हरत ।
बिनु देखे छिनु मूरति माधुरी, रह्यौ न हमपै पल इक परत ॥
परम चतुर जानत हौ चित की, प्रकृति परी कैसै टारी टरत ।
'रसिक प्रीतम' बिनु भेंटै, छतियाँ बिरह जरी कहौ कैसै ठरत ॥

[३५७] राग गौरी

सुरति सुख दीनौ, बिरह जु दैन कों ।
जानी हम रचना उन्ह कीनी, तन-मन-धन हरि लैन कों ॥
पठवत दूत अधिक दुख दैवे, बरजि मधुर मुख बैन कों ।
'रसिक प्रीतम' तुम करी कहा यह, ब्रज प्रानन नहीं चैन कों ॥

[३५८] राग सारंग

ऊधौ ! छाँड़ियै हरि बात ।
हमहिं लीला दै सिधारै, आपु मथुरा जात ॥
तजत बे सुध भए यह मन, बिरह दुख न समात ।
चलत क्यों नहीं रोकि राखे गोबिंद, अति पछितात ॥
हरि की लीला ठौर देखत, जुगल दृग न सुखात ।
बिरह सुधि नई तुम दई करि, तातें बहौत दुखात ॥
द्रुमलता गिरि फिरत हारी, बूझि बूझि सँकात ।
'रसिक प्रीतम' दूरि ही भले, मिलन सुख अकुलात ॥

[३५९] राग कान्हरौ

इतनी कहियो ऊधौ ! हरि सों हमारी बिनती,
तुम हमें छाँड़ि रहि हौ कबलों मथुरा पुरी ।
हम तौ निसदिन मोहन जपत नाम तिहारोई,
अंग अंग सिथिल, हाथ हू की ढ़ीली चुरी ॥
कैसै करि जीवें हम अब, फाटत हृदय प्रीति,
कैसै हू न बचत प्रान बिरहा की छुरी ।
'रसिक प्रीतम' हमकों और कछु नाँहीं गति,
तुम तें न ब्रज जन की बात कछु दुरी ॥

[३६०] राग सारंग

इतनौ कहियो हरि सों जाइ ।
कहाँ लौं तुम दूरि रहि हौ, बिरह डारत जराइ ॥
खान पान हु छुट्यौ तन में, ताप अब न समाइ ।
बाढ़ बाढ़त नैन सरिता, जीय मन अकुलाइ ॥

तुम न बूझी बात ब्रज की, बिरह देत डुबाइ ।
दीनता आधीनताई, कहाँ लगि रहि पाइ ॥
भई ऐसी गति जो हमरी, कहत है समुझाइ ।
'रसिक' रहि हैं तुम बिना हम, कहो कहाँ लों हाइ ॥

[३६१] राग सारंग

मधुकर ! करिवे में कहा राखी ।
लोक बेद की कान तजी हम, लाज सकल कुल नाखी ॥
भाँति भाँति हम भाव उघारे, बहुत दीनता भाखी ।
यों लगि रहीं स्याम के चरनन, ज्यों गुर लागी माखी ॥
बहुत जतन करि एक बेर हम, अधर सुधा कछु चाखी ।
अब उहँ ताप सकल अंग व्यापौ, चिंता चित्त भई साखी ॥
यह कछु नहीं प्रीति गोंविद की, अवलोकत मन साखी ।
'रसिक' वियोग बयौ हम ही कों, भये कुबरी कर पाखी ॥

[३६२] राग गौरी

स्याम सों लगी लगन मन की ।
सपने ही संगम नित जाकौं, जागत गति छिन की ॥
बोलत बोल्यौ जाय न उनसों, परस न परसन की ।
देखत बनै नहीं उह श्री मुख, गमन न कुंजन की ॥
बैठे मनों निकट ही अबहू, यह गति ब्रज जनकी ।
मधुकर कहा चलाई तुम यह, बात कठिन उनकी ॥
हम तौ और कछू नहीं जानत, ये वृति भई मन की ।
करत अचंभो क्यों मन मानै, 'रसिकराइ' जन की ॥

[३६३] राग गौरी

मधुप ! मधुपुरी खरी हरि भाई ।
बड़रे मंदिर भोग राग जहाँ, नगर नारि चतुराई ॥
राज करत काकी सुधि आवै, ब्रज की बात भुलाई ।
ह्याँ तौ रहे सदाँ लरिकाई, उहाँ बड़ाई आई ॥
ह्याँ वृंदावन गिरि जमुना तट, खेलत गाय चराई ।
अब तौ व्याह करन कों पुर में, जहाँ तहाँ करी लराई ॥
बहु जुबतिन कर गहे कृपानिधि, नई प्रीति उपजाई ।
सहज प्रीति ब्रजनारिन की मन, 'रसिक' कछू न बसाई ॥

[३६४] राग सारंग

मधुकर ! करहु और कछु बात ।
मोहन भये मधुपुरी-प्रीतम, तातें हमें न सुहात ॥
सुरति भई हरि के बिछुरन की, मन मिलिवे अकुलात ।
नातरु देखि देखि लीला भुवि, आनंद उर न समात ॥
वे आवत न मधुपुरी तजि कै, ब्रज तजि हमहुँ न जात ।
कहौ कौन बिधि बनि है मिलिवौ, पतियनु मन न पत्यात ॥
उनहीं की सी कहत मधुप तुम, सुनि सुनि चित अनखात ।
चुप करि रहौ कहौ किन ब्रज की, ज्वाल बिरह न बुझात ॥
जैसे के संगी हो षटपद, तैसे ही प्रगट लखात ।
अचरज कहा सबै गुन हरि के, बसत रावरे गात ॥
भूल्यौ विरह छिनक में, लागों कहन नैन मुसकात ।
'रसिक सिरोमनि' ब्रज के बासी, ब्रज तजि कतहुँ न जात ॥

२. उत्सव-त्यौहार

साँझी-लीला— [३६५] राग गौरी

श्री बृषभानु लड़ैती गाइयै, कीरति-कुल-मंडन बाल हो।
सौने की सी बेलि हो, प्यारी चंपे की सी माल हो ॥
हंस गमनी मृगलोचनी, सोभित सहज सिंगार।
चमकत चंचल चोकने, प्यारी ये सिटकारे बार ॥
घूँघर वारे बारन ऊपर, सोभित सुंदर साल।
चंद के फंद परे अहिनंदन, उरझे कंचन जाल ॥
अतलस कौ लहँगा कटि गढ़ौ, दरयाई की अँगिया पीत।
उरज सुभट कंचन कबच सजि, आये रति रन जीत ॥
कृस कटि केहरि देख दुरे हरि, जेहर तेहर पाँय।
गजगमनी कमनी अवनी, रति रमनी लेति बलाय ॥
कर चूरी ललकै झलकै, पलकैं न लगे छबि देख।
अँगुरिन मुंदरी, पोंहचिन गजरा, बाजूबंद बिसेख ॥
चंपकली चौकी चमकै, दमकै दुलरी पिय पोति।
चित कों लेत चुराय चाहि कै, बदन चंद की जोति ॥
अरुन अधर दमकत दसनावलि, स्याम चपलता सार।
कमल कोस में बैठी पंगति, मानों भृंग कुमार ॥
बेसर कौ मोती लटकै, मटकै खटकै पिय प्रान।
स्रवन बनी रुचि मनी कनक की, तनक तरकुली कान ॥
पिय-तृष मोचन रति-रस-रोचन, चंचल लोचन चार।
कुँवरि किसोर चकोर चहुँटुवा, पढ़त चंद चटसार ॥
अलिकुल-गंजन, रतिरस रंजन, नैनन अंजन दीन।
क्रोड़त सुधा सरोवर महियाँ, मनु मनसिज के मीन ॥

समर सहायक नव रस नायक, सायक धायक नैन ।
कीर कुरंग सुरंग कमल कानन सों ठानत ठैन ।।
कारी झपकारी भारी बरुनी, बरनें सो कवि कौन ।
भौहें सुठि सोहें मोहें, मानों हाव-भाव के भौन ।।
सोभित वर बेंदुक कुसुमन की, बेंदी दीनी भाल ।
इंदु बधू मानों नवल चंद कों आई मिलि पिय बाल ।।
सीसफूल सोहै मोहै, बनी तनक कनक की आड़ ।
चिबुक चारु मुसिकाय हँसत, जब परत कपोलन गाड़ ।।
यह बिधि छबि अगाधा साधा, राधा जू सखियन माँझ ।
बिटिया बहुत जो गोपन की सँग, खेलत साँझी साँझ ॥
गोधूलक बिरियाँ डलिया फूलन की लै चली हाथ ।
बीनत फूलन यमुना कूलन, स्यामा जू के साथ ॥
एक लिए ओली चोली पर, चाप चिबुक तर चीर ।
फूलन तोरत तनहिं मरोरत, जहाँ भ्रमरन की भीर ।।
एकन लै लावन्य ललित, पटकी अटकी कटि चीन ।
रमक झमक पल्लव नवाय, चढ़ बीनत फूल प्रबीन ।।
कुंदी कुंद कनेरन कोमल, निरबारत बाला बेलि ।
ललित लवंग लता बनिता पर, रहे झूमिका झेलि ॥
जाई जुही केतकी निवारी, चमेली अरु रायबेलि ।
फूलन की कर गेंदुक बाला, बन में खेलत खेल ।।
मौरसिरी के फूलन की, नकफुली बनावत एक ।
स्यामा अभिरामा सुख धामा, खेलत खेल अनेक ।।
तिहि छिन कुंज बिहारी जू, दुर देखत कुंजन ओट ।
रहे हैं तृषित कैसे जु चितेरे, लगी दृगन की चोट ।।
कियौ सखी कौ रूप लाल नें, भर गुलाब दल गोद ।
त्रिया रूप धर दरसन दीनौ, मन में मानत मोद ॥

निरख निरख वृषभानुनंदनी, बोली बचन रसाल ।
सब सिंगार सोहै मोहै तू, को है री नव बाल ॥
तू क्यों फिरत अकेली हेली, यह बन यमुना कूल ।
नंदगाँम घर साँभी कों हम, बीनन आईं फूल ॥
उत्कंठित वृषभाननंदिनी, कंठ भुजा उर मेल ।
आज अबार भई सांभी कों, तू संग हमारे खेल ॥
सखी लई सब बोल गो रंभन धुनि सुन कान ।
बड़ी वार घर जैहै तौ, खीजै बाबा वृषभान ॥
चंदा चंद्रभगा चंद्राबलि, चंचल नयनी चली धाम ।
बहुत फूल बीने है भटू री, पूजे मन के काम ॥
कमल फिरावत गीत जो गावत, आवत घर ब्रजबाल ।
फूलन की कर गेद लकुटिया, फूलन की उर माल ॥
माय धाय उर लाय लई, कीरत जू परम प्रवीन ।
अरघ बढ़ाय लई घर भीतर, आप आरती कीन ॥
मृगमद चंदन केसर सों, स्यामा जू लीपी भींत ।
कामधेनु के गोवर सों, रचि साँभी फूलन चीत ॥
धूप दीप धरि भोग अमृत रस आप आरती उतारि ।
गावत गीत पुनीत किसोरी श्री वृषभान कुमारि ॥
करि कै व्यारू खेलि चलीं, सब अपने अपने धाम ।
स्यामा जू और नवल सखी, सुख लूट्यौ चार्यौ याम ॥
त्रिय बागौ ललिता ही दीयौ, स्यामा पति सुघर सुजान ।
'रसिक' रूप धरि केलि करी, सुख-सागर प्रानन-प्रान ॥

[३६६] राग गौरी

कीरत कुल मंडन गाइयै, वृषभानु नृपति की बाल ।
कंचन तन सोहै, मोहै, उर पहिरै मुक्ता माल ॥
सखी वृंद सब आइ जुरीं, बृषभानु नृपति के द्वारि ,
बीननि फूल चलौ बन राधे, नव सत साजि सिंगारि ॥

ये सुनि कीरति जू हँसिकै, प्यारी कौ कियौ सिंगारि ।
कबरी कुसुम गुही है मानों, उरगन की अनुहारि ॥
सीसफूल ज्यों चंद बिराजत, सोभा कही न जाइ ।
कोटि चंद वारों मुसिकनि पै, काम रह्यौ मुरझाइ ॥
बंक बिराजि रहे भृकुटी-तट, खुटिला स्रवनन पास ।
यां लपटाइ रहे दोऊ, जनु नैन दरस की आस ॥
करन फूल, झूमक औ बंदी, लटकन बेंदि लिलार ।
नकबेसर मोती अति सोहै, लटकन परम सुढार ॥
बदन तमोल अधर अरुनाई, दसन लसत अतिसार ।
चिबुक बिंदु मधुकर सुत बैठ्यौ, मानों आसन मार ॥
अंजन ऊपर खंजन वारों, नैन चपलता मीन ।
कीरतिजू छवि निरखि निरखिकै, नीठि दिठोंना कीन ॥
चौकी चमकत मनियाँ दुलरी, चंपकली उर हार ।
बाजूबंद पछेली चूरी, कंकन गजरे चार ॥
पोंहची रतनचौक औ मुँदरी, नख भूषन छबि देति ,
श्री कर कमल बिराजत मानौ, उरगन चंद समेति ॥
छुद्रघंटिका कटि तट राजति, जेहरि नूपुर पाँय ।
अंगुरिनि बिछिया, अनबट सोहें, सोभा कही न जाय ॥
हरे कसब कौ लहैंगा सोहै, कंचुकि केसर अंग ।
सारी सुही रँगी है मानों, गुलाबाँस के रंग ॥
करि सिंगार कह्यौ कीरतजू, जाउ लड़ैती साथ ।
अली जूथ में चली परसपर फूलन डलिया हाथ ॥
चलती चाल मराल बाल, श्रीराधा सखियन माँझ ।
बीनत फूलनि जमुना कूलन, खेलति साँझी साँझ ॥
जाल-रंध्र देखत मन-मोहन, दृष्टि परी ब्रजबाल ।
तिरिया रूप कियौ है तबहीं, आप मिले ततकाल ॥

छबि निरखति वृषभानु दुलारी, बहौत करी मनुहारि ।
बीनति फूल अकेली हेली, कौ है तू सुकुमारि ॥
कौनें गाँव बसति हो सुँदरि, कहा तिहारौ नाम ।
आजु अबारि भई है प्यारी, चलौ हमारे धाम ॥
नंदगाँव में बास बसति हौ, साँवरी मेरौ नाम ।
साँझी मिसि आई हौ या बन, पूजे मन के काम ॥
सोंनजुही चमेली चंपा, रायबेलि औ बेलि ।
गुलाबाँस के गेंद करे कर, करति परसपर केलि ॥
कमल कनैर केतकी निवारौ, सेवति सदा गुलाब ।
गुलतुर्रा औ सदासुहागिनि, फूलन की भरि छाब ॥
ललिता चंपकलता बिसाखा, स्यामा भामा जेह ।
चंदभगा तुंगा चंद्रावलि, आँईं करि अति नेह ॥
ठौर-ठौर सब कहति सखिनि सों, चलौ भट्ट घर जाँह ।
स्यामाजू औ नवल सखी दोउ, गही परसपरि बाँह ॥
सोंधे गंध मध्य चंदन मिलि, करति केलि मन भाए ।
निरखि देव दुंदिभी बजावत, पुहुपन की झर लाए ॥
फूल गेद सबहिन लिये कर, गावति साँझी गीत ।
गज गति चाल चलति ब्रज-सुंदरि, बढ़ी परम रस प्रीत ॥
चहुँ दिसि तें सब आइ जुरी, वृषभानु नृपति के द्वारि ।
कीरतजू तब करति आरतौ, राई लोन उतारि ॥
कीरति बिहँस कह्यौ मृदुबानी, लली ! अली ये कौन ।
प्यारी कह्यौ नँदगाँव बसति है, खेलनि आई भौन ॥
केसर चंदन अगर अरगजा, मृगमद कुंमकुंम गारि ।
कामधेनु कौ गोबर लैकैं, साँझी धरति सँभारि ॥
धूप दीप करि भोग धरयौ, औ आरति करी बनाइ ।
माँगति सीखि सबै ब्रज-वनिता, हाथ जोरि सिर नाइ ॥

दशहरा

ब्यारू आजु करौ मिलि ह्याँहीं, राधा जू के साथ ।
कीरति जू यौं कहति सबन सों, परसों अपुने हाथ ॥
कर ब्यारू घर गई सहेली, रह्यौ खेल कौ रंग ।
कमल सेज पर पौढ़े दोऊ, साँवरी राधा संग ॥
कहा कहौं कछु कहत न आवै, प्रभु कौ यही स्वरूप ।
त्रिया बसन ललिताहि दिये हैं, कियौ है हरि निज रूप ॥
बरनों कहा यथामति, मेरी रसना एक बनाय ।
'हरिदास' प्रभु की यह सोभा, निरखत मन न अघाय ॥

राग सारग

[३६७]

दशहरा—

आज दसहरा मंगल माई ।
गिरिधर लाल जवारे पहिरत, लाल पाग पर रुचिर बनाई ॥
बैठे कनक रतन चौकी पर, उर बनमाल परम छबि छाई ।
संग सोहत बलराम मुदित मन, निरखत ब्रज जन नैन सिराई ॥
देत असीस सकल ब्रजवासी, हरषत मन न अघाई ।
'रसिकराय' हरषित विप्रन कों, देत दच्छिना जो सुखदाई ॥

राग सारग

[३६८]

विजया दसमी परम सुहाई, गोधन अगुआ दियौ पठाई ।
बैठे सिगरे गोप अथाँई, कुसल मनावत सब दिन भाई ॥
ब्रजरानी ब्रजराज कुँवर जुत, कीरति ललिता पै न्यौत पठाई ।
आज हमारे बड़ौ परब है, तुम सब जेमन आऔ ह्याँई ॥
करत सिंगार गिरधरन कुँवर कौ, चंद्रावली सरस सुखदाई ।
सूँथन पीत सेत बागौ खुल्यौ, लाल पाग पटुका थहराई ॥
काजर आँजि भौंह मटका दै, तृन तोरत और लेत बलाई ।
'रसिक प्रीतम' पिय बिजय कियौ है,
जहाँ वृषभान कुँवरि मन भाई ॥

[३६९] राग सारग

आज दसहरा सुभ दिन नीकौ, बाँहन पूजौ हो गोपाल ।
ब्रजरानी ब्रजराज कुँवर कौ, करत सिंगार विचित्र रसाल ।।
बहिन सुभद्रा फूफी रामदे, गावत मंगल लै कर थाल ।
तिलक करत जौ अंकुर खोंसत, आरती बारि देत जैमाल ।।
तब ब्रजराज अस्व सिंगारे, ता पर चढ़े श्री गिरिधरलाल ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु चले कुदावत, जहाँ बैठी बृषभान की बाल ।।

[३७०] राग सारग

आज दसहरा सुभ दिन नीकौ, विजय करौ पिय प्यारी पै आज ।
घेरी है बिकट मदन गढ़ गाढ़े, तोर मेंड़ करौ लालन राज ।।
इतनी बात सुनत नँद-नंदन, विहँसि उठे दल कीन्हौ साज ।
'रसिक प्रभु' पिय रति-पति जीत्यौ, नूपुर किंकिनी रुनझुन बाज ।।

[३७१] राग सारंग

विजय दसमी आज सुभ महूरत, विजय करौ पिय पै उठि प्यारी ।
मान निबारि पहिर पट भूषन, नील बसन तन सजिकै सारी ।।
माँग सँभारि नन काजर दै, कंचुकि कसि गाढ़ी सुकुमारी ।
'रसिक प्रभू' पिय जौ बाँधत हैं, आरति उतारति ब्रज जन बारी ।।

[३७२] राग सारंग

सुभग महूरत बिजै दसमी कौ, प्रथम समागम पिय कें हुलास ।
दूती बिनती करत प्यारी सों, बेगि पधारौ पिय के पास ।।
मंजन करि आभूषन धारौ, कनक अंग पट चीर सुबास ।
धीर धरौ बृषभान-नंदिनी, पूरन करौ प्रीतम की आस ।।
नव नागर संगम नव नागरि, नव संगम बरनत 'हरिदास' ।
श्री-बल्लभ पद रेनु कृपा सों, नवल नित्य ही हृदै प्रकास ।।

दीवाली— [३७३] राग कान्हरौ

दीप दान दै हटरी बैठे बड़ौ परब है आज दिवारी ।
बिविध भाँति पट भूषन पहिरे, नवल लाल श्री गोबरधन धारी ॥
चहुँ ओर पाँति बनी दीपन की, रानी जू अपने हाथ सँभारी ।
जगमग होत भवन चहुँ दिस ते, मंगल गान गावत ब्रज नारी ॥
दिव्य कपूर सुगंध आदि रचि, घृत सुरभी कौ जोति उजारी ।
भरे थार पकवान बहुत करि, लड़ुआ गूँझा फैनी सुहारी ॥
बनिज करेंगे भान कुँवरि सों, मनहि कुँवर फूले गिरिधारी ।
घर घर तें ब्रजनारी निकसीं, नवल किसोरी तरुनी बारी ॥
ललिता प्रभृति मुख्य श्री राधा, गावत मंगल सब्द उच्चारी ।
मिलि आईं ब्रजराज-घरनि घर, एक तें एक सुभग सुकुमारी ॥
नाचत खेलत करत कुतूहल, प्रेम मगन ह्वै आनँद भारी ।
कहौ लाल कहा सौदा देहौ, चंद्रावली मुख मुसकि निहारी ॥
पूरौ तोलौ रूट जिनि खाऔ, सैंत-मैंत नहीं लाल बिहारी ।
देख देख फूलत नंदरानी, अति उछाह नौछाबर वारी ॥
मन भायौ दीयौ सुख सबहिन कों, परम उदार गोबरधन धारी ।
'रसिक प्रभु' पिय तुम चिरजीवौ, सहचरी बार-बार बलिहारी ॥

[३७४] राग कान्हरौ

हटरी बैठे गिरधर लाल ।
सुंदर कुंज सदन अति नीकौ, सोभित परम रसाल ।
चहुँ ओर पाँति बनी दीपन की, झलकत झाल झमाल ॥
मेवा मिसरी पान फूल जब, भरि भरि राखे थाल ।
कनक लता सी सँग मृगनैनी, सोभित स्याम तमाल ॥
भाव परस्पर लेत देत हैं, राजत अंग रसाल ।
घर घर तें सब भेटें लै लै, आई हैं ब्रज की बाल ॥
'रसिक प्रभु' के आगै राखत, गावत गीत रसाल ॥

[३७५] राग कान्हरी

लाल माई बैठे राजत हटरी ।
रानी जू साजि सँभारि धर्यौ सब, राम कृष्ण कौ बँट री ॥
लडुआ गूँझा पकवान बहौत करि, भरि भरि थार धरे बहु मठरी ।
गृह गृह तें आई ब्रज-सुंदरि, भीर भई तहाँ ठठ री ॥
तोलि तोलि कै देत सबन कों, भाव अटल करि राख्यौ अट री ।
'रसिक' कुँवर के बैनन लागी, श्री वृषभान कुँवरि की रट री ॥

[३७६] राग बिहाग

वो देखौ कैसी नीकी चित्रसारी, तामें पौढ़े पिय प्यारी,
दीप मालिका रुचिर बनाइ ।
चहूँ ओर झलमलत दीप, मोतिन की माल मानों,
रतन जाइ गुहाइ ॥
पासा सार चौपर खेलनहार, जीत दोउन की,
रूट रूटाइ ।
'रसिक प्रीतम' सों खेलै राधा प्यारी,
ललिता न्याव चुकाइ ॥

[३७७] राग कान्हरौ

दीप दान दै कान जगाये, सुंदरि हटरी सुभग सँभारी ।
चित्र विचित्र विविध रंगचीते, गादी तकिया धरे सुधारी ॥
चारों ओर पाँति दीपन की, जगमग जगमग जोति उजारी ।
बीच साज चौपर खेलन कों, बैठे आप कुँवर गिरिधारी ॥
दाई ओर गेंदुआ चौकी, बाँई ओर बृषभान दुलारी ।
को जीतै को हारै दोउन में, यों बोली ललिता सुकुमारी ॥
पहिलौ पासा डारौ सुंदरी, रूँट करी तब लाल बिहारी ।
रहौ रहौ लाल ऐसे नहीं कीजै, चंद्रावली एक घात बिचारी ॥
ब्रजनारी कीरति रानी सब, देखत खेल हँसत किलकारी ।
'रसिक' प्रभू प्रिय दोऊ जीते, रानी जू बहुत न्यौछावर वारी ॥

प्रबोधिनी

राग सारंग

[३७८]

गो-पूजन—

गाय खिलावन खिरक चले री ।
गिरिधरलाल ललित लरिका संग, बाबा नंद बलदाऊ भले री ॥
श्रीदामा आदि सुबल अरजुन सब, भोज बिसाल बने री ।
नाँचत गावत करत कुलाहल, आज दिवारी सिंगार करे री ॥
सुनि निज नाम नेंचुकी निकसी, गाँग बुलाई काजर पौरी ।
कान लागि कहै कुरुर-कुरुर, डाढ़ मेलि आतुर ह्वै धौरी ॥
नंदकुमार निबेर-झार मुख, बछरा छोरि दिये री ।
हँस-हँस कहत सुनौ रे भैया !, हौं खेलत खेल नये री ॥
गो धन पूजि ग्वाल पहिराये, काहू कों पगा काहू कों पिछौरी ।
ब्रज भामिनि मिलि मंगल गावत,
'रसिक प्रभु' करौ राज जुग जुगौ री ॥

राग कान्हरौ

[३७९]

कान जगावत नंदकुमार ।
दोऊ भैया ठाड़े सिहद्वारे, गावत सिगरे ग्वार ।
नाचत फूलत करत कौतुहल, आज दिवारी बड़ौ त्यौहार ॥
कान लाग कछू कहत हैं मोहन, सावधान ह्वै गाय खिलार ।
अपने खरिकन कान जगाये, भान खिरक जाय कान पुकारि ॥
धौरी धूमर टेर सुनत ही, दौरी अटा चढ़ीं सुकुमारि !
चितै परस्पर चित चोरयौ तब, निरखत छबि कछु रही न सँभार ।
'रसिक' प्रभु पिय सब सुख सागर, सहचरी बार-बार बलिहार ॥

राग कान्हरौ

[३८०]

प्रबोधिनी—

आज प्रबोधिनी सुख दिन नीकौ, अमल पच्छ एकादसी आई ।
बहु ईखन की कुंज पुंज रचीं, और दीपकन माल सुहाई ॥
घर-घर गोपी चौक पुरति सब, बंदन माला द्वार बँधाई ।
सिंहासन गादी तकिया धरि, करि उत्थापन गोकुल राई ॥

हरे भरे सब तर मेवा धरि, सामग्री सब भोग लगाई ।
चार जाम जागरन जागि निसि, जागे है श्री गोवरधन राई ॥
मंगल आरती करि व्रज मंगल, प्रेम मगन आनँद न समाई ।
'रसिकराय' मंगल निधि माधौ, मंगल श्री राधा सुखदाई ॥

[३८१] राग विलावल

आज प्रबोधिनी परम मोदकर, चल प्यारी पिय पै लै जाऊँ ।
बहुत ईखु रस कुंज पुंज रचि, चहूँ ओर दीपकन सुहाऊँ ॥
चित्र विचित्र भूमि अति चीती, करि उत्थापन हरिहिं जगाऊँ ।
ताल मृदंग झाँझ संखन धुनि, द्वारैं बंदनवार बँधाऊँ ॥
चार जाम जागरन जागि कै, चार भोग अधरामृत पाऊँ ।
'रसिकराय' के रहसि सिंधु में, नैनन मीन झकोरि न्हवाऊँ ॥

[३८२] राग विलावल

सुभग प्रबोधिनी सुभग आज दिन, सुभग सखी प्रीतमहिं जगाऊँ ।
चहूँ ओर दीपक घृत पूरित, मध्य ईखु की कुंज बनाऊँ ॥
सुभग भूमि पैं चौक पुराऊँ, तहाँ प्रभूजी कों पधराऊँ ।
घंटा-ताल-मृदंग-संख ध्वनि, ऊपर सुभग सुपेत उढ़ाऊँ ॥
चारों जाम जागरन कराऊँ, चारों भोग धराऊँ ।
हरषि-हरषि गुन गाऊँ स्याम के, 'रसिक' सदा सुख पाऊँ ॥

बसंत पंचमी— [३८३] राग मालकोस

ललित बालापन गयौरी अब, आयौरी जोबन कामिनी के मन फूले ।
पिय संग हास बिलास रंग सों, खेलेंगे यमुना कूले ॥
यह अवसर नीकौ सुन सजनी, और अवसर नाँही समतूले ।
नव रति रंग अंग उमँगन अति, भेंटे जु अंसनि भुजमूले ॥

प्रीति उपबन फूल्यौ कुसुमन, फूली सब बन राई।
फूली ब्रज जुबतीजन, फूले सुंदर बर रति पाई ॥
जान पंचमी मिलाप करन, बृषभान सुता बन आई।
'रसिक प्रीतम' पिय अति रस माँते, डोलत कुंजन माई ॥

होली-डाड़्यौ— [३८४] राग विभास

जागि कह्यौ जननी सों मोहन ।
आज कहा मोइ बेगि जगायौ, सो बताय कहियै मोहि सोहन ॥
जसुमति कह्यौ जु आज परब दिन, पून्यौ सुख की रासी।
डाँडौ रोपन नंद जाँइगे, संग लियैं ब्रजवासी ॥
उत बृषभान इत नंदराइ जू, होड़ परैगी भारी।
उत प्यारी इत प्यारे कौ दल, को जीतै को हारी ॥
तातें मनमोहन बलदाऊ, सब समाज मिल लीजै।
और गोप लीजै रखवारी, गोपी सब बस कीजै ॥
यह सुनि रमकि उठे गिरिबरधर, मैया मोहि न्हवाओ।
देखों आज खेल होरी कौ, माखन मोहि खबाओ ॥
तब जसुमति गोपाल लाल कों, उबटि न्हवाये प्रीत ।
करत सिंगार परम रुचिकारी, ब्रज बासिन से चीत ॥
रुचिर पाग बाँधी सिर ऊपर, मोरि चंद्रिका धारी ।
तब सब बात जानि ब्रजबनिता, चली सिंगार सिंगारी॥
सब मिलि एक ठौर ह्वै आईं, जसुमति गृह के द्वार ।
भीतर धँसि उर लाइ ललन, मुख हरषे लोचन चार ॥
सैनन में सब भेद कह्यौ, हँसि मोहि मोहन मन लीन्हों।
'रसिक प्रीतम' जानत अंतर गति, मनभायौ सब कीन्हों ॥

होलिकोत्सव— [३८५] राग सारंग

होरी खेलै री नंदलाल ।
नंदमहल की पोरी ठाड़ौ, संग लिएँ ब्रज बाल ।।
वेनु बजावै मधुरें गावै, और उघटावै ताल ।
हरें हरें जुबतिन में धँसिकै, दै भुज चुंबत गाल ।।
वदन उघारै बिहँसि निहारै, तिलक बनावै भाल ।
कबहुक आलिगन दै भाजै, आइ मिलै ततकाल ।।
कबहुक ढिग ह्वै अचरा ऐंचै, छ्वावै नीरज नाल ।
कबहुक आपु वलैयाँ लै कै, पहिरावै बनमाल ।।
कबहुक नाचै भाव दिखावै, कबहु दिखावै चाल ।
कबहु अँबीर अरगजा डारै, कबहु उड़ात गुलाल ।।
कबहु हाथ जोरि मंडल मधि, नाचै सुर प्रतिपाल ।
श्री बल्लभ पद कमल कृपा तें, गावै 'रसिक' रसाल ।।

[३८६] राग विलावल

होरी खेलियै हो सुंदर लाल, चंचल नैन विसाल ।
ब्रज जन के प्रतिपाल, लीला नर गोपाल ।
गहि ठोड़ी जसुमति कहै, संग लेहु सकल ब्रजबाल ।।होरी०
विविध सुगंधन उबटनौ, सब अंग बैठि उबटाऊँ ।
चंदन अंग लगाइ कै, सुख ताते नीर न्हवाऊँ ।।
अंग अंगोछा प्रीति सों घिसि, मृग मद तिलक बनाऊँ ।
अंजन नैनन आँजिकै, भौंह मसि बिंदुका लगाऊँ ।।
अलकावलि अति मोहिनी, मोतिन लर सरस गुँथाऊँ ।
मधि लटकन लटकाइ कै, हौ देखत अति सुख पाऊँ ।।
पगिया पेच सँभारि कै, खिरकिन दार सीस बंधाऊँ ।
मोर चंद्रिका तनक सी, हौ दिसि दाहिनी धराऊँ ।।
झीनी झँगुलिया अति बनी, सो तौ स्याम अंग पहिराऊँ ।
अति सुगंध पुहुपन बस्यौ, ता पर फुलेल चुपराऊँ ।।

सूथन गाथे अंग की हो, लाल चरन बिरचाऊँ ।
फेंटा कटि तट बाँधिकै, और सुरंग गुलाल उड़ाऊँ ॥
आभूषन बहु भाँति के, अंग तुमहिं पहिराऊँ ।
फूलन की माला गरें धरि, देखत सुख न अघाऊँ ॥
घर-घर तें सब गोप गन, लरिकन पठै कहाऊँ ।
केसर के मटुका भरों, पिचकारी हाथ दिवाऊँ ॥
सिंहद्वार ठाड़े रहौ, तुम संग दै हों बलदाऊ ।
आगें ह्वै मेरे लाड़िले, ब्रज ललना रंग छिरकाऊँ ॥
बड़रे गोपन बोलिकै, रखवारे संग रखाऊँ ।
मनमाने त्यों खेलियै, सब ब्रज-रस सिंधु समाऊँ ॥
बिबिध भाँति ब्रजराज सों कहि, बाजे बहु बजवाऊँ ।
फगुआ दैवे कों अबहि, नव भूषन बसन मँगाऊँ ॥
सब ब्रज जुबतिन कों अबहि, घर-घर तें बेगि बुलाऊँ ।
मेरे लालन के चाउ सों, फगुआ के गीत गवाऊँ ॥
रंगमँगे बागे देखिकै, अपने दोऊ दृगन सिराऊँ ।
मुक्ता फल थारी भरों, हौं लै आरति उतराऊँ ॥
आँकों भरि-भरि गोद लै, घर भीतर हौं चली जाऊँ ।
ब्रज जुबतिन के जूथ में, हौं फूली अंग न समाऊँ ॥
माय मनोरथ यों करै, जाकौ श्री जसुमति है नाँऊँ ।
दीजै यह फल 'रसिक' कों, श्री वल्लभ गुन गाऊँ ॥

[३८७] राग हमीर

खेलत होरी लाल, संग लिए ब्रज कुल के बाल ।
ब्रज की खोरि पौरि ब्रजराज की,
दौरि-दौरि सबहिन पै छिरकत, बाँधें फेंट गुलाल ॥
ब्रजनारी न्यारी ह्वै, गारी दै दै गावति, हँसति गोपाल ।
इहि बिधि ब्रज रज सिंदूरनि छायौ, सुंदर 'रसिक' रसाल ॥

[३८८] राग ईमन

लाल रस माते हो, खेलत डोलत फाग ।
संग लिये गोकुल के लरिका, बिबिध उड़ात पराग ॥
कोऊ लिएँ पिचकारी, छिरकत कोऊ कुंकुम जल लाग ।
कोऊ अबीर गुलाल उड़ावत, मदन रुकायौ माँग ॥
कोऊ मधुरे सुर बेनु बजावत, कोऊ मिल गावत राग
'रसिक प्रीतम' प्यारी संग बिहरत, कंचन मिल्यौ है सुहाग ॥

[३८६] राग अडानो

नंदलाल खेलें फाग सब मिलि, भरि भरि अबीर गुलाल ।
एक गोरी एक साँवरी सूरत, करत नये नये ख्याल ॥
प्यारी कर कठताल बजावत, बिच बिच मोहन मुरली रसाल ।
'रसिकराय' रस बस भए खेलत, मोहि रहीं ब्रजबाल ॥

[३६०] राग सारंग

ऐसी खेल होरी की, जहाँ रहत नही कछु कानि ।
अहो तहाँ कहियत मरम बखानि, तहाँ खेलत में न अघानि ।
तहाँ मानत नहीं पहिचान, तहाँ बोलन जान अजानि ॥
जहाँ मिलिवे की अकुलानि, जहाँ रूप भेष उलटानि ।
जहाँ खेल लराई ठानि, जहाँ अति आनंद बढ़ानि ॥
जहाँ परत न राजत ध्यान, जहाँ तन-मन-धन बिसरानि ।
करि सिंगार घर घरनि ते, भईं द्वारें ठाढीं आई ।
खेलन कों नंदलाल सों, ब्रज जुवती सहज सुभाई ॥
गावत गीत सुहावने, ऊँचे सुर पियहि सुनाई ।
मोहन मन बस करन कों, जुबती जन रच्यौ उपाई ॥
सुनत स्त्रवन लै सखन कों, आये ब्रजभूषन धाई ।
नाचत गावत रस भरे, अरु बाजे बिबिध बजाई ॥

बदन बिलोक्यौ लाल कौ, हँसि घूंघट पट सरकाई ।
उर अनंद अति ही बढ़यौ, मन भावन इहि विधि पाई ।।
मोहन के सिंगार कों जु, सब लीनौ साज मँगाई ।
चोवा चंदन अरगंजा, और सुरंग गुलाल भराई ।।
लाईं सैन दै बातन मिस करि, मोहन निकट बुलाई ।
परसि कपोलन प्रेम सों, पिय लीने अंग लगाई ।।
बसन नये लै आपुने, दिये प्रीतम कों पहिराई ।
आभूषन बहु भाँति के, पहिराये देखि बताई ।।
प्रथम कपोलन छिरकि कै, कछु चंदन बिंदु बनाई ।
सुरंग गुलाल अबीर सों, करि चित्र रहत मुसकाई ।।
पगिया पेचन छिरकि कै, बागौ इजार छिरकाई ।
सोभा चित्र बिचित्र की, नैनन ही परत लखाई ।।
अधिक गुलाल उड़ाइ कै, सबहिन की दृष्टि बचाई ।
मन भायौ प्रिय सों करें, प्रति अंगन अंग मिलाई ।।
मंडल मधि प्रिय राखि कै, मिल नाचत अति सरसाई ।
गावत अति आनंद सों, छिन छिन हिरदौ न अघाई ।।
खेल रच्यौ ब्रज लाड़िले, ब्रज जुबतिन पाइ सहाई ।
एक भये गुन गावहीं, सब गोप सब्द उघराई ।।
रस रसिकन मन अति बढ़्यौ, सो तिहुँ लोकन रह्यौ छाई ।
श्री बल्लभ पद कमल की, 'रसिक' सदा बलि जाई ।।

[३९१] राग केदारौ

अहो हो हो होरी बोलै ।
गोकुल गली सखा संग लीन्हें, अति मदमातौ डोलै ।।
ढप बीना सुरबीन बसुरिया, ताल मृदंग बजावै ।
ऊँचे सुर लै गीत उघारै, सबन सुनावत गावै ।।

करन अँधेरी चहुँ ओरन तें, सुरंग गुलाल उड़ावै।
लै लै नाम ऊँचे जुवती जन, खेलन काज बुलावै॥
सुनत बचन घर घर तें ग्वालिन, सब मिलि आई दौरि।
देखि समाज खेल कौतूहल, ठठकि रहीं हँसि पौरि॥
हरखित निरखि निरखि उर अंतर, गावत मीठी गारि।
कहत परस्पर कैसौ सोहत, हरि मुख लखौ निहारि॥
बंदन बिंदु बदन पर राजत, कछु उपमा जिय होति।
मनहुँ मंजु जुबतिन के देखन, लागि रही दृग जोति॥
ता पर लग्यौ अबीर बिराजत, सोभा बढ़ी अपार।
मनहु गगन तारागन ढाँपे, बदरा बरसन हार॥
मुख माड़्यौ सब कौ मन मोहन, सोहत सुरँग गुलाल।
मनहुँ किरनि नीरज पै प्रसरी, रवि उदयौ ततकाल॥
अरुन नयन रसमसे महा, मदमाँते करत कलोल।
मानहुँ मधुप स्रवन सर सरसिज, रँग रस लेत अमोल॥
तिलक बन्यौ बिच भाल रुचिर, कुंकुम कौ आली किधौं।
मानहु मदन बेधि जुबती हिय, अनल निकारि लियौ॥
सोहत नासापुट मुकताहल, भूषन अति छवि देत।
मानहुँ बदन चंद तें च्वै रस, बूँद परी सुक हेत॥
अधर अरुन रस भार भरे अति, देखत चित्त लुभाई।
मनहुँ जुबति अनुराग लता ह्वै, रस पीयूष चुवाई॥
अलक चारु अरुझे मुकताहल, झुकि झूलत रस सार।
सीस करारे उतरि, मनों रस पीवत मधुप अपार॥
पगिया लटकि रही आधे सिर, कुंकुम रंग भरी।
मनहु मेघ ढिग दामिनि इक दिसि, बिधिना अचल करी॥
ता पर मोर चंद्रिका तिहरी, हरि मस्तक अति सोहै।
मानहु कनक भूमि पर नाचत, केकि कला करि जोहै॥

बागों बन्यौ अबीर गुलाल अगर रस केसर भीनौ।
मनहुं जुवति जन दृष्टि परन कों, मैन बिछौना कीनौ॥
चरन कमल सित अरुन स्याम रंग, रँगे लसत चितचोर।
मानहुँ साँझ रैन दिन तीनहुँ, आय भये इक ठौर॥
इहि विधि रूप देखि परबस ह्वै, सबै जुबति ढिग आईं।
बैन बजाइ मंत्र पढ़ि मानहु, हरि आकरषि बुलाईं॥
छिरके जाय निकट कुमकुम रस, सब की सकुचि गमाई।
परसि पानि मनमथ मदमाती, उनमद सबै बनाई॥
दौरि चतुर चंद्राबलि, हरि कौ रबकि गह्यौ पट पीत।
मानहुँ रुचिर गह्यौ दृढ करि कर, कमल आपुनौ मीत॥
चहूँ ओर तें जुबति जन मिलि कै, मोहन घेर लियौ।
मनहुँ कमल पँखुरी चहुँ दिसि तें, मधुकर बीच दियौ॥
काहू लै भुज चंदन चरचित, अपुने अंस धर्‌यौ।
काहू चिबुक पकरि हरि कौ मुख, अपनो ओर कर्‌यौ॥
कोऊ जाइ लेत भुज भरि कै, नैनन नैन मिलावै।
मानहुँ पवन चलत अति चंचल, कमल कमल ढिग आवै॥
कोऊ बदन कमल पर अपुनौ, कर जुग हुलासि फिरावै।
कोऊ आइ एक दिसि हरि के, आपु अंग परसावै॥
ढिग बैठाइ बिछाइ, आपुने बसनन करत सिगार।
मानहु निज सेना बिच बैठ्यौ, रस स्वरूप धरि मार॥
अपुने सकल बसन आभूषन, पहिराये पिय अंग।
अंजन नैन भाल दै बिंदुली, परबस भईं अनंग॥
तारी दै नाँचहिं हो हो कहि, स्याम मिले हम माँहि।
कहत सखा पहिचान आपुने, गहौ मीत की बाँहि॥
जाके बल जीतत जुबतिन कों, हम भीतर सो आयौ।
तुम सों को खेलै वलि बालक, जो चहियत सो पायौ॥

गावत चलीं महरि सुत लै घर, अपने अपने नारि ।
तब श्रीदामा कही जाइ ढिग, मन इक बात बिचारि ॥
देखौ स्याम बने हैं कैसे, मो ढिग आवन देहु ।
जो न पत्याइ हाथ की मुंदरी, या के बदलैं लेहु ॥
लै बारने, गहे पद हरि के, भलौ धरचौ यह रूप ।
परबस परे धरे उर अंतर, वृंदाबन के भूप ॥
सैनन सँग के सखा बुलाये, झुंडन में धँसि आये ।
चित चकाइ जुबती उत सरकीं, स्याम आपुने पाये ॥
इहि बिधि खेल रच्यौ आनँद निधि, ब्रजबासिन सुखदाई ।
'रसिक' हरषि चित अपुने प्रभु की, अदभुत लीला गाई ॥

[३९२] राग विभास

आजु तौ छबीलौ लाल प्रात ही खेलन चल्यौ,
सखा सँग के लै लिये, गारी रह्यौ गाइ कै ।
खेलत खेलत सब, बृषभान जू की पौरि आये,
हो हो हो हो बोलें बोल प्यारी मन भाइ कै ॥
छबीली प्यारी रचौ उपाइ, स्याम कों लिये बुलाइ,
मैया की दृष्टि बचाइ, लीन्हे उर लाइ कै ।
अरस परस हरष दोऊ, महा मोद रस भीने,
सहचरी सुख पावें महा 'रसिक' सुख सों गाइ कै ॥

[३९३] राग सारंग

काँकरी कान्ह मोहि मारै ।
टेढ़ी चितवन मो तन चितवत, लोट-पोट करि डारै ॥
हौ गुरुजन की लाज करति हौ, निकसत निपट सवारैं ।
बरजौ न मानति नैक नंद-सुत, जो कोउ कहि पचि हारै ॥
कहा कहौं, कित जाउँ सखी री, को यह न्याव बिचारै ।
'रसिकराय' प्रीतम की बातें, इतनी कौन सहारै ॥

[३६४] राग ईमन

एरी चलहु सखी तहाँ जहाँ जैयै ।
नव निकुंज में खेल मच्यौ है, रंगनि रंग मिलैयै ॥
तजि अभिमान समझ सखी मन, स्याम मिले सुख पैयै ।
अरस परस आलिंगन लहियै, चुंबन होड़ लगैयै ॥
करौ सिंगार सुभग तन थोरौ, मोतिन माँग भरैयै ।
सारी सेत पहिर ननसुख की, ओलि गुलाल करैयै ॥
'रसिक प्रीतम' प्यारे सों मिलियै, अंतर भाव जनैयै ।
इहि बिधि फाग सुहाग सखी री, आनंद सिंधु बढ़ैयै ॥

[३६५] राग ईमन

देखौ मोहि सग लाग्यौ आवै ।
हौं ठाड़ी अपुनी सखियन में, लै मुठी सनमुख धावै ॥
सास नँनद की सकुच करति हौं, सौंधे सिर मति डारौ ।
हौं जमुना जल भरन जात हौं, ये उतही में ठाड़ौ ।
जद्यपि गुरुजन लाज डुरति हौं, छिन इक होत न न्यारौ ॥
'रसिक प्रीतम' प्रान हू ते प्यारौ, है रह्यौ नैनन तारौ ॥

[३६६] राग अड़ानौ

हरि संग चलौ हो खेलियै होरी ।
उर बढ़ी लाज त्यागि जिय गाओ, होहो होहो होरी कहौ री ॥
देखें जाय जहाँ हरि खेलत हैं, लोक बेद की कानि डहौ री ।
हास बिलास प्रसन्न कमल मुख, इक टक निरखि प्रमोद लहौ री॥
ऐसे समै बिना हरि संगम, घर रहिवौ लागत विष घोरी ।
सब ब्रत छाँड़ि अनन्य पुष्टि पथ, एकहिं ब्रत काहे न गहौ री ॥
प्रिय की प्रीति जानि अपुने जिय, आनि एक रस लैन बहौ री ।
जा बिनु चलै एक छिनु नाँहीं, ता कारन सुख क्यों न सहौ री ॥

बीतत छिन-छिन जोवन कौ सुख, अति दुरलभ सखी समौ ये होरी।
कहा बिलंब करत हौ पिय ढिग, जैबे में ब्रजनारि अहो री॥
चलौ दिखाऊँ मोहनी मूरति, यह आनंद अनत कल हो री।
अंग अंग की अमित माधुरी, पीवत पर-गुन-धरन बहोरी॥
अबही प्रगट भयौ है यह रस, भागिन बहुरचौ नाँहि लहौरी।
सुंदरि स्याम मिलौ नीके करि, काहे कों तन आपु दहौ री॥
अब लगि ब्रज इहि भाँति विलसिवौ, सपुने हू में हुतौ न हौ री।
जाइ मिलौ अपुने जीवन सों, जीवन कौ फल पाइ रहौ री॥
या विधि बचन सुनत ब्रजनारी, चलीं धाइ खेलन सुख होरी।
श्री विट्ठल पद रेनु 'रसिक' यह, ध्यान धरौ अति दुरलभ हो री॥

[३६७] राग बिलावल

आज सखी कुंजन फाग उड़ाऊँ।
प्रान पीतम अबही मोहि मिलि हैं, तो मुख मिसरी भराऊँ॥
ऐसी सुघर नारि कों ब्रज में, ताकौ नाम धराऊँ।
'रसिक प्रीतम' पिय मिलौ मयाकर, सब तन ताप नसाऊँ॥

[३६८] राग विहाग

चले पिय भावते रस लैन।
खेल फाग अनुराग बढ्यौ है, महा मत्त गति मैन।
झीने बसन गुलाल सगबगे, तन राजत दुति ऐन।
'रसिक प्रीतम' पिय प्यारी पौढ़े, नव निकुंज सुख सैन॥

[३६९] राग सारंग

अहो पिय अबकै होरी, अबकै होरी, अनत जान नहिं देंउँगी।
निस बासर एक ठौर बैठि कै, तुम संगम रस लेंउँगी॥
बिविध बिपिन फूली द्रुम बेली, भ्रमर करत गुंजार।
मानहुँ मगन देखि जुवती जन, गावत करत बिहार॥

केसू कुसुम बिकास मास फागुन, उपज्यौ अनुराग।
मनहुँ काम मग गज फेरन कों, प्रगटे अंकुस नाग ॥

फल नत द्रुम पल्लव अति सोहत, कर अँगुली की नाँईं।
मानहुँ मदन दूत बोलत है, जुबती जन परि पाँईं ॥

रुचि उपजत देखत लपटी, माधविका जाइ रसाल।
मानहुँ पथिक भजत फगुआ कों, गह्यौ जुबति ततकाल ॥

बहत बाइ सुखदाइ सबन कों, उड़त सुगंध पराग।
मानहुँ गुपत बिहार करन कों, मैन रुपायौ बाग ॥

फूले कुसुम गुलाब अचल, ता मधि बैठे अलि जाई।
मानहुँ जग्यौ मैन जुबतिन कों, इकटक देखत आई ॥

कुंद कुसुम प्रफुलित अति सोहत, बरनि सकै को कांति।
मानहुँ निविड़ हँसति जुबतिन के, प्रगट भई द्विज पाँति ॥

बोलत सुक कूजत कोकिल कुल, भयौ विपिन में सोर।
मानहुँ करत रमन रति पति सों, होत रसन सुर घोर ॥

[४००] राग सारंग

जैहौ कहा समै ऐसे में, रहौ हमारे गेह।
सुनौ हो लाल रस रीत लाइ चित, करौ सुफल निज नेह ॥

चोवा चंदन बंदन अरु, नँदनंदन सुरंग गुलाल।
बिविध भाँति छिरको जुबतिन पै, बिलसौ परम रसाल ॥

सुनि प्यारी मुख बचन प्रानप्रिय, भये तुरत आधीन।
रहि नहि सकत छिनहु बिनु देखें, ज्यों जल बाहर मीन ॥

यह लीला सुमिरत रसिकन के, मन आनंद अपार।
श्री बल्लभ पद रज बल्लभ 'हरि', गुन गावत सुख सार ॥

[४०१] राग विहाग

होरी के दिन में पिया मोसों बोलत नाँही,
अब कछु जतन बताइ भट्ट री।
बिरह अगिन में तपत मेरौ मन,
छिरक्यौ गुलाल सुरंग चूँदरी मेरी पीत पट्ट री॥
अब कैसै जीवनौ होय मेरी सजनी,
जब निकसत स्याम मो तन निहारत वा गोरी सों भयौ लट्टू री।
मानत नाहीं कुमर कन्हाई मन मोहन चित चोर,
सौंहैं खाइ 'रसिक प्रीतम' प्रिय नागर नेह नट्टू री॥

[४०२] राग धनाश्री

पिय प्यारी खेलें फाग, बागे मरगजी।
दौरे सकल ग्वाल संग आये, मोहन मन में धरगजी॥
श्री स्वामिन कामिनि लै धाईं, आईं गिरधर थर गजी।
जुबती निठुर भईं तिहि औसर, मारत मूँका अरगजी॥
'रसिक राय' प्रभु अति छबि बाढ़ी, सुर मुनि मोहे सरगजी॥

[४०३] राग केदारौ

खेलत रंग भरे दोऊ होरी।
नव निकुंज में अति रसमाँते, गौर स्याम सम जोरी॥
बिविध भाँति फूलन रचि रुचि सों,सखियन सेज सँभारी।
ता ऊपर मिलि बैठे दोऊ, उदित भाव पिय प्यारी॥
हरि के सिर सोहत है पगिया, खिरकिन पेच बनाई।
ता पर धरी चंद्रिका टेढ़ी, लागत परम सुहाई॥
अलकावलि गूँथी मोतिन लर, मुख पै सोभा देत।
कामिनि लेत बलाइ विधू छबि, मनहुँ चित्त हरि लेत॥

उरू जुगल अवलोकत आवत, कछु उपमा जिय आज।
एक फलन फलि पुनि कै प्रगट्यौ, रंभा जुग ब्रज काज॥
चरन कमल अति विमल विमोहित, देखत नख ससि संग।
अँगुरी जरीं जराव मनों, कसि छाँध्यौ सुदृढ़ अनंग॥
प्यारी यौं लागत, तमाल ढिग लहलही कनक लता सी।
मानहुँ थिर दामिनि नव घन में, अद्भुत नई प्रकासी॥
कहा बरनौ स्वामिनि की सोभा, बिधि बरनी नहीं जाइ।
निज रस जगत प्रगट करिवे कों, पिय विधि रची बनाइ॥
चरन जुगल, दस नख अँगुरिन पर, सोहत मोहत मैन।
मनहु कमल की प्रति पँखुरिन पै, बिधु बैठे है ऐन॥
गौर अंग राजत अति झीनो, लगी अंग सित सारी।
मानहु पूरन ससि राका में, तिय मुख बिधि उजियारी॥
ता पर सोहत द्वै फद, तिन्हके रुचिर फूँदना स्याम।
मानहु इंदीवर दल फूले, रस मधुपन के धाम॥
कटि किंकिनी बनी अति खुबिकै, अनुपम सोभा होत।
हीरन की चमकन में छिन-छिन, प्रनि सूरज सत जोत॥
कर अँगुरी मुँदरी दस सोहत, मोहत अनुपम कांति।
मानों मनिधर प्रति फन ऊपर, प्रगट भईं मनि पाँति॥
रतन जटित ता ऊपर राजत, मधि नायक कौ फूल।
मानहुँ मदन छाप दै दीनी, बस करिवे अनुकूल॥
कर कंकन पहोंचिन सग सोहत, वलय प्रगट छबि न्यारी।
मानहुँ पिय हित चित चढ़िवे कों, मनमथ सिढ़ी सँभारी॥
ता ऊपर बनि रहे बिबिध नग, जरे जु बाजूबंद।
मानहुँ पिय मन मीन गहन कों, मैन रच्यौ है फंद॥
रोमावली कहाँ लौं बरनों, सुकवि रहे पचिहारी।
मानों नाभि दरी ते निकसी, मधुपावलि झलकारी॥

हृदै कमल आभूषन बहु विधि, तिहिं तिहिं ठाँइ बने ।
मानहुँ रति पिय मन मोहन कों, रचे उपाव घने ॥
कुच कुंभन पै लगी आनि सो, अँगिया सोहत राती ।
मनहुँ नंदनंदन रति रन कों, धरी अँगरखी छाती ॥
कंठ कंठसिरी तिलरी राजत, दुगुन होत प्रतिबिंब ।
मानहुँ पिय कर कमल परसि, लह्यौ अलि अबलिन अवलंब॥
अधरन की छबि कैसै कहियै, अनुपम सुंदर आहि ।
मानहुँ पिय मुख छबि भरिवे कों, सुधा धरी पुट माँहि ॥
स्रवन जुगल ताटंक विराजत, झलकत लोल कपोल ।
मनहुँ नीर में प्रतिबिंबित ह्वै, सूरज करत कलोल ॥
लोचन जुग लाजे यौं लाजन, भए अधिक आधीन ।
मानहुँ खेलत लावनि जल में, अति चंचल द्वै मीन ॥
ता पर अति कमनीय तनीं जुग, भौंहैं बनीं कमान ।
साधि लक्ष सर हनत पंचसर, पीतम कौ उर आन ॥
ता मधि करी बनाय जतन सों, मृग मद की है टीकी ।
मानहुँ मूरति मैनराइ की, राजत अतिसै नीकी ॥
बदन कमल पर अलक बिराजत, बिथुर रहीं चहुँ ओर ।
मनहुँ करन मकरंद पान कों, मधुप रहे गहि ठौर ॥
मधि राजत मुक्ता लर सुंदर, माँग बनी सिंदूर ।
मानहुँ पिय अनुराग सिंधु तें, प्रगट सुधा कौ पूर ॥
सीसफूल मधि माथै सोहत, मेटत मान अनंग ।
मानहुँ मनि राजत माथे की, वैनी रूप भुजंग ॥
ता ऊपर अंचल अति सूछम, बिच झलकत कच भार ।
स्याम सुंदर के भोग करन कों, प्रगट भयौ सुख सार ॥
इहि बिधि देखत यह नव जोरी, सखियन अति रति बाढ़ी ।
लिये गुलाल अबीर अगर रस, रहीं चित्र सी ठाढ़ी ॥

छिरकि कपोल जुगल पर कीने, कछु चंदन के बिंदु।
जनु तारागन के संग सोहत, मधि बैठ्यौ सुख इंदु ॥
ता पर रचि पचि कछुक लगाये, दुहुँ दिसि सुरभि अबीर।
मनहुँ कमल तें उड़ि पराग अति, गगन करी है भीर ॥
दुहूँ कर लै पिय बदन लगायौ, प्यारी सुरंग गुलाल।
इंदीवर ऊपर सोहत अति, कमल मनों इक लाल ॥
सब अंग छिरकि बिबिध रस रँग, प्यारी तन चित्रित कीनों।
याही भाँति प्रीतम कों छिरकत, अंग परसि सुख लीनों ॥
बिबिध भाँति बोलत होरी के, बोलन हँसें हँसावें।
कबहुँक निपट उघारी बातें, कहि-कहि लजें लजावें ॥
कबहुँक दोऊ कंठ बाँह धरि, सरस मधुर धुनि गावें।
हो हो होरी कहत किलकि सब, सखियन मन अति भावे ॥
कबहुँ उतारि गरें तें माला, पिय प्यारी पहिरावें।
फिरि फिरि देख परस्पर हुलसत, मन अति मोद बढ़ावें ॥
दृष्टि चुराइ कबहुँ पिय नैनन, अंजन आँजि अँजावे।
देखौ कैसे बने स्याम अब, सखियन बोलि दिखावें ॥
कबहुँक परिरंभन करि गाढ़े, एक स्वरूप कहावें।
इहि बिधि बिबिध भाँति मिलि रति रस,
बहुतक रंग रचावे ॥

यह लीला सुमिरत 'रसिकन' के, सुरत गई तन माँझ।
आन ज्ञान ते मन की वृत्ती, भई दासन की बाँझ ॥
जो मन हरि के चरन कमल जुग,
बिबिध भाव रस चहियै।
तौ श्री वल्लभ चरन सरोवर, अवगाहन गति गहियै ॥

[४०४] राग कान्हरौ

होरी खेलत लाल ललना संग।
बिबिध भाँति बनि बनि आईं जुरि, ब्रज जुबती बहु रंग ॥
प्रथम देखि हरषित बिथकित भईं, मूरतिवंत अनंग।
नैन बान लागत उर अंतर, भईं बिकल सब अंग ॥
तजि कुल लोक लाज तन की सुधि, करि मरजादा भंग।
उमँगि-उमँगि बिलसहिं प्रीतम सों, बाँधि गुलाल उछंग ॥
करि बिचार मति चारु सबै मिलीं, अपुने अपुने ढंग।
जुरीं जाय हरि सुधा सिंधु सों, बढ़ि प्रवाह मानों गंग ॥
कोऊक लै कर पर पिय कौ कर, नृत्य करै थेई थंग।
काहु गह्यौ पिय भुज निज भुज सों, भेट्यौ उरज उतंग ॥
कोऊ बजावति बीन मधुर सुर, कोऊ सरस उपंग।
कोऊ कर कठताल बजावति, कोऊ मृदुल मृदंग ॥
कोऊक ठाड़ी ह्वै मुख निरखत, गहि भुज लता लवंग।
कोऊक लेत उगार धरत मुख, पिय कपोल परजंक ॥
कोऊक निकट जाय प्रीतम के, मृदु बजाय मुखचंग।
करि कटाच्छ हँसि इत उत चितवत, जीत्यौ दृगन कुरंग ॥
चंचल चलन कहाँ लों बरनों, मेट्यौ मान तुरंग।
अंचल खसत देखियत ससि मुख, मुकता फल भरौ उमंग ॥
कबहुक देखि-देखि पिय कौ मुख, नाचत सकल सुढंग।
बिच-बिच बचन बिबिध मुख बोलत, कूजत मनों बिहंग ॥
कबहुक मुख सरसिज बन फेरति, अति चचल दृग भृंग।
कबहू धाय अधर-रस पीवत, चित उपज्यौ रति भृंग ॥
इहि बिधि पिय संग खेलत मेट्यौ, मन डस मैन भुजंग।
अति रस मद छुए नहीं जानत, भई भार परयंग ॥
यह लीला सुमिरत 'रसिकन' मन, हरि पद रति अनुसंग।
श्री बल्लभ पद कमल बिमल मति, गावत उठत तरंग ॥

[४०५] राग सारंग

अहो पिय लाड़ लड़ैती कौ झूमिका,
सरस सुर गावति मिलि ब्रजबाल ।
अहो कल कोकिल कंठ रसाल । लाल बलि झूमिका अहो० ॥
नव जोबना सरस ससि बदनी, जुबति जूथ जुरि आईं ।
नख सिख साजि सिंगार सुभग तन, कनक करन पिचकाईं ॥
जुर मिलि सबन जूथ नवला सी, दामिन सी दरसाईं ।
एक सुगंध सँभार अरगजा, भरन नवल कों आईं ॥
पहैरें बसन बिबिध रँग रंगन, अंग महारस भीनी ।
अतरौटा अँगिया अमोल तन, सुख सारी अति झीनी ॥
गज गति मंद मराल चाल, झलकत किंकिनि कटि छीनी ।
चौकी चमकि उरोज जुगल पर, आनि अधिक छबि लीनी ॥
मृगमद आढ़ ललाट स्रवन, ताटंक तरनि दुति हारी ।
खंजन मान हरन अँखियाँ, अंजन रंजित अति भारी ॥
इक बानिक निज संग सखी, लीन्ही वृषभान-दुलारी ।
इक टक दृष्टि चकोर चंद्र ज्यों, चितिये लाल बिहारी ॥
ररकत हार सुढार जलद, मानों पोत-पुंज अति सोहै ।
कंठसिरी दुलरी दमकनि, चौका चमकन मन मोहै ॥
बेसर थरहरात गज मोतिन, रति भूली गति जोहै ।
सीसफूल सीमंत जटित नग, बरन सकत कवि को है ॥
नव निकुंज रस पुंज भरे, महलन प्यारी पिय खेलें ।
केसर और गुलाल कुसुम जल, घोरि परस्पर मेलें ॥
मधुकर जूथ निकट आवत झुकि, अति सुगंध की रेलें ।
प्रीतम स्रमित जानि प्यारी तब, स्याम भुजा भरि झेलें ॥
बहुबिधि भोग बिलास रास रस, 'रसिक' बिहारिन रानी ।
नागर नृपति निकुंज बिहारी, संग सुरति रति मानी ॥
जुगल किसोर भोर नहीं जानत, यह सुख रैन बिहानी ।
'प्रीतम' प्रान प्रिया दोऊ बिलसत, ललितादिक गुन गानी ॥

बसंतोत्सव — [४०६] राग बसंत

आज बसंत बधायौ है, श्री बल्लभ राज दुआर।
श्री विट्ठलनाथ कियौ है रुचि-रुचि, नवल बसंत सिंगार॥
बल्लभी सृष्टि समाज संग सब, बोलत जय जयकार।
पुष्टि भाव सों पूजत हैं मिलि, बाढ्यौ है रंग अपार॥
प्रेम भक्ति कौ दान करत, श्री बल्लभ परम उदार।
कृपा दृष्टि अवलोकि दास कों, देत हैं पान उगार॥
श्री बल्लभ राजकुमार लाल, ब्रजराज कुमर अनुहार।
ऐसौ अदभुत रूप अनूपम, 'रसिक' जात बलिहार॥

[४०७] राग पंचम

सघन बन छायौ प्रफुलित, द्रुम बेलि भयौ हुलास ब्रज जन मन।
ठौर-ठौर कोकिल कल कूजत, करत गुंजार मधुप गन॥
भयौ प्रगट आजु ऋतुराज, बास कियौ सुनियत वृंदाबन।
'रसिक प्रीतम' पिय सों रस बिलसों,
आनि अरपों सखि तन-मन-धन॥

[४०८] राग पंचम

जागौ लाल बसंत बधावन आवेगी ब्रजनार।
उठहु लाल तुम करहु कलेऊ, खेलन कों कछु होत अबार॥
माखन मिसरी दही मलाई, भर भर राखे कंचन थार।
इतनी सुनत तुरत उठि बैठे, जसुमति हरषी बदन निहार॥
दोऊ भैया करत कलेऊ, पाछै मैया करत सिंगार।
फगुआ में मेवा धरि राखे, और धरे मोतिन के हार॥
इतने में ब्रजबाल सबै मिलि, आईं नंद जू के द्वार।
करत कुलाहल सुनतहिं, आतुर आये नंद-कुमार॥

केसर अगर स्यामा जू पै डारत, हँसत दै दै कर तार ।
मिस ही मिस अंक भरत स्याम कों, फगुआ दै दै नंदकुमार॥
फगुआ दै आनंद मन मानत, यह होरी कौ वड़ौ त्यौहार ।
देत असीस सबै ब्रज बनिता, सुख 'हरिदास' होत बलिहार॥

[४०९] राग वसंत

देखियत लाल दृगन डोरे ।
काके संग खेले हो वसंत, करि निहोरे ॥
सजलताई प्रगट मानों, कुंकुम रस वोरे ।
अरुनताई भई गुलाल, बंदन सित छोरे ॥
अंजन छवि लगत, मानों चोवा छवि चोरे ।
बरुनी मानों नूत पल्लव, उधर भये सिंधोरे॥
कवहू रस मत्त नाचत, दोऊ कटाच्छ कोरे ।
गान सुरत भई मगन, बिबिध तान तोरे ॥
देखियत अति सिथिलताई, मानों झकझोरे ।
काहे कों कछू, जानै मन मोरे ॥
सनमुख ह्वै कवहू, फिर जात चख लजोरे ।
'रसिक प्रीतम' मेरें तुम, आये काके भोरे ॥

[४१०] राग वसंत

मान तजौ भजौ कंत, रितु वसंत आयौ ।
वन सोभा निरखि-निरखि, पथिकन दुख पायौ ॥
फूली वनराइ जाइ, मधुकर लिपटायौ ।
अंब मौर ठौर-ठौर, वृंदावन छायौ ॥
अति सुगंध वहत वात, सुचि पराग उड़ायौ ।
उनमद झंकार करत, विरही जन डरायौ ॥
तिहारे हित कारन प्यारी, सब्द यह सुनायौ ।
'रसिक प्रीतम' जाय मिलौ, जुवतिन मन भायौ ॥

[४११] लावनी

चल वृषभानु कुमारी ! बाग अवलोक बनी सोभा भारी।
भाँति-भाँति के खिले हैं फूल, झुकी धरनी डारी ॥

सुन प्रिय बचन चली हँसि सुंदर, पहुँची नजर बाग की ओर।
बचन अमी से कहत है नागरि से पिय नंदकिसोर ॥
देखो बाग मनोहरता क्यारिन में कैसी बनी मरोर।
अति सुढार है रौस सुरखी पट्टी की हरी किनोर ॥

फूले चीन गुलाब चारु गुलतुर्रा केतकि है न्यारी ॥ भाँति-भाँति०

गेदा गुलाबास गुलतुर्रा गुलसब्बू गुलगोटी।
गुल इलायची लगी है गुलमेंहदी रँग की मोटी ॥
फूली गुलचाँदनी भली यह गुलबहार झुक में लोटी।
कुंद केबड़ा भली कचनारन की सुंदर जोटी ॥

रायबेल चंपा बेला मोतिया जुही फूली प्यारी ॥ भाँति०

गुलखैरा गुलदाउद नीकी आवत महक चमेली की।
मौलसिरी है ललित केबरा माधुरी बेली की ॥
सर्रो सरस कनेर फुहारन में बहार जलरेली की।
हौज बीच में भली सोभा बाढ़ी जलकेली की ॥

फूले कंज तड़ागन में तिनपै अलि पाँति झुकी न्यारी ॥ भाँति०

करौ बिहार आज या उपबन सुनो कुँवर जिय भावत है।
कुंज छबीली, छबीली ऋतु बसंत सरसावत है ॥
बोलत मोर चकोर हंस कोयल मधुरे सुर गावत है।
पवन सुहावन बिबिध बिधि चलत अनंद बढ़ावत है ॥

कुंज भवन मिलि बैठे दोऊ, निरख 'रसिक' जन बलिहारी ॥भाँति०

डोल-झूलनोत्सव — [४१२] राग देव गंधार

डोल झूलत है जुगलकिसोर ।
पिय प्यारी छवि निरखि परस्पर, अरुन दृगन की कोर ॥
जाती कुंद अरविंद मालती, विविध कुसुम की घोर ।
केकी कोकिल कूजत प्रमुदित, अलि गूँजत चहुँ ओर ॥
चंद्रभागा चंद्रावलि ललिता, झुलवत कर-कर जोर ।
गावत रिझवत स्याम मीत कों, आनँद सिंधु झकोर ॥
ताल पखावज आवज दुंदुभि, बिच मुरली कल घोर ।
ग्वाल-बाल सब करत मगन मन, तारी दै-दै सोर ॥
उड़त गुलाल अबीर कुसुम जल, कुमकुम रंग निचोर ।
सोभित पवन संग चंचल अति, पीत वसन को छोर ॥
बहु मंदार पुहुप बरसत सुर, वृंदावन की खोर ।
कोटि मदनमोहन गिरवरधर, 'रसिकराय' सिरमौर ॥

[४१३] राग देव गंधार

डोल झूलत है, हँसि मुसिकात परस्पर, सुरंग गुलाल लई ।
मूठी भरि कटि तट में राखी छिपाय धरि,
चाहत भर्‌यौ है दृग अँचई ॥
देखौ कहलि अनेक कुसुम पर कैसै दौरत हैं हो अलि वर ।
मानों चले पचसर के सर, नव तिय की लौनी मुख ऊपर ॥
तबहिं चले दई तारी सुंदर, कर बिथके सब नारी नर ।
इहि विधि झूलत हैं री गिरधर, परसत पान कपोल मनोहर ॥
रीझि देत कबहू उर सों उर, मदनमोहन पिय परम 'रसिक' वर ।
कहा कहौं या सुख कौ संगर, बलिहारी हौं या बानिक पर ॥

[४१४] राग सारंग

झूलत डोल राधिका संग ।
गोबरधन परबत के ऊपर, खेलत अति रस रंग ॥
प्रथम खेल राधे मन हुलस्यौ, केसर लिपटत अंग ।
दूजौ खेल रच्यौ चंद्रावलि, अबीर गुलाल सुरंग ॥
तीजौ खेल कियौ ललितादिक, अगिन कुमारी संग ।
चौथौ खेल कियौ वृंदाबन, मोह्यौ 'रसिक' अनंग ॥

[४१५] राग देव गंधार

आज माई झूलत हैं नंदलाल ।
संग राजत बृषभानुनंदिनी, जोरी परम रसाल ॥
श्री गोबरधन सुभग सिखर पर, रच्यौ जु डोल बिसाल ।
कदली कदम केतकी कूज्यौ, बकुल मालती जाल ॥
नूतन नूत प्रबाल रहे लसि, मधुगी सों उरझाइ ॥
कमल प्रसून पराग पुंज भरि, बहत समीर सुहाइ ॥
मधुप कीर कल कोकिल कूजत, रस मकरंद लुभ्याइ ।
सुनि-सुनि स्रवन पुलकि पियप्यारी, रहत कंठ लिपटाइ ॥
निरझर झरत सुगंध सुवासित, रँग-रँग जलहिं अमोल ।
उज्वल कुल कलहंस मंडली, कूजत करति किलोल ॥
जुबती जन समूह मिल गावत, प्रमुदित लोचन लोल ।
बाजत ताल मृदंग होत रंग, बिहँसत चारु कपोल ॥
चोवा चंदन छिरकत भामिनि, अवलोकत रस भाय ।
श्री विट्ठलनाथ आरती उतारत, 'दास' निरखि बलि जाय ॥

फूल-मंडली— [४१६] राग सारग

फूलन की मंडली मनोहर बैठे, मदनमोहन पिय राजत।
प्रसरित कुसुम सुबासित चहुँदिस, लुब्ध मधुप गुंजारत गाजत॥
पहिरै बिविध भाँति आभूषन, पीतांबर बैजंती छाजत।
देखि मुखारबिंद की सोभा, रतिपति आतुर भौ अति भ्राजत॥
एक रूप बहुरूप परस्पर, बरनौ कहा देख मन लाजत।
'रसिक' जु चरन सरोज आसरौ, करिवे कोटि जतन जिय साजत॥

[४१७] राग सारंग

बैठे फूल बंगला लाल।
जुही कनेर गुलाब माधुरी, बिच-बिच कमल रसाल॥
फूलन ही की रची है सैया, फूलन ही की माल।
फूलन ही कौ गहिना पहिरें, सुंदर बर गोपाल॥
क्रीड़त पुहुप भवन नँदनंदन, सोभा बढ़ी अपार।
'दास रसिक' तहाँ बीरी खबावत, प्यारौ देत उगार॥

[४१८] राग सारंग

लालन बैठे कुसुम भवन।
लटपटी पाग बिघूर्नित लोचन, मकर कुंडल सोहें स्रवन॥
सीतलताई सुंदरताई, सौरभ छाइ रही सोभन तन।
कहों कहा रस रूप माधुरी, 'रसिक' पीवत रस प्रमुदित मन-मन॥

[४१९] राग सारंग

बैठे कुसुम मंदिर में दोऊ, पिय प्यारी मिलि हँसत परस्पर।
पुहुँप माल पहिरावत लै-लै, मिस करि परत जाइ पिय उर पर॥
गावत मिलि सारंग राग दोऊ, बिकट तान उपजत है ता पर।
'रसिक प्रीतम' किसोर यह लीला, बारति सखी प्रान सोभा पर॥

[४२०] राग सारंग

बैठे लाल फूलन की पिछबारी ।
सुंदर स्याम सुभगता सीमा, कंठमाल मनहारी ॥
नवल किसोर रसिक नँदनंदन, संग राधिका प्यारी ।
'रसिकराय' प्रभु सब गुन पूरन, सुखनिधि श्री गिरधारी ॥

ग्रीष्मोत्सव— [४२१] राग सारंग

जेठ मास तपत घाम कहाँ कूं सिधारौ लाल,
ऐसी कौन चतुर नारि, वाकौ बीरा लीनौ है ।
नैक तौ कृपा कीजै, हम हू कों दरस दीजै,
जाइयै फिर वाके धाम, जासों नेह नबीनौ है ॥
बाँह पकरि भवन लाई, सैया पर दिये बैठाई,
अरगजा लगाइ अंग, हियौ सीतल कीनौ है ।
'रसिक प्रीतम' कंठ लाय, लीन्हौ रस सों मिलाय,
अरस-परस केलि करत, प्रीतम बस कीनौ है ॥

[४२२] राग सारंग

अँगना आयौ तू साजन, तेरी हौं जैहों रे बलि बलि ।
कीनी महरि मो पर प्यारे,
आये ठीक दुपहरी पाँयनु चलि ॥
एते द्यौस हम यों ही गमाये,
दूती न पठई अमृत बचन मधुरे कहि चलि ।
भयौ उदै मेरो भाग जो तुम आये,
'रसिक' पिय अब कहा करि है ये बिरह दल दलि ॥

[४२३] राग सारंग

देखौ लाल निकुंज भवन छवि ।
लता कुसुम पल्लव छवि छायौ, अतिहि निबिड़ पैंठत नाँही रवि॥
सिंहासन बसनासन सिज्जा, फूलन की तिहिं ठौर रही फबि ।
'रसिक प्रीतम' सुख बिलसौ निसदिन,
लखै न रस विलास कोऊ कवि ॥

चंदन वागा— [४२४] राग बिलावल

नंद-नंदन चंदन पहिरे, नव घन सुंदर केसर रंजित,
प्रीतम प्रीति गहें री ।
जमुना तट निकुंज मंदिर में, संग ब्रज जन मुदित ठहरें री ॥
कुसुमन के बिजना ढुराय, कमल बदन हरि,
हिय तें विरह की खेद हरें री ।
मीठे कंठ 'रसिक' जन गावत, कोकिल कुल कौ गरब हरें री ॥

गंगा-दशहरा— [४२५] राग केदारौ

गंगा पावन नीर बहत, तरि लेहु पातकी हौं कहति ।
नित प्रति हरि जू के चरन कमल, लपटानी ए रहति ॥
सकल सिद्धि जमुना के संगम करि, सब कों देन चहति ।
'रसिकप्रीतम' बिनती तुम सों मेरी,
दीजै दरस जातें हरिपद रेनु लहति ॥

जल-क्रीड़ा— [४२६] राग सारंग

स्याम जमुना बिच खेवत नाव ।
एक सखी आई घर ते, कहै मोही कों बैठाव ॥
बैठों कैसे घाट औघट है, रपट परत है पाँव ।
हाथ पकरि बैठाय आपु ढिंग, 'रसिकन' रच्यौ उपाव॥

खस-खाना — [४२७] राग सारग

बनी रावटी आज अनुपम, नवल उसीर सीतल अति सार ।
बैठे हैं पिय प्यारी दोऊ, पहिर अरगजा सरस सुधार ॥
करत ब्यार नारि नव, ललिता निरखत रूप-सुधा न अघाय ।
'रसिक प्रीतम' जुग केलि करत जल,
जुग-जुग दस दिसि जस रह्यौ छाय ॥

[४२८] राग विहाग

मान न कीजै पिया सों बावरी, उसीर रावटी सघन कुंज ।
नव-दल लता द्रुम सौरभ छाय रह्यौ,
तेरौ मग देखत मधुप टोल गुंजत होय पुंज ॥
एरी हठीली हठ छाँड़ देखि छबीली नारि,
मदन विथा टार बेगि दिखावै क्यों न बदन कुंज ।
चल हँसि प्यारी तू दूती के बचन सुन,
करनि मुकर लिएँ 'रसिक' मुंज ॥

[४२९] राग सारग

देख चल सखी दोऊ उसीर के महल में,
करत भोजन अंस भुजन दिएँ ।
परस्पर देत दोऊ कौर मुख मधुर अति,
हँसत उर लसत रति रसन पिएँ ॥
फूलि रह्यौ मधुर सौरभ सघन कुंज में,
फूल रहे फूल बहु रंग किएँ ।
'रसिक' कौ दास तहाँ कुंज में घूमि रह्यौ,
छबि निरखि नई-नई हिएँ ॥

[४३०] राग विहाग

सखियन रुचि-रुचि सेज बनाई ।
उसीर महल मधि कुसुम रावटी, ग्रीषम रितु दरसाई ॥
अतर गुलाब सुगंध परागन, चंदन केसर सरसाई ।
पौढ़े सुखनिधि 'रसिक सिरोमनि' नागरि कों ललिता लै आई ॥

[४३१] राग विहाग

रैन घटि गई रीं आली ! तोहि मनावत,
तू चट त मट क्यों नहीं होत ।
सघन कुंज मधि रच्यौ खसखानौ आज,
चल क्यों न देखन प्यारी ! अपुनौ सुख क्यों खोत ॥
छूटत फुहारे फुँहों कुसुम सेज चहुँ ओर,
अतर गुलाब की सुगंध सौरभ सोभा देत ।
ऐसी निठुर भई राजकुमारी नबेली नारि,
'रसिक प्रीतम' कौ तू विचार हेत ॥

रथ-यात्रा— [४३२] राग मल्हार

तू मोहि रथ लै बैठि री मैया ।
इतकी ओर बैठि है राधा, उतकी ओर बल भैया ॥
गोप सखा सब संग चलेगे, और गावेंगे गीत ।
मेरे रथ की सोभा निरखत, सुख पावेंगे मीत ॥
ब्रज जन भवन-भवन प्रति ठाड़े, देखन कों मेरी गाड़ी ।
आरति लै कै उतारि है मो पर, ह्वै है मारग आड़ी ॥
सुनत बचन आनंद सिंधु के, मगन जसोदा माई ।
'रसिक' मनोरथ पूरन गोबिंद[1], तजि बैकुंठ ब्रज आई ॥

---

१. 'गोविंद' को नाम-छाप समझ कर यह पद गोविंद स्वामी का भी समझा गया है । देखिये कांकरोली विद्या विभाग द्वारा प्रकाशित 'गोविंद स्वामी' पृ० ८८, पद १७१

[४३३] राग मल्हार

ब्रज में रथ चढ़ि चले री गोपाल।
संग लिएँ गोकुल के लरिका, बोलत बचन रसाल॥

स्रवन सुनत घर-घर ते दौरीं, देखन कों ब्रजबाल।
लेत फेर कर हरि की बलैयाँ, वारत कंचन माल॥

सामग्री लै आवत सीतल, लेत हरषि नंदलाल।
बाँटि देत हैं और लरिकन कों, फूले गावत ग्वाल॥

जै जै कार भयौ त्रिभुवन में, कुसुम परत तिहिं काल।
देखि-देखि उमँगे ब्रजबासी, सबै देत कर ताल॥

यह बिधि नंद द्वार जब आवत, माय तिलक करै भाल।
लै उछंग पधरावत घर में, चलत मंद गति चाल॥

कर न्यौछावर अपुने सुत की, मुकता फल भरि थार।
यह लीला रस 'रसिक' दिवस निस, सुमिरत होत निहाल॥

[४३४] राग मल्हार

मैया ! हौं रथ चढ़ि डोलूँगो।
घर-घर तें सब सँग खेलन कों, गोप सखन कों बोलूँगो॥

मोहि जड़ाय देउ अति सुंदर, सिगरौ साज बनाइ।
करि सिंगार ता ऊपर मोकों, राधा संग बैठाइ॥

घर-घर प्रति हौं जइहौं खेलन, संग लेहुँ ब्रजबाल।
मेवा बहुत मँगाय मोहि दै, फल अति बड़े रसाल॥

सुत के बचन सुनत नंदरानी, फूली अंग न समाई।
सब बिधि करि हरि रथ बैठाये, देख 'रसिक' बलि जाई॥

[४३५] राग मल्हार

रथ चढ़ि चलत जसोदा अंगन ।
बिबिध सिंगार सकल अंग सोहत, मोहत कोटि अनंगन ॥
बालक लीला भाव जनावत, किलकि हँसत नँदनंदन ।
गरें बिराजत हार कुसुम के, चरचित चोवा चंदन ॥
अपने-अपने घर पधरावत, सब मिलि ब्रज़ जुवती जन ।
हरषति अति अरपति सब सरबस, वारति हैं तन-मन-धन॥
सब ब्रज दै सुख आवत घर कों, करत आरती तत छन ।
'रसिक' सदा हरि की यह लीला, बसो हमारे ही मन ॥

कसूमा-छठ— [४३६] राग मल्हार

सब सखी कसूंभा छठहिं मनावौ ।
अपने-अपने भवन-भवन में, लालहिं लाल बनावौ ॥
बिबिध सुगंध उबटनौ लैकै, लालन उबटि न्हवावौ ।
उपरना लाल कसूँमी कुलहे, भूषन लाल धरावौ ॥
यह छबि निरखि-निरखि ब्रज सुंदरि, मन मोदन प्रिय भावै ।
लाल लकुटि कर मुरली बजावें, 'रसिक' सदा गुन गावै ॥

[४३७] रागनी टोडी

चौकी धरी चौक मध्य मज्जन कौ साज कियौ,
भरे धरे कुंभ तहाँ, सीतल उष्नोदक ।
आनंद बिलास सों बिलसे पिय अंग-अंग,
सोभा बिराजै आइ प्रेम कौ प्रेमोदक ॥
मुसिकात-मुसिकात कहत मधुरी बात,
मधुर बचन अति रसिक बिनोदक ।
मज्जन करत प्रान-वल्लभ कों देखें तिय,
सोभा करत अति 'रसिक' रसोदक ॥

श्रावण के झूला— [४३८] राग मल्हार

आईं सकल जुबती मिलि, स्यामा स्याम झुलावन।
निरखत छवि दुलहा दुलहिन की, मन आनंद बढ़ावन॥
कुसुम दाम लै कंठ धरावत, एक लै दरपन लगी दिखावन।
'रसिकदास' प्रभु कों पान खवावत,
मधुर-मधुर गावत, केलि करि लगी रिझावन॥

[४३९] राग मल्हार

ललित लता पर नान्हीं नान्हीं बूँदें परें,
भीजत रंगीले दोऊ प्रीतम प्यारी।
हँस हँस बातें करें, भुज मूल कंठ धरे,
लग्यौ पीतपट तन सुरँग कसूमी सारी॥
बिंब बदन पर रहीं कछु फूँहीं फवि,
उपमा न जात कछु जिय में बिचारी।
'रसिक' उभय उदार, गावत राग मल्हार,
हितु ह्वै सुनि तान देत प्रान बारी॥

[४४०] राग मल्हार

गावत मलार पिय आये मेरे आँगन,
कहा नौछावर करूँ यह औसर।
तन मन प्रान एक रोम पर बार डारूँ,
तौऊ न करत या कृपा की सरबर॥
सुफल करी आज रैन, किये अब सुख सैन,
मुख हू न आवै बैन, उमँगि चल्यौ हियौ भर।
'रसिक प्रीतम' प्रेम बिवस भए,
श्री बल्लभ प्रभु रसिक पुरंदर॥

[४४१] राग विहाग

झूलै री झूलै री झूलै, प्यारौ लाल झूलै।
सुरंग हिंडोरौ रोप्यौ, कालिंदी के कूलै।।
तैसीए सुहाई लागें, द्रुम लता फूलैं।
'रसिक प्रीतम' देखें, मिटीं उर सूलैं।।

[४४२] राग मल्हार

अरी माई नई-नई धरती दुलहिन होय रही,
मेघ मल्हार आये व्याहन।
इंद्र के नगारे बाजे बूँदन के सेहरा,
बादर बराती आये बरन बरन।।
दादुर पपैया बोले कोइल करत रोर, मोर कुहू-कुहू लगे करन।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, रति-पति काम लाग्यौ डरन।।

[४४३] राग ईमन

ललन तौ हौं झूलों, जो तुम हौरै-हौरै झुलावौ।
डरपति हौं घनस्याम मनोहर, अपने अंग लगावौ।।
अब हौं उतरौं तुम झूलौ प्रीतम, जैसैं-जैसैं गाऊँ तैसै गावौ।
'रसिक प्रीतम' पिय सुनहु बीनती, तन की तपन बुझावौ।।

[४४४] राग मल्हार

तौ झूलों तुम संग, हरै-हरै जो झुलावौ।
तुम तौ देत अटपटी बिच-बिच, झूलत मोहि डरावौ।।
राग मल्हार भाँति भाँतिन सों, सुरन बाँधि कै गाय सुनावौ।
'रसिक प्रीतम' सों कहत पियारी,
मोहि तजि चित अनत न लावौ।।

श्रावणी तीज — [४४५] राग मलार

सावन तीज सुहाई, आज सखी ! सावन तीज सुहाई ।
करि सिंगार चली घर-घर तें, नंद-भवन जुरि आईं ॥
जुवति-जूथ मधि राजत राधा, अवलोकन सुखदाई ।
केसरि खोर बिराजत भ्रू पर, मृग मद बेंदी लाई ॥
आभूषन बहु बिधि के सोभित, अंग-अंग झलकाई ।
गोरे तन पर लाल चूनरी, पहिरें छबि अधिकाई ॥
ब्रजरानी आदर दै बोली, खेलो - फूलो माई ।
मेरौ कुँवर कन्हैया झूलै, तुम संग झूलो जाई ॥
बैठी जाइ हिंडोरे राधा, गावत पिय मन भाई ।
'रसिकराय' प्यारी संग झूलत, पुलकि प्रेम लपटाई ॥

[४४६] राग खेमटा

झूलन चलो हिंडोरने बृषभानु - नंदिनी ।
सावन की तीज आई, नभ घोर घटा छाई,
मेघन झरी लगाई, परै बूँद मंदनी ॥
सुंदर कदम की डारी, झूला परचौ है प्यारी,
देखौ कुँवर हहा री, सब दुख-निकंदनी ।
पहरौ सुरंग सारी, मानों विनय हमारी,
मुख चद्र की उजारी, मृदु हास फंदनी ॥
मम मानि सीख लीजै, सुंदरि न देर कीजै,
हम तौ बिलोकि जीजै, तू है गति गयंदनी ।
सोभा लखौ बिपिन की, फूली लता द्रुमन की,
सुन अरज 'रसिक' जन की, करों चरन बंदनी ॥

पवित्रा एकादशी—— [४४७] राग सारंग

सावन सुदी एकादसी अरध रात प्रगट भए,
करुना कर साधन बिन जीव सब उद्धारे ।
आज्ञा दई श्री वल्लभ प्रभु कों ब्रह्म संबंध की,
सब जीवन के पंच दोष नेह भरि निवारे ॥
सेवा करवाय अपनी इनकौ रस भोजन करि,
अधरामृत जूँठन दैकैं परम फल विचारे ।
'रसिक' चरन सरन आस, रहत है निस-दिना वास,
दासन के दास तेऊ भव-जलनिधि तारे ॥

[४४८] राग मल्हार

पवित्रा पहिरि हिंडोरें भूले ।
स्यामा स्याम बरावर बैठे, निरखत ही समतूलें ॥
ललितादिक सब सखी भुलावत, ठाड़ी खंभ अनुकूलें ।
व्रज जन जहाँ-तहाँ मिलि गावत,
नृत्यत प्रेम मगन सुधि भूलें ॥
मंद-मंद घन बरसत तिहि छिन, भूमि सबै सचु पावत ।
कालिंदी तट यह विधि लालन, पसु पंछी सुख छावत ॥
बृंदाबन सोभा यह बरनों, वेद हू पार न पावत ।
श्री वल्लभ पद कमल कृपा तें, 'रसिक' चरन रज धावत॥

श्रावण के हिंडोरे—— [४४९] राग ईमन

सैन काम की लायौ, सो सामन आयौ ।
चलि सखि झूलियै सुरंग हिंडोरे, कीजै स्याम मन भायौ ॥
हाव भाव के खंभ मनोहर, कच घन गगन सुहायौ ।
काम नृपति वृषभाननंदिनी, 'रसिकराय' बर पायौ ॥

[४५०] राग गौड़ी

झूलौ झूलौ हो मन भामिनि, कैसी ए आई रितु सावन।
तैसेई बोलत मोर बोल सुहाये, तैसी ए दामिनि कोंधावन॥
तैसेई स्याम अभिराम सजल बादर, सादर लागे जुरि आवन।
तैसी ए वृच्छनि छवि तैसी ए हरित भूमि, चित अनुराग बढ़ावन॥
तैसौई बहत सीतल सुगंध पवन, जुबती अति रति उपजावन।
तैसी ए लहलहात लता सकल बन, पिय ढिग ठौर बतावन॥
दादुर सब्द करत चहुँदिसि तें, सुरति रस सोर जगावन।
गरजत घन सुर घोर घुमड़ि करि, पिय आगमहिं सुनावन॥
पहिर सुरंग सारी नारी जुरि आईं, सब अबला तुम्हें झुलावन।
कुंज महल में सुरंग हिंडोरौ, रोप्यौ पिय बैठावन॥
'रसिक प्रीतम' सों यह बिधि भामिनि,
मधुर बचन कहि लागीं मनावन।
बल्लभ पद रज बल्लभीन कों, दीजै त्रिभुवन पावन॥

[४५१] राग मलार

स्याम संग क्यों न हिंडोरे झूलौ।
वरषा रितु नव घन में दामिनि, देखि मान सब भूलौ॥
बोलत मोर दूतिका टेरत, साजहु चलि सिंगार।
इंद्र धनुष बनमाला पठई, पहरि करहु अभिसार॥
पंथ प्रकास करैगी दामिनि, लखि है न कोऊ आन।
गरजत गगन कोऊ न सुनैगौ, नूपुर सुर कल गान॥
बग पंगति यह तुमहिं जनावत, मिलै परम पद संग।
मिलन चलौ जो 'रसिक प्रीतम' सों, मोहत कोटि अनंग॥

[४५२] राग अड़ानो

रंग हिंडोरना झूलन आई, तैसी ए पावन रितु परम सुहाई।
घटा चहुँ ओर छाई, कोकिला सब्द सुहाई,
तैसी ए अधर धर मुरली वजाई ॥
बने दोऊ एक दाई, तानें लेत मन भाई,
रीझि मन मोहनी प्यारी कंठ लगाई।
देवबधू चढ़ि आईं, पुहुप बृष्टि वहु कराईं,
'रसिक प्रीतम' तहाँ बलि-बलि जाई ॥

[४५३] राग मल्हार

हिंडोरें गिरबरधारी झूलें।
वाम भाग राजत श्री राधा, मनमथ नहीं समतूलें ॥
सहचरी जाल दुहूँ दिस ठाड़ीं, बृच्छ-बृच्छ के मूले।
मंद समीर बहत सुखकारी, कालिंदी के कूलें ॥
झोंटा मंद देति ब्रज सुंदरि, मुसुकि-मुसुकि तन फूलें।
'रसिकराय' की सोभा निरखत, देह दसा सब भूलें ॥

[४५४] राग केदारो

स्यामा स्याम मिलि बैठे हैं, हिंडोरे दोऊ झूलत।
रस पीवत परस्पर मिलवत, गरें बाँह धरि झूलत ॥
कबहुक कै आनंद भरि गावत, कबहुक तन की सुधि भूलत।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, अनंग नाँहि समतूलत॥

[४५५] राग मालव

झूलत मदनमोहन राधा संग, गिरिवर पर लागत छवि भारी।
पान खात मुसकात परस्पर, अरुन अधर कुंतल लटकारी ॥
मंद-मंद सुर गावत दोऊ, मालव राग मधुर सुर भारी।
'रसिकदास' प्रभु की या छवि पर, कोटि काम कीजैं बलिहारी ॥

[४५६] राग मलार

झूलत स्यामा-स्याम हिंडोरें।
बरन-बरन फूली द्रुम-बेली, मंद-मंद घन घोरें॥
तैसौई गान करत ब्रज-सुंदरि, हँसत बदन मुख मोरें।
तैसी ए बुंद परत बादर तें, सीतल पवन झकोरें॥
तैसी ए रितु सावन मन-भावन, बोलत कीर - पिक - मोरें।
'रसिक प्रीतम' की या छबि ऊपर, निरखि-निरखि तृन तोरें॥

[४५७] राग मालव

झूलन ललना लाल हिंडोरें, गोबरधन की सिखर सुहाए।
सखियन कुंज रची अति अदभुत, बरन-बरन फल फूल लगाए॥
तैसौई कुसुम बिचित्र हिंडोरौ, झालर झूमक कलस बनाए।
मंद-मंद गावत सबही मिलि, देत झोटका करि मन भाए॥
तैसौई मुरली-नाद करत पिय, अधर सुधा पूरत रस छाए।
'रसिकदास' यह बानिक निरखत, तन-मन अति आनंद बढ़ाए॥

[४५८] राग देव गधार

नख-सिख करि सिंगार प्रिया-प्रिय, झूलत कुंज हिंडोरे आय।
मुख मिलाय दोऊ दर्पन देखत, मधुर-मधुर दोऊ बेनु बनाय॥
आई घटा घुमड़ि चहुँ दिसि तें, चमकति चपला अति छबि पाय।
मंद-मंद घन घोर करत है, बरसत फुही मोद मन लाय॥
इंद्र धनुष पचरंग बिराजत, पग पंगत अदभुत दरसाय।
दादुर मोर चकोर कीर पिक, सारि पपैया पीऊ - पीऊ गाय॥
तैसौई बन प्रफुलित नाना फल, फूलत सौरभ चहुं दिसि छाय।
'रसिकदास' प्रभु कों सब झुलवत, ब्रज बनिता मधुरे सुर गाय॥

[४५९] राग केदारौ

हिंडोरे झूलत अति छवि बाढ़ी।
इत सोहत हरि स्याम मनोहर, उत राधा गुन गाढ़ी ॥
पहिरें सुरंग बसन आभूषन, अरु सोहें वनमाल।
स्याम अरुन सिर धरौ बिमोहन, माया रूप गोपाल ॥
ब्रजनारी हिय हुलसि लेत सुर, ताल अलापि मलार।
मानहु लगत मैन सर अपनी, हरि सों करत पुकार ॥
घन उनये घनघोर गरजि नभ, दामिनि दमकि डरावै।
मानहु बचन त्रास बरषा, राधा हरि आन मिलावै ॥
चहुँदिस मोर सोर स्रवनन करि, सुनत संगम सुखकारी।
बरसत मानों मेघ उमँगि कै, खद्योतन दुख हारी ॥
झूलत मन हुलसात दोऊ, कछु लीला रस सुरताई।
इकटक निरखि-निरखि यह सोभा,
लोभि 'रसिक' बलि जाई ॥

[४६०] राग गौडी

हिंडोरौ ब्रज के आँगन माँच्यौ।
बृंदावन की सघन कुंज में, संकर तांडव नाच्यौ ॥
एक नाचत एक भाव दिखावत, एक गावत सुर साच्यौ।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, महा मोद मन राच्यौ ॥

[४६१] राग पूर्वी

सोहत दोऊ रस भरे रंग महल में, झूलत रंग हिंडोरें।
दोऊ हँसत परस्पर चितवत, अँग-अँग लपटात, बात कहत हौरें॥
सीस सेहरौ लसत रतन कौ, मोतिन लर लटकत चहुँ ओरे।
रति रस लंपट 'रसिकदास' प्रभु,
बेनु बजावत रिझवत करत निहोरें ॥

[४६२] राग पूर्वी

भूलत कुंज महल में दंपति सुरंग हिंडोरें ।
सोड़ष तन करि सिंगार, छूटि रहे बड़े बार,
सोंधे सों सगबगात, उड़त सुगंध झकोरें ॥
सीस सेहरौ गंडन सरवट, नेह नबीन दोऊ कर जोरे ।
'रसिकदास' प्रभु धरत कपोल कर,
तब प्यारी मुसकाय, चितवत है दृग मोरें ॥

[४६३] राग पूर्वी

भूलत दूलह-दुलहिन सुरंग हिंडोर, गाँठि जोर ।
रतन जटित कौ सीस सेहरौ,
मकराकृत अरु चंदन की खौर ॥
मंगल गावत सब ब्रज बनिता, करत परस्पर रोर ।
'रसिकदास' प्रभु कौ मुख निरखत, डारत हैं तृन तोर ॥

[४६४] राग रायसौ

ललित लाल कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ री माई ।
नव दुलहिन राधिका, दूलह स्याम कन्हाई ॥
कुंज महल में हिडोरना, बाँध्यौ परम सुहाय ।
भुलवत हैं सब सहचरी, मिल सब भुंडन गाय ॥
बोलत मोर पपीहरा दादुर सब्द सुहाय ।
यह सुख सोभा देखिकैं, 'रसिकदास' बलि जाय ॥

[४६५] राग मालव

झूलत कुंज हिंडोरे गिरि पर, मनमथ मोहन संग स्यामा जू ।
सारी पचरंग अरु कटि लेहगा, कंचुकी पिय मन अभिरामा जू ॥
पिय सिर मुकट काछिनी कटि पर, पीतांबर गरे बन दामा जू ।
'रसिकदास' प्रभु कों सब झुलवत, पूरन करत सकल कामा जू ॥

[४६६] राग सोरठ

झूलत साँवरे संग गोरी ।
अमित रूप गुन सहज माधुरी, सोभा सिंधु झकोरी ॥
उत सिर मोरमुकट की लटकन, इत वेंदी सिर रोरी ।
कुंडल लोल कपोलन की छवि, इतहिं बनी कच डोरी ॥
नकबेसर मुकता की झाँई, चौंप परी दुहु ओरी ।
'रसिक प्रीतम' वल्लभ कटाच्छ छवि, हाव-भाव चित चोरी ॥

[४६७] राग केदारौ

पिय-प्यारी रस भरे झूलत दोऊ ।
हँसत परस्पर करत बातें, जैसै लखै नहीं कोऊ ॥
उहि समै हुती जे चकई भ्रमरजा, परवस करीं मैन सर मार सोऊ ।
'रसिक प्रीतम' छवि निरखत नैनन, कह्यौ न जाय सुख भयौ जोऊ॥

[४६८] राग अड़ानौ

झूली रंग हिंडोरें अपने प्यारे संग ।
पावस रितु सुखदाई सघन घटान वीच, दामिनि दमकै सुरंग ॥
वग पाँति अति सोहै, देख सबन मन मोहै, ता विधि विलसै अनंग ।
'रसिक प्रीतम' के बिलास-हास बस भई, चल न सकै मानौ पग ॥

[४६९] राग ईमन

मदन मदमाँती हरि संग झूलै, आँकौ भरि मन फूलै ।
कबहुक रस पान करति, कवहुक मुख चुंवति,
कबहुक गावत, कबहुक तन की सुधि भूलै ॥
कबहुक कर निज उरहिं धरि राखत, कवहुक हँसति ठालैं-ठूलै ।
'रसिक प्रीतम' संग इहिं विधि भामिनि, हरत बिरह की सूलै ॥

[४७०] राग विहाग

सघन कुंज में झूलत, सखी भेष कियें।
कंठ भुज डारि दोऊ, लपटाने हियें॥
अधर सुधा पीवत, दोऊ रंग भीने।
उरझर हार दाम, नेह नवीने॥
अर्ध नैन मूँदि प्यारी, पिय तन हेरै।
पुलकित सब अंग, लाज मुख फेरै॥
गावत आनंद भरे, उभय प्रवीने।
'रसिकदास' कौ प्रभु, रति-रस लीने॥

[४७१] राग कान्हरौ

झूलत तेरे नयन हिंडोरें।
स्त्रवन खंभ भ्रू भईं मयार, दृष्टि करन डॉड़ी चहुओरें॥
पटुली अधर कपोल सिंहासन, बैठे जुगल रूप रति जोरे।
बरुनी चँवर ढुरत चहुँदिसि तें, लर लटकत फुँदना चहुँओरें॥
जुरि देखत अलकावलि अलि कुल, लेत सुगंधित पवन झकोरें।
कच घन आढ़ दामिनी दमकत, मानों इंद्र-धनुस अनुहोरें॥
थकित भये मंडल जुबतिन के, जुग ताटंक लाज मुख मोरें।
'रसिक प्रीतम' रस भाव झुलावत,
बिबिध कटाच्छ तान तृन तोरें॥

[४७२] राग केदारौ

रंग भरि झूलत सुरंग हिंडोरें।
उनमद बोलत मोर बिपिन चहुँ ओर, तैसिए दामिनि दमकत,
बिच-बिच गरजत घन सुर घोरें॥
तैसीए पावस रितु लहरति सुहाई, हरित भूमि इंद्र बधू चहुँओरें।
'रसिक प्रीतम' छबि निरखत सखी,
मन होत प्रेम अनंग की झकोरे॥

[४७३] राग ईमन

सघन कुंज की परछाँई, प्रीतम दोऊ झूलत सुरंग हिंडोरें।
दादुर - मोर - पपैया बोलत, सीतल पवन झकोरें॥
तैसेई बरन बरन आये बादर, मंद मंद घनघोरें।
'रसिक प्रीतम' झूलें सुरंग हिंडोरें, निरखि वधू तृन तोरें॥

[४७४] राग ईमन

पावस रितु आनंद भरी, झूली झूली हो पिय संग।
चरन कमल दोऊ खंभ भये, भुज डाँड़ी चारि,
सिर जुरे मयारि, लटकन आभूषन बहुरंग॥
कच घन उनये बदन गगन पर, दमकत दमिनि आढ़,
मानों तिलक इंद्र-धनु भंग।
'रसिक प्रीतम' संग झूलत हिंडोरें इहि बिधि फूली प्यारी,
मोहै कोटि अनंग॥

[४७५] राग विभास

प्रात समै उठि झूलत दंपति कुंज हिंडोरे।
खंडित अधर कपोल नैन दोऊ, उर नख-रेख हार बिनु डोरे॥
मरगजी माल सिथिल अलकावलि, अरुन बने अँखियन बिच डोरे।
'रसिकदास' प्रभु की छबि निरखत,
कोटि काम तृन सम करिहौं रे॥

रतन हिंडोला— [४७६] राग हमीर

रतन जटित हिंडोरे बैठे झूलति है री दंपति।
प्रेम मगन भई ज्यों-ज्यों सखी झुलावत, त्यों-त्यों प्यारी कंपति॥
ज्यों-ज्यों प्यारौ स्रम भरि चितवत, सोतन मुसकाइ मुख झंपति।
'रसिक प्रीतम' गोपाल लाल की छबि,
निरखत कहा फेर सुख संपति॥

[४७७] राग विहाग

झूलत मनिमय कनक हिंडोरे ।
पिय-प्यारी दोऊ रति रस-मानें, सखी रूप स्याम तन गोरे ॥
तैसौई कुंज चहूँदिसि प्रफुलित, तैसौई पवन त्रिविध झकझोरे ।
तैसी ए फुहीं परत थोरी-थोरी, चमकत चपला अरु घन घोरे ॥
बोलत कोकिल मोर मधुर सुर, बिच मुरली कूँजत रब जोरे ।
अति रस लंपट 'रसिकदास' प्रभु, प्यारी सों हँसि करत निहोरे॥

[४७८] नायकी

दोऊ मिल झूलत हैं, दर्पन मनि के हिंडोरे ।
तैसौई कुंज चहूँदिसि प्रफुलित, मनि दीपक चहुँओरे ॥
तैसौई नीर सुखद जमुना कौ, तैसौई त्रिविध पवन झकझोरे ।
तैसी ए चपला चमकत कबहूँ, तैसैई मधुर-मधुर घनघोरे ॥
तैसी ए झुलवत सखी चहूँदिस, सब राजत तन गोरे ।
भूषन बसन सबन तन अदभुत, कही न जात मति थोरे ॥
पिय सिर मुकट काछिनी कटि पर, पीत बसन छबि छोरे ।
प्यारी कटि सारी अति झीनी, कंचुकी उर लैहँगा झकझोरे ॥
भूषन अति अदभुत दोऊन के, हीरन के चितचोरे ।
गज मोतिन की माला बिराजत, कुंडल करनफूल मुख गोरे ॥
कुसुम दाम कर गुच्छ कुसुम के, अँग-अँग सोंधें बोरे ।
प्यारी मधुरे बीन बजावत, पिय मुरली रव जोरे ॥
कोऊ चतुर मृदंग बजावत, कोऊ गावत कल घोरे ।
कोऊक दरपन आन दिखावत, तबहिं हँसत मुख मोरे ॥
कोऊक मेवा आदि आनि बहु, ठाड़ी करति निहोरे ।
आप अरोगत बाँटत सबन कों, बोलत बोल निज ओरे ॥
बोलत बचन परस्पर हित के, श्री मुख सों मुख जोरे ।
काकौ मुख सुंदर कहि ललिता, बोलि स्याम सम गोरे ॥

कोऊक कंचन झारी जल भरि, अँचवावत अति होरै।
कोऊक अंचल सों मुख पोंछत, बीरी देत कर जोरै॥
कोऊक चमर करत चहुं दिस ते, कोउक पंखमोर छोरै।
'रसिकदास' प्रभु की या छबि पर, सर्वस डारत तृन तोरै॥

[४७६] राग नायकी

झूलत पिय प्यारी, रस परबस अभिलाष बढ़ाये।
बातें करत परस्पर रस की, अति मीठे मृदु बोल सुहाये॥
हीरा खचित हिंडोल बिराजत, मनि दीपक चहुँदिस छबि पाये।
झुलवत गावत सब ब्रजनारी, 'रसिकदास' प्रभु सब सुख छाये॥

[४८०] राग विहाग

मनि मंदिर में झूलत दंपति, मनिन खचित हिंडोल सुहाये।
जगमगात मनि दीपक चहुँ दिसि, तैसेई भूषन अंग वनाये॥
दोऊ एक भेष करत आलिंगन, चुंबन गंड अधर रस छाये।
रति रस माँते 'रसिकदास' प्रभु, करत सुरति मन मोद बढ़ाये॥

[४८१] राग नायकी

झूलत अंसनि दै भुज दोऊ, रमकि झमकि प्रीतम संग प्यारी।
दरपन मनि हिंडोल कौ फोंदना, चहुँ दिस मनि दीपक उजियारी॥
स्याम बरन दोऊन तन हीरा, भूषन मोर मुकट लट कारी।
कुसुम दाम कर कमल मधुर सुर, बेनु बजावत अधर सुधारी॥
झुलवत सखी चहूँ दिस कोऊ, कोऊ गावत कोऊ नाचत वारी।
कोऊ चमर करत मुख निरखत, देखें निद्रित प्रीतम - प्यारी॥
आरती करत जुगल छवि निरखत, राई-नोंन नोंछावर वारी।
'रसिकदास' करि दरसन तिहि छिन,
मन आनंद उमँग्यौ अति भारी॥

[४८२] राग विहाग

झूलत रंग महल, रतन हिंडोरें।
सखी रूप धरें प्यारौ, प्यारी बाँह जोरें॥
चुनरी चटक रंग, दोऊन के सोहें।
हीरा के भूषन तन, अति मन मोहें॥
बेनु नाद दोऊ करें, सप्त सुर साजें।
'रसिकदास' के प्रभु, रति रस राजें॥

हरी घटा— [४८३] राग मल्हार

सखी ! हरियारौ सावन आयौ।
हरे-हरे मोर फिरत मोहन संग, हरे बसन मन भायौ॥
हरी-हरी मुरली हरी संग राधे, हरी भूमि सुख दाई।
हरे-हरे बसन राजत द्रुम बेली, हरी-हरी पाग सुहाई॥
हरी-हरी सारी सखी सब पहिरें, चोली हरी रंग भीनी।
'रसिक प्रीतम' मन हरित भयौ है, तन-मन-धन सब दीनी॥

[४८४] राग मल्हार

हरी-हरी कुंज बनी हरी-हरी द्रुम बेली,
हरी ब्रज भूमि हरियारी छाई माई।
हरे-हरे बन राजे, प्रिया प्रियतम भ्राजें,
हरे सिर हरौ मुकट, प्यारी के हरियारी लगी सुहाई॥
हरी-हरी मुरली कर, सप्त सुरन अधर धरें,
गावत मलार राग, तान लेत मन भाई।
हरे-हरे महल बने, हरे-हरे बितान तने,
निरख सोभा दंपति पर, 'हरिदास' बलि जाई॥

[४८५] राग मल्हार

देखौ माई ! हरियारौ सावन आयौ।
हरौ टिपारौ सीस बिराजत, काछ हरौ मन भायौ ॥
हरी मुरली है हरी संग राधे, हरी भूमि सुखदाई।
हरी-हरी बन राजत द्रुम बेली, नृत्यत कुमर कन्हाई ॥
हरी-हरी सारी सखी जन पहिरें, चोली हरी रंग भीनी।
'रसिक प्रीतम' मन हरित भयौ है, सर्वस न्यौछावर कीनी ॥

श्याम घटा— [४८६] राग मल्हार

देखौ माई ! अति बने हैं गोपाल।
तन राजत है स्याम पिछौरा, स्याम पाग धरि भाल ॥
स्याम उपरना स्यामहिं फेंटा, स्याम घटा अति लाल।
'रसिक प्रीतम' अबके जो पाऊँ, गरें सोहै बनमाल ॥

सोसनी घटा— [४८७] राग नायकी

बैठे झूलत दंपति सावन सरस सुहायौ।
पिय सिर पाग लटपटी राजत, सिखी स्तवन मन भायौ।
प्यारी पहिरें सारी सोसनी, सीसफूल छबि पायौ।
'रसिकदास' प्रभु रस बस ह्वै रहे, मुरली कलरव राग सुनायौ॥

गुलाबी घटा— [४८८] राग मल्हार

रही झुकि लाल गुलाबी पाग।
ता पर एक चंद्रिका राजत, लाल तिलक छबि भाग ॥
तैसोई बन्यौ पिछौरा गुलाबी, कोर जरकसी लाग।
हाथ लकुटिया लाल गुलाबी, मुरली सब्द सुहाग ॥
चीर गुलाबी अबहिं राधिका, अपने हाथ सिंगारी।
आप लाल संग रंगीली छबीली, 'रसिकदास' बलिहारी ॥

लाल घटा— [४८६] राग सारंग

नंदलाल लाल टिपारौ, सिर सोहतौ रे लाल ।
बिच फूलन की पाँति, देखत ही मन मोहतौ रे लाल ।।
चंदन खौर रसाल धरी रे लाल ।
ता पर चंदनी चंदक्रांत मन मोहती रे लाल ।।
कुटिल अलक मुख पै झुकी रे लाल ।
नील मेघ आभा केकी छबि छीनती रे लाल ।।
चपल अरुन नैना बने दोऊ लाल ।
तिलक भाल दुति नव आभा रस जोहती रे लाल ।।
भौंह धनुष स्रवनन छुएँ रे लाल ।
मृदु मुसकान प्रान जीवन दुख खोवती रे लाल ।।
कोमल कांति कपोल बने रे लाल ।
कमल अमल सी झलक बिरह दुख धोवती रे लाल ।।
नासा बेसर राजती रे लाल ।
मृग मद तिलक रसाल आनंद समोवती रे लाल ।।
अरुन अधर रस सों भरचौ रे लाल ।
मानों बिंबा फल सोभा चित चोभती रे लाल ।।
ठोड़ी सहज बिराजती रे लाल ।
हीरक भूषन मध्य दमक दुति राजती रे लाल ।।
दुलरी तिलरी कंठ बिराजै कंठसिरी रे लाल ।
अंग-अंग प्रतिबिंब काम की जगमगी रे लाल ।।
हृदै पदक हीरा जरचौ रे लाल ।
मुक्ता फल माला सिंगारन छाजती रे लाल ।।
रतन कर पहौंची बनी रे लाल ।
हीरा पन्ना नीलम लाल जरावती रे लाल ।।

कर मधि अंगद जुग बने रे लाल।
स्याम अंग छवि छटा अनूपम सोहती रे लाल।।
उर सोहै मनि-हार बने रे लाल।
इंद्र धनुष सी छटा चहूँ दिस जोहती रे लाल।।
अति सोहै कटि पातरी रे लाल।
भार किंकिनी अति कोमल लचि जावती रे लाल।।
काछिनी बहु रंग फैलती रे लाल।
नाचत सोभा देती घेर घुमावती रे लाल।।
जंघा पुष्ट सुहावती रे लाल।
हरत काम मद कदली मान घटावती रे लाल।।
चरन जुगल धुनि नूपुर रे लाल।
सुनि सुर-नर मुनि लोगन की मति मोहती रे लाल।।
पद नख छटा प्रभा भरी रे लाल।
मानों चंद समाज जुर्यौ गति त्यागि कै रे लाल।।
इहि बिधि कब हौं देखि हौ नंद लाल।
हरि दरसन लहि जनम सुफल अवरेखि हौ रे लाल।।
प्रान - नाथ करुना करौ हो लाल।
निज जन जनम-जनम की आसा पूरिए हो लाल।।
श्री बल्लभ पद आस रे नंदलाल।
यह सुख सदा-सदा 'रसिकन' कों दीजिए हो लाल।।

[४९०] राग मल्हार

रतन हिंडोरनौ दोऊ मिलि झूलत कुंज दुआर।।
ललित खंभ सु बलित मनिगन, जटित मरुवे मयार।
लाल डांड़ी लाल लालन, जहाँ झुलवति चारि।।
पटुली चित्रनि मिली रचना, केलि छवि विस्तार।
जगमगे अभरन हरन मन, नवल नंद कुमार।।

रंग पाननि झलक आननि, महँक सौरभ अंग।
चपल चख अति तरल कुंडल, अलक बेसरि संग॥
उड़त चीर समीर सब घन, बरषि रंग बिरंग।
गान तान समान सुर अति, जुरे करत विहंग॥
मिले प्रेम मलार भेदन, हंस कोकिल मोर।
चमकि चपला कला लखि, सुनि गरज अति घनघोर॥
लगी सावन झरी, मन भावन सकल सुख रास।
अंग भीजि अनंग रस दोऊ, उलहे रास बिलास॥
निरखि हरषित सहचरी, रस भरी चहुँ दिसि पास।
'रसिक प्रीतम' निरखि सोभा, दें असीस हुलास॥

राग कान्हरी

लहरिया की घटा— [४९१]

झूलत ललना लाल हिंडोरें।
बरन-बरन तन चुनरी पहिरें, चंदबधू चहुँ ओरें॥
कबहू नान्हीं नान्हीं बूंदें डारत, फरकत पीत पिछोरे।
'रसिक प्रीतम' की बानिक ऊपर, डारत है तृन तोरें॥

राग मल्हार

[४९२]

ये मिल झूलत सुरंग हिंडोरे।
राधा नंद कुमार ब्रज जुबती, ठाड़ो हैं भुज जोरें॥
हरि तन चितवत बिच-बिच भुलवत, नयन न पलक परें।
कैसैं कर चित चाय रहें चित, एहै बिचार करें॥
बनमाला पर परत मधुप झुकि, अंचल फेरि निवारें।
घन दामिनि लौं स्याम राधिका छबि, निरखि निहोर निहारें॥
बिबिध रंग सारी पहिरें अंग, बनी नवल ब्रजनारी।
चहूँओर मानों अति सुंदर, ढिग पूतरी सँवारी॥
स्याम जलद सब अंबर छायौ, सोभा भई अपार।
'रसिक प्रीतम' की या जोरी पर, कीयौ सब बलिहार॥

[४९३] राग काफी

एरी सखी, झूलत नवल किसोर, संग लिएँ नव नागरी।
रंग सावन मास हिंडोरना ॥ ध्रु० ॥
एरी सखी, देखन सब मिलि जाँय, चलीं हैं जूथ मिलि आगरी॥

एरी सखी, वृंदावन संकेत, झूलत नटवर साँवरौ।
एरी सखी, काछनी परम रसाल, पहिरें सब गुन आगरौ॥

एरी सखी, देखौं सुंदर स्याम, सीस टिपारौ चूंदरी।
एरी सखी, कुंडल मकराकार, कोटि किरन रवि घूंघरी॥

एरी सखी, सुभग हिंडोरौ देख, फूल खंभ द्वै राजहीं।
एरी सखी, मरुवे 'मयार बनाय, डाँड़ी कलस सुहावहीं॥

एरी सखी, आईं सब व्रजनारि, नँदनंदन के दरस कूँ।
एरी सखी, लाईं भरि-भरि थार, पकवानन बहु सरस कूँ॥

एरी सखी, पहिरें पचरंग चीर, सोभित कंचुकी जरकसी।
एरी सखी, लँहगा परम रसाल, कटि सोहै कनक सी॥

एरी सखी, भूषन बसन अपार, पहिरें सब गज गामिनी।
एरी सखी, ठाड़ीं सब व्रजबाल, मनों घटा बिच दामिनी॥

एरी सखी, झुंडन आईं जुर, गावत सब मिल प्रेम सों।
एरी सखी, काफी राग जमाय, गावत तान तरंग सों॥

एरी सखी, ताल मृदंग उपंग, अनाघात गति बाजहीं।
एरी सखी, दुंदुभी पटह निसान, डिम-डिम झालर साजहीं॥

एरी सखी, कुंजन की छबि देख, फूले कुसुम सुहावहीं।
एरी सखी, करन केतकी गुलाल, मनों मल्लिका भावहीं॥

एरी सखी, जाई जुही कनेर, चंपक फूल गुलाबहो।
एरी सखी, कालिंदी के तीर, फूले कमल तलाब हीं॥

एरी सखी, भ्रमर करत गुंजार, कुंजलता विच भ्रमकहीं।
एरी सखी, सावन घटा सुहाय, तामें बिजुरी चमकहीं॥
एरी सखी, मोर करत हैं सोर, कोयल बोलत कुंज में।
एरी सखी, चातक पिकी समान, गुगरु बोलत तरंग में॥
एरी सखी, सोभा बरनी न जाय, कहत कहें नहीं आवही।
एरी सखी, 'रसिकराय' छबि देख, निरखि-निरखि सुख पावही॥

कसूमी घटा— [४६४] राग अड़ानी

सावन की पूनों मन भामन हरि आये घर,
भूलूंगी पचरंग डोरी, बाँधोंगी हिंडोरे।
पहिरोंगी कसूमी सारी, कंचुकी कसि बाँधों कारी,
हीरा के आभूषन, सोहें अंग गोरे॥
धरिहौं उर कुसुम हार, निरखोंगी बारंबार,
नयन निहार नंदलाल, कछुक बैस थोरे।
'रसिक प्रीतम' संग, सुखद पावस बिलसोंगी,
भेटोंगी साँमल अंग, कंठ भुजा जोरे॥

[४६५] राग मलार

पहरि कसूंभी सारी, पिय संग बैठी प्यारी।
सुरंग हिंडोरें सोभा, लागे अति भारी॥
पिय संग सोहै फेटा लटकि रह्यौ, दाहिनी ओर अति छबि धारी।
अरुन पिछौरा निरखि-निरखि, हरषि झुलावत व्रजनारी॥
स्याम मेघ उनये नये-नये लेत सुर,
गावत सरस तान लाज बिसारी।
'रसिक प्रीतम' संग करत अनंग रंग,
भरी सुख मरजादा भगारी॥

[४९६] राग कान्हरौ

बैठे सुरंग हिंडोरे रंग भरि, दोऊ अंग मिलाइ।
पहिर कसूमी सारी तैसी, तैसी पाग तैसौई बनौ पिछौरा,
जोरि दृगन हँसत-हँसत, उठति बीच गाइ॥
हरि हेरत जब औरन की दिसि, तब उर मिस करि, लेत चुकाइ।
'रसिक प्रीतम' पिय प्यारी की प्रीति यह, जुरी है सहज सुभाइ॥

[४९७] राग मल्हार

नये पवन नये बादर, नयौ साज नयौ नेह,
नई मँहदी हाथ रंग सुरंगी।
नये-नये पिय प्यारी, पहिरें कसूमी सारी,
कंचुकी सोंधे सनी, अलक सँभारत, माँग बनी चंगी॥
नयौ हित नयौ चित नवल लाल सों,
नवल प्रीति बाढ़ी बहुरंगी।
'रसिक प्रीतम' सों मिलै क्यों न भामिनी,
कर राखैं तोहि अर्धंगी॥

[४९८] राग केदारौ

तसीए पावन रितु आई,
तामें झूलत हिंडोरे पिय-प्यारी एक भये।
मंद-मंद गरजत अरु दामिनी दमकत,
कोकिला गावत दादुर सुर देत, घन उमये नये-नये॥
प्रिया कें कसूँभी सारी पिय के पिछौरा पाग,
मुकता आभूषन सब अंग ठये।
'रसिक प्रीतम' की बानिक ऊपर निरखत,
मेरे नैनन के ताप गये॥

[४९९] राग ईमन

झूलत सुरंग हिंडोरे ।
पिय सिर सोहै पाग, ढरकि दच्छिन भाग,
सोहत प्रिया तन कसूँमी सारी, स्याम कंचुकी लसत अंग गोरे ।।
गरजत घन लरजत मन, ताते उझकि-उझकि पिया भरत अँकोरे।
नाचत मोर कोइल पूरति सुर, देखि दामिनी घन नभ जोरे ।।
जुबती झुलावति मधुरे गावति, भावत पिया मन थोरे-थोरे ।
लसत संकेलि ज्यों-ज्यों, खसत अंचर त्यों-त्यों,
मृदुल हँसन मुख मोरे ।।
हरि चितवन चितवत छिन-छिन में,इत उत दृष्टि फिरत कछु और।
चित्र लिखी सी रही ठाढ़ी सब, झुलवत सीतल पवन झकोरे ।।
ये ही समौ मन में जु रहौ अब, बार-बार हरि नेह लै निहोरे ।
श्री बल्लभ पद रज प्रताप ते, 'रसिकराय' रहियत मति भोरे ।।

[५००] राग मलार

हिंडोरें माई झूले गिरधर लाल ।
संग झूलत बृषभान - नंदिनी, बोलत बचन रसाल ।।
पिय सिर पाग कसूँमी सोभित, तिलक बिराजत भाल ।
प्यारी पहरें कसूभी चोली, चंचल नयन बिसाल ।।
ताल मृदंग बाजे बहु बाजत, आनंद उर न समात ।
श्री बल्लभ पद रज प्रताप तें, निरखि 'रसिक' बलि जात ।।

३. संप्रदाय संबंधी

गिरिराज-गौरव— [५०१] राग ईमन

तरहटी श्री गोवरधन की रहियैं ।
नित प्रति मदनगोपाल लाल के, चरन कमल चित लइयें ।।
तन पुलकित ब्रज - रज में लोटत, गोविंद कुंड में न्हइयें ।
'रसिक प्रीतम' हित चित की बातें, श्री गिरधारी सों कहियें ।।

[५०२] राग विहाग

सुख - निधि श्री गिरिराज तरहटी ।
कुंड-कुंड जल अँचवत न्हावत, पुनि-पुनि रज में लेटी ।।
धरत भोग बेझर की रोटी, ऊपर मेवा टेंटी ।
'रसिकदास' जन श्री वल्लभ पद, परम सकल दुख मेंटी ।।

[५०३] राग विहाग

हौं हरिदासवर्य पै वारी ।
सीतल झरना झरत निरंतर, पवन सुगंध परम सुखकारी ।।
वृंदावन के परम मुकट मनि, भक्त जनन के अति हितकारी ।
नंदनँदन क्रीड़त निसि वासर, संग सोभित वृषभान-दुलारी।।
नित श्री वल्लभ-विट्ठल राजत, कोटि कला प्रगटे अवतारी ।
भजनानंद देत निज दासन, पूरन काम त्रय ताप निवारी ।।
जे जन छिन भर रहत तरहटी, ताकी कथा को कहै विस्तारी ।
ज्ञान-बैराग ताकी रज चाहत, सँग डोलति है मुकति बिचारी।।
पूरन भाग पुलिंदनीन कौ, विमल कथा सुक-व्यास उचारी ।
'रसिकदास' जन यह माँगत है, जनम-जनम इनकौ अनुसारी।।

[५०४] राग विहाग

धनि हरिदासवर्य सुख-रासी ।
नंदनँदन कौ परम रमनस्थल, भक्त जनन के प्रेम प्रकासी ॥
पूरन भाग्य पुलिंदनीन के, अकथ कथा गुन सकल निवासी ।
श्री बल्लभ बल्लभी नित क्रीड़त, 'रसिकदास' जन दरसन प्यासी ॥

[५०५] राग विहाग

यह तुमसों माँगों गिरिराइ !
जनमहिं जनम तरहटी बसिवो, ब्रज-रज तजि जिय अनत न जाइ ॥
हरि-सेवा रस पान करों, और श्री भागवत रसना मुख गाइ ।
'रसिकदास' यह जन की प्रतिज्ञा, श्री बल्लभ कुल नित सिर नाइ ॥

यमुना-महिमा-- [५०६] राग रामकली

श्री यमुना जी ! तुम सी और न कोई ।
करहु कृपा मोहि दीन जानि कैं, ब्रज जन श्री बासौ हरि होई ॥
राखौ चरन कमल के नेरे, जनम आपदा खोई ।
यह संसार अपन स्वारथ कौ, सुत बांधव में सगौ न कोई ॥
प्रेम भजन में करत बिघनता, संत सतावै सोई ।
ताकौ संग सुपन नहिं कीजै, दीजै माँगत जोई ॥
यह माँगत बिनती कर तुम सों, हरि - पद प्रीति जु होई ।
'रसिक' कहै सब सुख पावैगौ, जो बपु इनमें धोई ॥

[५०७] राग रामकली

पिय संग भरि रंग करि कलोलै ।
सबन कों सुख दैन, पीय संग करत सैन,
चित्त तब परत चैन जबहिं बोलै ॥

अति ही बिस्वास, सब बात इनके हाथ,
नाम लेतहिं कृपा करी अतोलै।
दरस कर परस कर, ध्यान हीय में धरें,
सदा ब्रजनाथ इन संग डोलै॥
अति ही सुख करन, दुःख सब कौ हरन,
यह लीनौ है परन, दै जु कौलै।
ऐसी जमुना जान, करों तुव गुन गान,
'रसिक प्रीतम' पाय नग अमोलै॥

[५०८] राग रामकली

नैन भर देखि अब भानु-तनया।
केलि पिय सों करै, भँवर तब-तब परै,
काम जलनि भरत आनंद मनया॥
चलत टेढ़ी होहि, लेत पिय अंकौ मोहि,
इन बिन रहत न एकौ छिनया।
'रसिक प्रीतम' रास करत जमुना पास,
मानों निरधन की हौ जु धनया॥

[५०९] राग रामकली

स्याम सुखधाम जहाँ नाम इनके।
निस-दिना प्रानपति आइ हिय में बसै,
जोई गावें सुजस भगतन के॥
यही जग में सार, कहत चित्त बार-बार,
सबन के आधार धन निरधन के।
लेत जमुना नाम, देत अदभुत धाम,
'रसिक प्रीतम' सब जो जन के॥

[५१०] राग रामकली

कहत सुख-सार निरधार करिकै ।
इन बिना ऐसी कौन करहिं सखी,
हरत दुख-द्वंद सुख-कंद भरि कै ॥
ब्रह्म संबंध जब करत हैं जीव कौ,
तब ही इनकी दच्छिन भुजा फरिकै ।
छोर कर सों कर जाय पिय सों कहें,
अति ही आतुर मन में न ये हहरिकै ॥
नाम निरमोल मग लैन कों ऊसिकै,
भक्त राखत हिए हार करिकै ।
'रसिक प्रीतम' की होत जा पर कृपा,
सोई श्री जमुना जी के रूप परिकै ॥

सेवा-भावना— [५११] राग केदारौ

रह्यौ मोहि श्री बल्लभ गृह भावै ।
सुनि मैया! तू मो उर माखन, दूध दह्यौ जु छिपावै ॥
तू अति क्रूर कृपन हौं कहा कहौं, नित प्रति मोहि खिजावै।
मेरौ प्रान जीवन धन गोरस, मोकों नित प्रति भावै ॥
खीर खाँड़ पकवान बिबिध लै, प्रातहिं मोहि जगावै ।
तेल सुगंध लगाय प्रीति सों, ताते नीर न्हवावै ॥
भूषन बसन बिबिध मन भाये, पलटि-पलटि पहिरावै ।
नैना आँजि तिलक दै मृगमद, दरपन मोहि दिखावै ॥
षट रस बिंजन मोहि जिमावै, हित सों बीरा खवावै ।
भौंरा चकई बिबिध खिलौना, लैकर मोहि खिलावै ॥
बिबिध कुसुम अपने कर गुहि कै, माला उर पहिरावै ।
सुख पर्जंक सँभारि मृदुल अति, ता पर मोहि सुवावै ॥

उत्थापन भएँ पहरि पाछिलौ, ब्रज जन दरस दिखावै।
संझा-भोग धरत अति रुचि सों, सैन भोग करि लावै॥
गो-दोहन ग्वालन संग करि कै, मुरली कर जु गहावै।
गायन मिलवन बच्छ बुलावन, ब्रज जन मोद बढ़ावै॥
जनम दिवस आवत जब मेरौ, आँगन चौक पुरावै।
बाजे बाजत बहु बिधि द्वारे, बंदनवार बँधावै॥
डोल झुलवत रथ बैठावत, हिंडोरा - पलना झुलावै।
रितु बसंत जानि जिय अपने, लै सुगंध छिरकावै॥
मेरे गुन गुनियन पै मोकों, सुरन गवाय सुनावै।
हरदि दूध अच्छत दधि कुंकुम, मंगल कलस धरावै॥
मोसों धेनु दिवाय दुजन कों, आसीरवाद पढ़ावै।
केतिक बात कहौं हौ हित की, मोपै कही न आवै॥
मेरे लिएँ पवित्रा राखी, अति सुंदर बनवावै।
सबै रीति ब्रज जन की आपुही, करिके सबहिं सिखावै॥
मेरे प्रादुरभाव दिवस कों, आनंद उर न समावै।
नव दिन नये भोग करि मोकों, हित सों भोग धरावै॥
पलना झुलावत विविध भाँति के, रंग-रंग छवि लावै।
दधि कादों अति करत प्रीति सों, फूले अंग न समावै॥
रावल में राधा मंगल जस, सरस वधाई गावै।
श्री वृषभान भूप कीरति जस, मोहि सुनत अति भावै॥
वामन रूप धर्यौ पृथिवी में, वलि के द्वारें आवै।
तीन पेंड़ धरती जब माँगी, सो हरि कहुँ न समावै॥
लीला दान महा रजनी में, करि सिर मुकट धरावै।
दानीराइ नाम धरि मेरौ, कर में लकुटि गहावै॥
साँझी चीति रतन थारी में, बारत साँझी गावै।
नव दिन नये भोग धरि मोको, विधि सों रीझि रिझावै॥

दसमी विजय जानि रघुबर की, जब अंकुर जु धरावै ।
बहु बिधि पाक सँभारि मुदित मन, दीपदान हु दिखावै।।
सुरभी वृंद न्यौति कुहू की निसि, पुनि-पुनि लाड़ लड़ावै ।
सुरपति मान भंग प्रतिपद दिन, गौ गिरिराज पुजावै ।।

धन तेरस दिन धन धोवन मिस, धन एक मोहि जनावै ।
बिबिध सिंगार भोग रस अरपत, ब्रज भक्तन मन भावै॥
रूप चतुरदसी मंगल दिन लखि, अंग-अंग उबटावै ।
बिबिध भाँति पकवान मिठाई, लै-लै भोग धरावै ।।

सुरभी वृंदन न्यौति कुहू निसि, सुरभी कान जगावै ।
दीपदान दै निसि हटरी में, चौपड़ मोहि खिलावै ॥
प्रात भएँ गोधन - पूजन करि, मलरा ग्वाल गहावै ।
विधि सों अन्नकूट रचि मोकों, गोधन लीला गावै ।।

भाई दोज भावै जमुना कों, विधि सों न्यौति जिमावै ।
बहिन सुभद्रा तिलक करत है, आसिस बचन सुनावै ॥
गोप अष्टमी गाइ चराईं, ग्वालन संग पठावै ।
धौरी धूमर गाय बुलावत, मुरली मधुर बजावै ।।
सीतल नीर सुगंध सुबासित, करि अधिबासन लावै ।
भरि-भरि जल जु न्हवाय सीस पर, मो तन ताप नसावै।।
कातिक सुदी एकादसी कों, सुभ ईख सों कुंज बनावै ।
पाट सुरंग बसन पहिरावै, परम प्रमोद मनावै ॥
सरद पून्यौ है रास दिन मेरौ, नटवर भेष बनावै ।
मोर मुकट पीतांबर कछिनी, मुरली हाथ गहावै ।।
धनुरमास के भोग बिबिध रचि, चीर हरन जस गावै ।
ब्रत चर्या लीला रस अनुभव, गुप्त सो प्रगट दिखावै ।।
पौस मास नौमी कौ सुभ दिन, उच्छव मो मन भावै ।
दैवी जीव उद्धारे मेरे, द्वितीय रूप पधरावै ॥

रितु बसंत जानि जिय अपने, रँग गुलाल छिरकावै।
नवल बुलाय लेत ब्रज ललना, बहु बिधि खेल मचावै ॥
डाँड़ौ रोपन करि पून्यौ दिन, सरस धमारनु गावै।
बहु बिधि हिलमिल चाँचर खेले, छिरकै और छिरकावै॥
सातम पाट उच्छव दिन मेरौ, केसर रंग पुरावै।
सुरंग गुलाल अबीर कुमकुमा, बूका चंदन लगावै ॥
कुंज बनाय प्रीति सों मोहन, माथे मुकट धरावै।
चोवा चंदन छिरकत कुंजन, अदभुत लीला गावै ॥
पून्यौ जहाँ तहाँ छवि प्रगटी, झूमक नाचत आवै।
राति-दिवस रस हो-हो-हो कहि, गारी भाँड़ भड़ावै ॥
भोग राग बहु रचित डोल पर, झोंटा देत दिवावै।
परिवा डोल झुलाय प्रीति सों, भारी खेल खिलावै ॥
द्वितिया पाट सिंहासन रचिकै, तापै मोहि बिठावै।
मरजादा चित लाय श्री बल्लभ, दान देत हरषावै ॥
बिबिध फूल रचि करत मंडली, अदभुत महल बनावै।
कोमल गादी धरी ता ऊपर, लाय मोहि पधरावै ॥
चैत्र सुदी नौमी कौ सुभ दिन, रामचंद्र गृह आवै।
मात कौसिल्या कूँख पधारे, जनम जयंति मनावै ॥
बदि बैसाख एकादसी प्रगटे, श्री बल्लभ मन भावै।
मात इलम्मा करत बधाई, बल्लभ नाम धरावै ॥
सुदी बैसाख सु अक्षय त्रितिया, सीतल भोग धरावै।
चंदन लेप करत अँग-अँग प्रति, पंखा वायु ढुरावै ॥
सुदी बैसाख नृसिंह चतुर्दसी, भक्तन पच्छ दृढ़ावै।
जन प्रहलाद राखि संकटतें, बेद बिमल जस गावै ॥
जेष्ठा पूनौ स्नान जात्रा, जल सीतल लै न्हवावै।
सीतल भोग धरत मन भाए, मो मन ताप नसावै ॥

सुदी असाढ़ दुतिया पुख नक्षत्र, रथ में मोहि बिठावै ।
तुरँग चलत अवनी पै चंचल, राग मल्हारहि गावै ॥
ब्रज भक्तन कों सुख दै गिरधर, भोग अनूपम लावै ।
गोपी जन मन मान्यौ करि कै, सजि आरति उतरावै ॥
ऊषा षष्ठी थाल अनूपम, कुसूँभी साज सजावै ।
बरसत मेघ घोर चहुँ दिस तें, लीला सकल बनावै ॥
सावन घर-घर रचै हिंडोरा, सखी ललितादिक झुलावै ।
पंचरंग बागे बसन रंग-रँग, बहु आभरन धरावै ॥
श्री ठकुरानी तीज हिंडोरा, बरसानौ मन भावै ।
कुंजन-कुंजन झूलि झुलावत, सरस मधुर सुर गावै ॥
पवित्रा एकादसि आज्ञा लै, मन में मोद बढ़ावै ।
ब्रह्म संबंध कियौ श्री बल्लभ, मिसरी भोग धरावै ॥
दैवी जीव उद्धार किये सब, पवित्रा लै पहिरावै ।
भयौ प्रगट मारग बल्लभ कौ, ब्रज जन मोद बढ़ावै ॥
राखी बाँधत बहिन सुभद्रा, मोतिन चौक पुरावै ।
तिलक करत रोरी अक्षत लै, आरति बारति भावै ॥
यह बिधि नित नौत्तम सुख मोकों, बल्लभ लाड़ लड़ावै ।
मै जानू कै बल्लभ जाने, कै निज जन मन भावै ॥
अति मतिमंद कर्म जन कलि के, मिथ्या जनम गमावै ।
'रसिक' कहै श्री बल्लभ कृपा बिन, यह फल कबहु न पावै ॥

[५१२] राग धनाश्री

पूछत जननी कहाँ तें आये ।
मैया ! आज गयौ श्री बल्लभ गृह, बहुतै लाड़ लड़ाये ॥
बिबिध भाँति पट भूषन लै-लै, सरस सिंगार बनाये ।
सीस पाग सिर पेच बाँधि तहाँ, मोर चंद्रिका लाये ॥

बहुत भाँति पकवान मिठाई, विंजन सरस बनाये।
पायस आदि समर्पि भोग मोहि, मेरी लीला गाये॥
प्रेम सहित वल्लभ मुख निरखत, और कछू न सुहाये।
'रसिक प्रीतम' जु कहत जननी सों, आज अधिक सुख पाये॥

नित्य-लीला की सेवा-भावना—

१. मंगलाभोग— [५१३]

प्रात समै उठीं ब्रज बाला। गावति मंगल गीत रसाला॥
करि सिंगार मथन यों धोवें। ठौर ठौर सब दही बिलोवें॥
मथन करें मोहन जस गावें। सुमरि-सुमरि गुन मन सचु पावें॥
माखन मिश्री दह्यौ मलाई। औट्यौ दूध कपूर मिलाई॥
कछुक मनोरथ कों पकवान। थार सजोवति सुंदर बाम॥
नये बसन भूषन हरि लायक। लेंन चली सुंदर सुख दायक॥
अति ही सुरंग खिलौना लीने। बिविध मनोरथ मन में कीने॥
यह बिधि घर-घर तें सब चलीं। नँदनंदन कों देखन अलीं॥
सुख सिज्या पौढ़े हरिराय। बार बारि कें जसुमति माय॥
फिरि झाँकें फिरि फिरि कें आवें। कमल नयन कों नाँहि जगावे॥
ताहि समय आईं ब्रज बाला। मानों मत्तगयंद की चाला॥
नूपुर की धुनि, सुनि नँदराई। चौंकि उठे तब कुँवर कन्हाई॥
निकट गई तहाँ जसुमति माई। वदन देखि कें लेत बलाई॥
बिथुरी अलक लटपटी पाग। पीक कपोल मुख अंजन लाग॥
चंदन उर पर बिन गुन माल। भूषन इत उत परम रसाल॥
यह सोभा निरखत ब्रज बाल। रसमसे नैन देखे नँदलाल॥
जसुमति धाय उछंगहिं लीनों। चूमि बदन उर सीतल कीनों॥
मंगल भोग आनि तब राख्यौ। गिरधर लाल स्वाद सों चाख्यौ॥
माखन मिश्री मेलि चटावै। धौरी कौ पय अति ही भावै॥
दधि की छींट लगीं तन सोभित। मानों उड गन अंबर लोपित॥

लपटानौ मुख जसुमति देखें। अपनौ जनम सुफल करि लेखे ॥
रंजक जमुनाजल सों मुख धोत्रै। पोंछि बदन अंबर सों जोवै ॥
पुनि अँचवाय खवावति बीरी। सकल साज करि लाई अहीरी॥
मंगल की आरती उतारी। सोभा देखि रहीं सब नारी॥
कनक पाट बैठे मन मोहन। लागि रही जसुमति अति गोहन॥
कोऊ हरि कें तेल लगावै। परसत अंग परम सुख पावै॥
कोऊ अंग उबटनौ करें। बिबिध मनोरथ मन में धरें॥
कोऊ बेनी कर में धरें। ता ऊपर पुनि कंगई करें॥
कोऊ कनक घट जल लै रहें। कोऊ पद अंजलै गहें॥
कोऊ जल सों स्नान करावै। अंग बसन करि अति सचुपावै॥
कोऊ तनियाँ अंग पहिरावें। कोऊ सूथन सरस बनावें॥
कोऊ बागौ पटुका करें। कोऊ बहु बिधि भूषन धरें॥
कोऊ कुलह सुरंग धरे सीस। पाग बधावें गोकुल ईस॥
तुम तो हो ब्रजराज लड़ैते। सब सखियन में गुनन बड़े ते॥
मोर चंद्रिका गुंजा हार। ब्रज जन के तुम प्रान अधार॥
पोहोपमाल लै कंठ धरावै। संकेत बन कों ठौर बतावै॥

२ श्रृंगार—

रतन जटित मुरली कर दई। मोहन परम प्रीति सों लई॥
संमुख आय रही ब्रज नारी। दर्पन देखहु कुंज बिहारी॥
तब आई वृषभान कुमारि। छबि पर वारों कोटिक मार॥
हठ करि हरि सिंगार करायौ। बहु बिधि भूषन बसन बनायौ॥
अंजन दृग केसरि की आड़। सब जुबतिन में लाड़िली लाल॥
नख सिख लों सिंगार करायौ। देखि गोपाल परम सचु पायौ॥
मधु मेवा पकबान मिठाई। मुदित जसोमति गोद भराई॥
वे तो हरि मुख कमल निहारें। हरि राधा बिधु बदन उजारे॥
मानहुँ मधुप कमल रस चाख्यौ। कै विधि अमृत मधु बृत भाख्यौ॥
निरखि निरखि फूली ब्रजनारी। हँसि हँसि देत परस्पर तारी॥

३. ग्वाल—

गोपी बल्लभ भोग लै धरयौ। सो तौ भुवन-भुवन प्रति करयौ॥
पुरी दही संधानौ साक। माखन बूरौ बहु विधि पाक॥
सब ही के मन रंजन कारन। प्रेम सहित लीनौ मन भावन॥
मनसा पूरन नंद-कुमार। ठाड़े हैं जसुमति के द्वार॥
मैया मथि-मथि घैया प्यावै। बार-बार उर अंतर लावै॥
लेनौ बढ़े लाल पय पीजै। इतनौ कह्यौ हमारौ कीजै॥
धोरी कौ पय परम रसाल। सात घूंट जो पीवौ लाल॥
बदन धोय बीरा जब लीनौ। तब मैया जु खिलौना दीनौ॥
ठाड़ी रही रोहनी रानी। मीठी बात कहत मनमानी॥
खीर सिरात स्वाद नहिं आवै। ग्रास एक मुख भीतर लावै॥
अति हित सों हरि भोजन कीनों। लालन मैया को सुख दीनों॥
खेलत फिरत सखा संग लीनें। खरिक खोर गिरि गह्वर भीने॥
अति प्रवीन जसुमति के पूत। सबहिन कों मन लीनों धूत॥
चोरी करि सबहिन सुख देत। गोपिन कौ सर्वस हरि लेत॥
कर संकेत बुलाई गोपी। इन तौ सब मर्यादा लोपी॥
सबहिन कौ कीयौ मन भायौ। ता कारन यह ब्रज में आयौ॥
जसुमति सखियन कों जु बुलावै। कमल नैन को कहूँ न पावै॥

४. राजभोग—

देखौ गोपाल कहाँ धों खेलत। कहौ माय बाबा तोहि बोलत॥
भोजन कों बैठे नंदराय। तुम सँग भोजन कर हूं आय॥
जब माता की जानी प्रीति। आय गये गिरिधर लह मीत॥
बैठे आय कनक आसन पर। नंदराय पकरे कर सों कर॥
कनक बरन झारी जमुना जल। भरि दीनीं जसुमति मति उज्जल॥
पनवारी जो यों विस्तार। ता पर धरयौ कनक कौ थार॥
बेला छोटे मोटे भरे। चमचा रत्नजड़ित तहाँ धरे॥

अति विचित्र कुंद की माला। लै आई पहरौ नंदलाला ॥
कर मुरली अरु वेत गहाई। व्रज बनिता निरखें सुख पाई ॥
आरतौ सब बहु बिधि सों कीनौ। सो तौ देख बारनौ लीनौ ॥
जौलों हरि भोजन कर आवे। तौलों सहचरी कुंज बनावें ॥
झोली भरि-भरि पहोप लै आवें। परम प्रीति सों सेज बिछावें।
फूल के महल खंभ चौबारे। फूलन के कलसा अति भारे ॥
फूलन की सैया लै रची। तकिया गेंदुवा फूलन सची ॥
सेज बंद फूलन के करे। रंग-रंग फूलन सों भरे ॥
फूलन की चौकी लै करी। ता पर करवा कुंजा धरी ॥
अंग राग के बेला भरे। अति सुगंध बेला तहँ धरे ॥
पुष्पमाल अति सुंदर करी। सो तौ प्यारी उर पर धरी ॥
फूलन के पंखा लै आवै। सो तौ कमल नैन कों भावै ॥
सकल पदारथ आगै धरे। बिबिध मनोरथ मन में करे ॥
पौढ़े पिय प्यारी के संग। बिबिध भाँति बरषत रस रंग ॥
बहुत भाँति पिय के संग खेली। रस मर्यादा सब लै पेली ॥
स्रमकन सुभग अंग पर आई। रस भरे पौढ़े कुँवर कन्हाई ॥
जाल रंध्र से सहचरी देखें। अपुनौ जनम सुफल करि लेखें ॥

५. उत्थापन—

घंटा नाद भयौ चहुँ ओर। संखन की धुनि भई सब ठौर ॥
धुनि सुनि गोबरधन-धर जागे। मानहुँ प्रेम - सिंधु में पागे ॥
काकड़ी बीज खोवा और पना। केला आम खरबूजा घना ॥
कंदमूल के भाजन भरे। सो तौ कुंज सदन में धरे ॥
गोप अघाने सुरभी देखी। फिर कछु मन में मनसा लेखी ॥
वेनु वेत लै चले कन्हाई। तब सहचरी परम सुख पाई ॥
आगै गोधन पाछै ग्वाल। मध्य बिराजत गिरधर लाल ॥
गो-रज मंडित मुख पर केस। सोभित है अति सुंदर भेस ॥

मनि माला गुंजाफल गरे। गौरी राग बेनु में परे॥
ब्रज बनिता आईं चहुँ कोद। देखत श्रीमुख भयौ प्रमोद॥
गोबिंद गोपन कों सुख दीनों। कछुक मनोरथ मन में कीनों॥
करि सतकार चले आगे तें। करि संकेत गहे पाछे तें॥
अति बिरही सब ब्रज की बाला। घेरि लिये तब मदन गोपाला॥

६. संध्या भोग—

संध्या भोग है ताक नाम। सो तौ लीनौ वाही ठाम॥
नंद भवन में ठाड़े आय। प्रमुदित भई जसोमति माय॥

७ संध्या आरती—

अति हित सों आरती उतारी। कर में लिएँ कनक की थारी॥
भीतर भवन पधारे लाल। आय जुरीं सब ब्रज की बाल॥
कोऊ बड़े सिंगार करावे। कोऊ तेल फुलेल लै आवें॥
कोऊ मर्दन मज्जन करें। बिबिध मनोरथ मन में धरें॥
कोऊ जल लै स्नान करावें। अंग वस्त्र करि अति सचुपावें॥
कोऊ तनियाँ अंग पहिरावें। बहु बिधि भूषन बसन बनावें॥
सेली कंध बेनु कर लाये। हरि जू तबहिं खरिक में आये॥
सहज सिंगार किये अति सोभित। निरखत तन-मन अतिसय लोभित॥
धौरी धूमरि गाय बुलाईं। कजरी पीयरी दौरी आईं।
यह तौ निज भक्तन संकेत। वे सबहिन कों बोलें लेत॥
बिबिध भाँति हरि दोहन करें। सब भासन लै रस सों भरें॥

८. शयन—

ग्वाल भोग लीनों रस रीत। ब्रज बनिता की जानी प्रीति॥
सबहिन कौ कीयौ मन भायौ। जा कारन यह ब्रज मैं आयौ॥
जसुमति भोजन कीनों साज। बेगि आइयौ मोहन आज॥
जमुना जल सों झारी भरी। लै उठाय हरि पाछे धरी॥

दोउ भैया भोजन को आवे । जसुमति कनक थार भी लावें ॥
दार-भात मिरचन कौ साग । हित सों रोहिनि कीनों पाग ॥
दूध-भात अति मोकूँ भावै । डबरा भरि-भरि जसुमति लावै ॥
यह विधि लालन भोजन कीनों । मात जसोमति कों सुख दीनों ॥
कर व्यारू उठे मनमोहन । लागि रही जसुमति अति गोहन॥
औट्यौ दूध कपूर मिलाई । बेला भरिकै रोहिनि लाई ॥
इच्छा भोजन करि सुख पायौ । तब पानी अँचवन करवायौ ॥
अति सुगंध बीरी मुख धरी । पुष्पमाल लै श्री कंठे धरी ॥
करी आरती श्री मुख देख्यौ । अपनौ जनम सुफल कर लेख्यौ ॥
रुनझुन करत अँगुरिया गहै । मात जसोमति सब सुख लहै ॥
सुख सज्या पौढ़े हरिराय । चाँपत चरन जसोदा माय ॥
भाँति-भाँति की कहानी कहै । हरि हुंकारी फिर-फिर लहै ॥
निस लीला कह्यौ कैसें कहें । सो तौ निज जन मन में लहें ॥
नंद भवन की लीला कहें । मानुस देह धरी सुख लहें ॥
श्री गिरवरधर की लीला गावे । 'रसिक' चरन कमल रज पावें ॥

दस उल्लास—

प्रथम उल्लास— [५१४] —चौपाई

श्री पुरुषोत्तमजू कों करों प्रनाऊँ । इनकौ उल्लास परम रुचि गाऊँ ॥
श्री बल्लभ कृपा अनुग्रह करहीं । मो मतहीन सारद सुद्ध धरहीं ॥
एक समै प्रभु अति उल्लासा । देख रूप नख चंद्र प्रकासा ॥
सौरभ गंध तुलसि दल आयौ । इच्छा रमन द्वै रूप मन भायौ ॥

छंद—इच्छा भई द्वै रूप की, तब कोटि मनमथ मोहहीं ।
अकल कला सौंदर्ज सीमा, बाम भाग जु सोहहीं ॥
देख प्रभु सो रूप अदभुत, रमन चित्त बिचारियौ ।
दच्छिन भाग जु और ललना, रस में रस निरधारियौ ॥

जुगल रस कौ रस बढ़ावन, मध्य रूप प्रकासही।
अधिक बढ़तौ घाट आवै, घाट बढ़तौ जाइ सही॥
साम दाम जु भेद इनके, मध्य कौ अधिकार है।
यह उल्लासनि रास रसमय, 'रसिक' मन निरधार है॥

द्वितीय उल्लास— [५१५] —चौपाई

स्व इच्छा के महल बनाये। उनकी सोभा बरनी न जाये॥
वाके गुन नहीं होत हैं न्यारे। इक-इक महल छै ऋतु अनुसारे॥
रतन जटित के छज्जे तिबारी। हाटिक स्फटिक की फुलबारी॥

छद—फूले तरु बेली लता द्रुम, निबिड़ कुंजन रच्च पच्ची।
हंस कोकिल कीर कल रव, पाँति बक दल अलि मची॥
बहति मंद सुगंध सीतल, मोर कुहु कन अति बनी।
रटत पिउ-पिउ सुखद चातक, चकोर चंदा चक्षुनी॥
चकवा रु चकई तीर सरिता, नीर जहाँ झरना झरै।
श्रीपति की सदन सोभा, कौन कछु सरबर करै॥
निज धाम सो गोलोक कहियत, गाय बछरा अति घने।
होत सब्द जु मथन कौ, उल्लास 'रसिक' जु मन गने॥

तृतीय उल्लास— [५१६] —चौपाई

सखी जूथ कौ है विस्तारा। कछु गिनती नहिं आवै पारा॥
मेघ बुंद अरु रवि की किरनी। श्री पुरुषोत्तम लीला बरनी॥
सेस महेस न ध्यान समाधा। कवि जन रंक कहा करै साधा॥
जूथ मुखी की संख्या करहीं। तुच्छ बुद्धि कैसै चित धरहीं॥

छद—धरों कैसै चित्त में करि, थकी बानी जात है।
लीला अप्राकृत प्राकृत चातक, घन न चोंच समात है॥
कोटि साढ़े तीन सुखिया, पुरुसोत्तम निज दास है।
और की को गिनै संख्या, चरन रज की आस है॥

चरन की झंकार सखियन, घोष सब्द जु गाजही ।
चलत अति उत्साह सखिगन, रसन सरिता भ्राजही ॥
पुरुसोत्तम उल्लास कौ कहूँ, वेद पार न पावही ।
मूढ़ कैसे चित्त लावै, 'रसिक' मन न समावही ॥

चतुर्थ उल्लास— [५१७] —चौपाई

बाम भाग सिंगार बखानों । इक रसना मुख कहत न आनों ॥
उनके बसन नीलांबर सारी । स्याम कंचुकी लाल किनारी ॥

छंद—स्याम कंचुकी लाल लैंहँगा, फोंदना मखतूल है ।
सूच्छम कटि पै फबी नीवी, किंकिनी बहुमूल है ॥
देख रूप स्वरूप सुंदर, रमा कोटिक वारियैं ।
श्री पुरुसोत्तम उल्लास कौ रस, 'रसिक' चित्त विचारियैं ॥

पंचम उल्लास— [५१८] —चौपाई

केसर आड़ सु भाल मनोहर । मुक्ता बिंदु बीच मनु ससि कर ॥
नैन विसाल भ्रकुटि मसि बिंद । वदन कमल के ढिंग अलि फंद ॥
स्रवन तरकली मनि की जोति । वैनी जटित जंगाली पोत ॥
द्वै तिन पंचलरी मनि मुक्ता । रतन जटित नग हारन जुक्ता ॥

छंद—रतन पदक सुनहरी चौकी, भीर भूषन फबि रही ।
केस के बिच मनिन मुक्ता, बीच झूमक सों गुही ॥
बाजूबंद जराव फुंदना, पाँति चुरियन की बनी ।
नासा वेसर वलय कंकन, मुद्रिका दरपन अनी ॥
जेहर-तेहर पायल अनवर, बिछुआ महावर छवि किये ।
हस्त मेंहदी मुकुर दीन्हे, चंद्र नख लखि ससि जिये ॥
नख सिखन सिंगार कहाँ लों, कहूँ मति थकि जात है ।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस, 'रसिक' मन ललचात है ॥

षष्ठ उल्लास— [५१६] —चौपाई

नित्य लीला में प्रभु बिराजे। ज्यों जलधार न टूट समाजे ॥
ज्यों सरिता प्रवाह नहीं थामै। अविच्छिन्न धारा तट आवै ॥
कबहुक नृत्य करत कल गानै। कबहुक भक्त करत सनमानै ॥
कबहुक रास क्रीड़ा उद्योती। कबहुक जल क्रीड़ा जु कपोती ॥

छंद-पोत में हरि जूथ बैठे, केवट आपु कहावही।
चलत इत उत बिहँसि मुख, प्यारीहिं पिय जु रिझावही ॥
प्यारी कौ मुख देखै बिना प्रभु, और कछु न सुहात ही।
चंद निरखि चकोर ज्यों, नहीं नैन पलक समातही ॥
कबहुक नव रितु सरद कौ, जस-गान ललना स्वर भरै।
परिपूर्ण ब्रह्म स्वरूप मोहन, सकल कारज अनुसरै ॥
कबहुक निज तांबूल श्री मुख, भक्त मुख में मेलही।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस, 'रसिक' रसमय झेलही ॥

सप्तम उल्लास— [५२०] —चौपाई

जोग सक्ति आवरन जु करहीं। जन भीतर लीला सब धरहीं ॥
गोलाकृति ज्यों रवि की जोति। त्यों माया के तेज उदोत ॥

छंद-तेज पुंज सो जानिकै, निराकार मत कों अनुसरै।
माया संगी जीव दुर्मति, भरम भूलौ पचि मरै ॥
जानै नहीं जो ईस ब्रह्मा, वेद मुख नित गावहीं।
श्री पुरुसोत्तम उल्लास रस लजि, गणितानंद को ध्यावहीं ॥

अष्टम उल्लास— [५२१] —चौपाई

परमानंद उल्लास बढ्यौ जब। जस बंदीजन गान करें सब ॥
रुचि उपजी हरि जू कों भायौ। निकसी ऋचा रूप मुख आयौ ॥

छंद–निकसीं ऋचा जु स्वरूप श्री मुख, सजस गान सुनावहीं।
आप सुनियत मगन है कै, माँगौ वर जु दिवावहीं॥
तव कही बर जो दैन चाहौ, लीला अनुभव सुख गहों।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास को रस, 'रसिक' मन चाहत लहों॥

नवम उल्लास— [५२२] —चौपाई

वाकों हँसि प्रभु जू वर दीनौ। मेरो ही ब्रज मोहि रस भीनौ॥
द्वार प्रगट तुमरे रस मानों। पाछे तें मोहि आधौ जानों॥

छंद–जानों जु आयौ मोहि कों, लीला ये सुख देनी चहों।
यमुना वृंदावन श्री गोवरधन, रस सरस हों नित रहों॥
और सखी षट दस हजारै, वाकों वर दीन्हौ जबै।
वेहू प्रगट जु होंइगी तब, तुम उनहिं सुख देहौ सबै॥
कल्प सारस्वत ब्रज की लीला, पंछी गन करी आस है।
ताही दैवी सृष्टि 'रसिकन', श्री पुरुषोत्तम उल्लास है॥

दशम उल्लास— [५२३] —चौपाई

दैवी सृष्टि उद्धारन कारन। श्री वल्लभ प्रिय मुखी सुधारन॥
बत्तीस लक्ष जीव की गिनती। लीला रस तें भक्त प्रतीती॥
हत चिंता करि तपत बुझावन। आज्ञा भई वल्लभ मन भावन॥

छंद–आज्ञा भई वल्लभहिं, ब्रह्म संबंध तुम जु करावहू।
सकल दुष्कृत दूरि करि, सेवा प्रयत्न जतावहू॥
श्री गोवरधन गिरि कंदरा में, देवदमन कहावहीं।
आपु सेवा करि कराओ, प्रगट लीला दिखावहीं॥
पवित्रामाल उर धारि बस करि, जीव लक्ष बत्तिस तरे।
गिरिराज धर कौ रूप पीयुष, पियत नैना दुख हरे॥
श्री गोवरधनधर की यह लीला, हृदय मेरे रमि रहौ।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस, 'रसिक' जन मिलि नित कहौ॥

श्री बल्लभाचार्य जी की जन्म-बधाई—

[५२४] राग देवगधार

भूतल महा महोच्छव आज ।
श्री लछमन घर प्रगट भए हैं, श्री बल्लभ महाराज ॥
आज्ञा दई दय करि श्री हरि, पुष्टि प्रगटिबे काज ।
कलि में जनम उधारयौ तत छिन, बूढ़त बेद जहाज ॥
आनंद मूरति निरखत नैनन, फूले भक्त समाज ।
नाचत गावत बिबस भए सब, छोड़ि लोक कुल लाज ॥
घर-घर मंगल बजत बधाई, सजत नये सब साज ।
मगन भये सो गिनत नकाहू, तीन लोक पर गाज ॥
लीला सिंधु महारस उमगत, बँधी प्रेम की पाज ।
'रसिकन' के सिर सदा बिराजौ, श्री बल्लभ सिरताज॥

[५२५] राग कान्हरौ

श्री लछमन गृह ढोटा जायौ, घर-घर बजत बधाई ।
माधौ मास, कृष्ण पक्ष सुभ दिन, एलंमा सुखदाई ॥
घर-घर बंदनमाल साथिए,घर-घर मोतिन चौक पुराई ।
घर-घर ते नर-नारी गावत, लागत खरी सुहाई ॥
घर-घर ते सब माँगत बंदी, भीर भई अति सोभा छाई।
जयति-जयति जय सब्द उच्चारैं, दास 'रसिक' बलि जाई॥

[५२६] राग सारग

कलि में जीवन-बल्लभ प्रगटे ।
गति न हुती जे कहुँ अधमन को, अब सब पाप कटे ॥
करी जु कृपा धरि कै कर मस्तक, कीने अपुने दास ।
अस दयाल पूरन पुरुषोत्तम, दास 'रसिक' भली आस ॥

[५२७] राग सारंग

श्री बल्लभ श्री लछमन गृह, प्रगट भये हैं माई।
काहे कों सोच करति, कर में निधि पाई॥
ब्रज जन की रति मूरति, दई है दिखाई।
दैवी सृष्टि अपनी करि, असुर दल बचाई॥
लीला सब प्रगट करी, सेबकन बताई।
हरि सों हठ भागवत की, टीका प्रगटाई॥
भागन के पूरे तें, जिन कीरति गाई।
'रसिक' सदा लछमन सुत, सेवौ सुखदाई॥

[५२८] राग गौरी

तैलंग-कुल-दीपक प्रगटे, श्री बल्लभ महाराज।
आज्ञा दई कृपा करि श्री हरि, पुष्टि प्रगटिवे काज॥
मुख मूरति प्रगट जब कीनी, निज जन भक्त समाज।
'रसिक सिरोमनि' श्री बल्लभ प्रभु, तीन लोक पर गाज॥

[५२९] राग सारंग

श्री बल्लभ अवनी में प्रगटे, निज जन कृपा निधान री।
प्रभु संबंध कर दैहैं दृढ़ करि, यहि निहचै जिय जान री॥
नंद नँदन सों नाँहीं अंतर, निस-बासर करि ज्ञान री।
'रसिक' कहति लीला दरसै है, यह ठान्यौ है ठान री॥

[५३०] राग सारंग

आज भलौ दिन है री माई, प्रगटे श्री बल्लभ जगभूप।
लछमन गृह अति होत बधाई, मंगल गावत नारि अनूप॥
दान देत मन भायौ लछमन, अधिक दयाल स्वरूप।
'रसिकन' के प्रभु बल्लभ भुवपर, आये भाग्यन निज जन यूप॥

[५३१] राग देवगंधार

भयौ यह श्री बल्लभ अवतार।
प्राची दिस तें चंद्रमा उदयौ, लछमन भूप कुमार।
श्री भागवत गूढ रस प्रगटन, कारन कियौ बिचार।
आज्ञा दई निज यज्ञ पुरुष कों, तातें वह अनुहार॥
हरि लीलामृत सिंधु संपूरित, भक्त हेत बिस्तार।
श्री गोपी जन बल्लभ बल्लभ, करत जु नित्य बिहार॥
ब्रजपति पद सेवन कारन निज, मारग कियौ प्रचार।
जिहि अनुसरत जीव कछु अरपत, कमल बदन स्वीकार॥
बाजे बाजत बीन दुंदुभी, झाँझ मृदंग और तार।
नाचत गावत प्रेम मगन मन, निज जन ठाड़े द्वार॥
जननी मुदित उछंग लिएँ सुत, मुख लखि बारंबार।
अति सुख पावत हियौ सिरावत, बड़भागन जु उदार॥
श्री लछमन नव बधू स्वजन, पहिराये सब परिवार।
भू-देवन कों दिये दान बहु, निगम बिहित अनुसार॥
जाके गुन गन सेस सहस मुख, कहत न आवै पार।
यह फल देहु सदा 'रसिकन' कों, श्री बल्लभ जग - उद्धार॥

[५३२] राग देवगंधार

भाग्यन बल्लभ भूतल आये।
करि करुना लछमन घर कलि में, ब्रजपति प्रगट कराये॥
चिंता तजौ भजौ इनके पद, महा पदारथ पाये।
दास जनन के सकल मनोरथ, पूरेंगे मन भाये॥
साधन करि जिन देह दुखावौ, ये फल रूप बताये।
रहौ सरनि परि दृढ़ मन करि सब, अब आनंद बधाये॥
तन-मन-धन न्यौछावर इन पर क्यों नहीं देहु ओढ़ाये।
'रसिकदास' बड़भागी जे, ते श्री बल्लभ गुन गाये॥

[५३३] राग कान्हरौ

प्रगटे पुष्टि महा रस देन ।
श्री बल्लभ हरि भाव अग्नि मुख, रूप समर्पित लैन ॥
नित्य संबंध कराय भाव दै, विरह अलौकिक दैन ।
यह प्रागट्य जु रहत हृदै में, तीन लोक में किये अभैन॥
रखिए ध्यान सदा इनके पद, पातक कोऊ लगै न ।
'रसिक' यहै निरधार निगम मत, साधन और न है न॥

[५३४] राग देवगंधार

भाग्यन श्री बल्लभ जनम भयौ ।
सुद्ध बैसाख कृष्ण एकादसी, पूरन विधु उदयौ ॥
संतन मन माया मत कौ, अति गहवर तिमिर गयौ ।
रस स्वरूप ब्रज भूप भुवन कौ, रूप प्रकास दयौ ॥
सेवक नैन चकोर सदामृत, दरसन रस अचयौ ।
भजन किरन करि पुष्टि भक्ति रस, सब जग माँहि छयौ॥
भाव रूप कों भाव रूप ही, भजन पंथ जतयौ ।
सबै सिराबहु नैन आपुने, दुरलभ पाइ लयौ ॥
रस सिंगार एक बुधि बोधक, विरह ताप नसयौ ।
'रसिकन' के मन बसौ कलानिधि, प्रभु आनंद मयौ॥

[५३५] राग सारंग

प्रगटे श्री बल्लभ सुखदाई ।
फूले डोलत जन सब मन में, अति दुरलभ निधि पाई ॥
घर घर मंगल होत जहाँ तहाँ, द्युति बाढ़ी अति भाई ।
माधौ मास कृष्ण एकादशी, सुभ दिन प्रगटे आई ॥
यज्ञ पुरुष है ये सुत तिहारौ, द्विजन सबके हेत सुनाई ।
जुग जुग राज करौ भक्तन गृह, 'दास रसिक' बलि जाई ॥

[५३६] राग कान्हरौ

आज प्रगट भये श्री बल्लभ राज ।
सुत मुख निरखत अति मनही मन, फूले श्रीलक्ष्मन भट द्विजराज ॥
मंगल कनक कलस धरि नारी, लाईं सब मंगल कौ साज ।
देत दान कंचन मनि मानिक, पूरे सब के मन के साज ।
नाचत गावत करत कुलाहल, गिनत नहीं मन राजा-राय ।
श्री ब्रजपति प्रिय सदा बिराजौ,
'दास रसिक' तहाँ बलि-बलि जाय ॥

[५३७] राग आसावरी

दिनमनि श्री बल्लभ उदयौ ।
श्रुति पथ कियौ प्रकास अवनि तल, माया तिमिर गयौ ॥
विदुष वृंद उड़गन ही देखियत, त्रसित उलूक भयौ ।
रास रसिक लीलामृत सागर, आपु दिखाय दयौ ॥
करि करुना निज जन उद्धारन, भक्ति नैम जु लियौ ।
अनल कृपा तें मधुकर 'हरिजन', वह मधुपान कियौ ॥

[५३८] राग नट

सब मिल गावो गीत बधाई ।
श्री लछमन गृह प्रगट भये हैं, श्री बल्लभ सुखदाई ॥
उघरे भाग सकल भक्तन के, पुष्टि भक्ति प्रगटाई ।
जसुमति सुत निज सुख देवे कों, मुख मूरति प्रगटाई ॥
अति सुंदर बिधु बदन बिलोकत, सकल सोक बिनसाई ।
कहत फिरत सबहिन सों फूले, आनंद उर न समाई ॥
अर्थ भागवत प्रगट करन कों, भागनि दई है दिखाई ।
भई न कबहु होइ नहीं ऐसी, जैसो अब निधि पाई ॥
सदा बिराजो सीस हमारे, यह मूरति मन भाई ।
चरन रेनु सेवक कौ सेवक, 'दास रसिक' बलि जाई ॥

[५३९] राग सारंग

रति पथ प्रगट करन कों प्रगटे, करुनानिधि श्री वल्लभ भूतल ।
हुलसे सकल दैवीजन के मन, साधन विन हम पावहिंगे फल ॥
माया मत कौ तिमिर नसायौ, पंथ दिखायौ वेद वचन वल ।
इहिं मारग जे दृढ़ तिन्हकों हरि, मेलत मुख फल पत्र कुसुम जल ॥
सींचत वचन सुधा करि सेवक, मारग रिपु दाहे वचनानल ।
सेवा रस सागर प्रगटायौ, वदन अनल तें अतिसै सीतल ॥
उपजत ताप छिनक सानिधि में, देत विरह आनंद रस केवल ।
देखौ संत विचार चारु चित, ये गोकुलपति हैं यहि निश्चल ॥
दै चरनोदक दोस निवारे, सूवे किये काल कलि के खल ।
'रसिक' भजत नित श्री वल्लभ पद,
ते वड़भागि सदा मन निरमल ॥

[५४०] राग सारंग

सहेली आज मंगल हो महा मंगल, प्रगट भये प्रभु बल्लभ राई ।
चलो हो वधावन सव मिलि जैये,
श्री लक्ष्मन गृह मंगल आज वधाई ॥
नाचत गावत करत कुलाहल, आनंद उर न समाई ।
प्रेम मगन तन की सुधि भूली, देत दान कंचन वारत न अघाई ॥
आईं सव मिल करत वधाई, भीतर लई बुलाई ।
आओ कहि कहि आसन दीन्हे, अति सनमान कराई ॥
घर-घर वाँधी वंदनमाला, चंदन भवन लिपाई ।
मोतिन चौक पुराये वहुविधि, चित्र विचित्र सोभा कही न जाई ॥
देत आसीस द्विजवर मंत्रन पढ़ि, जय-जय सव्द सुनाई ।
सदा विराजो श्री वल्लभ प्रभु, दास 'रसिक' वलि जाई ॥

[५४१] राग विलावल

झुंडन गावत हैं ब्रज-नारी ।
नव सत साज सिंगार कनक तन, पहैरें झूमक सारी ।।
कचन थार लिएँ जु कमल कर, मंगल साज सँवारी ।
दधि अक्षत अरु श्रीफल कुंकुम, दूब कुसुम माला री ।।
नाचत गावत करत कुलाहल, उठीं देत कर तारी ।
श्री लक्ष्मन गृह खेल मच्यौ है, भीर भई अति भारी ।।
घर-घर बाँधी बंदनमाला, मंगल कलस धुजा री ।
श्री बल्लभ मुख कमल निरख छबि, 'दास रसिक' बलिहारी ।।

श्री बल्लभाचार्य जी का पलना—

[५४२] राग विहाग

पलना झूलत बल्लभ राई ।
प्रेम बिवस गावत हुलरावत, मुदित एलंमा माई ।।
अंग-अंगप्रति अमित माधुरी, नख-सिख भेष बनाई ।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन, सोभा बरनी न जाई ।।
मारग पुष्टि प्रकास करन कों, प्रगट भए भुव आई ।
श्री बल्लभ चरनारबिंद पर, 'दास रसिक' बलि जाई ।।

[५४३] राग अडानौ

श्री बल्लभ झूलत सुरंग हिंडोरे ।
मनिमय खंभ मयार मनोहर, मरुवा रचित हंस सुक मोरे ।।
पटुली परम रसाल पाँच बिच, डाँड़ी दामिनि चमकत चहुँ ओरे ।
कंचन कलस धुजा ता ऊपर, सुख सागर की उठत हिलोरे ।।
झोटा देत सकल तरुनी गन, निरखि-निरखि डारत तृन तोरे ।
कहै 'हरिदास' देख बल्लभ वर, यह छबि बसौ सदा मन मोरे ।।

[५४४] राग आसावरी

मात इलंमा श्री बल्लभ लाडिलौ लड़ावै ।
रतन जटित पौढ़ाय पालने, प्रेम नेह हुलरावै ।।
चरन कमल भक्तन लखि, देत आनँद रस हेत ।
पलना झूलै मुग्ध ह्वै कै, श्री भागवत प्रगट रस निज जन देत ।।
कोमल चरन कमल ठुमकत गति,
श्री लक्ष्मन भट श्री वल्लभ कों निरखि-निरखि छबि आवेस ।
'रसिक दास' बल्लभ रस निरखत, श्री वृंदावन भूमि प्रवेस ॥

श्री बल्लभाचार्य जी का आश्रय—

[५४५] राग सारंग

जो श्री बल्लभ चरन गहैं ।
तो मन वृथा करत क्यों चिंता, हरि हिय आय रहैं ।।
जनम-जनम के कोटिक पातक, छिनही माँझ दहैं ।
साधन जनि साधौ कोऊ कछु, सब सुख सुगम लहैं ॥
कोटि करत अपराध छिमा हरि, सदा नेह निबहै ।
जनि संदेह करौ कोऊ जन, करुनासिधु कहै ।।
अबलौं बिनु सेवें श्री बल्लभ, भव-दुख बहुत सहे ।
'रसिक' महानिधि पायि और फल, मन-बच-क्रम न चहैं ।।

[५४६] राग ईमन

श्री बल्लभ के चरन सरन गहि, क्यों न रहै मन में निस्चय धर ।
बिन साधन ही आय रहैगे, हिए जसोवा-सुत करुनाकर ।।
काहे कों भटकत डोलत है, क्यों न रहै अति आनंद सों भर ।
'रसिक' विस्वास आस फल की करि, अनायास भवसागर कों तर।।

[५४७]   राग सारंग

श्री बल्लभ की हौं बलिहारी ।
बचनामृत सींचत सीतल करि, संसारगत दुख हारी ॥
नव निकुंज मंदिर की लीला, नित प्रति नव सु बिहारी ।
'रसिक' आस मन की मम पूरौ, दासी हौं सु तिहारी ॥

[५४८]   राग सारंग

श्री बल्लभ कौ नाम लेत, श्री बल्लभ कौ ध्यान धरत,
श्री बल्लभ श्री बल्लभ श्री बल्लभ गुन गाऊँ ।
बल्लभ के लेत नाम, पूरन हैं सकल काम,
श्री बल्लभ श्री बल्लभ रटत रहौं अचल पद पाऊँ ॥
श्री बल्लभ महा अति उदार, बल्लभ गृह मम देत बास,
इन्हैं छाँड़ि औरन ध्यावैं सोई अति अभागो ।
'रसिकराय' विनती कीन्हीं 'रसिक दास' स्राप दीन्हीं,
श्री बल्लभ रटत हिए और पंथ त्यागो ॥

[५४९]   राग बिलावल

श्री बल्लभ कहत कहा तेरो जाइ ।
पूरन पुरुषोत्तम तातें पाइयत, और नाहिं उपाइ ॥
भक्त मारग महा निरमल, दैवी जीव सुराइ ।
आइ चरनन धाइ परसो, लिए मन चित लाइ ॥
हस्त कमलन सीस धर कह्यौ, कह्यौ स्रवन सुनाइ ।
अभै देकर दान हीरा, गिरिधरन दियौ बताइ ॥
भए मनोरथ पूरन सब के, प्रानपति जीय भाइ ।

[५५०] राग विहाग

श्री वल्लभ तुम सरनागति आयौ ।
सब दुख दूर गये तुम देखत, सुख कौ पार न पायौ ।।
आज्ञा तें गोबरधनधर की, ब्रह्म-संबंध करायौ ।
लीला-अखिल प्रगट दिखराई, सेवा सुखहिं बतायौ ।।
श्री भागवत सुधा रस मथि कैं, अपनौ पंथ जतायौ ।
ऐसे उग्र श्री लछमन-नंदन, 'रसिकन' के मन भायौ ।।

[५५१] राग केदारौ

श्री बल्लभ दरस दियौ आई ।
तजौं साधन, चरन सीतल, भजौं काहे न जाई ।।
सदा सुमिरौं मदनमूरति, देहुँ दुःख बहाई ।
नयन सीतल करहुँ मुख बिधु, अमृत रस अँचवाई ।।
स्रवन पावन करौं निस-दिन, सुजस गीत सुनाई ।
महा रस किन भरौं रसना, अमित गुन गन गाई ।।
करि कृतारथ करौं अपुने, कमल पद परसाई ।
करत सेवा फिरौ मंदिर, चरन जुग गति पाई ।।
लेहुँ नासा बास माला, पगन सीस नवाई ।
निरखि छबि मुख हुलसि फिरि-फिरि,
'रसिक' बलि-बलि जाई ।।

[५५२] राग केदारौ

श्री वल्लभ नाम रटौं रसना नित,रहौ सुमिरत हिय आठौ जाम ।
देखौं नयन सदा सुंदरता, स्रवन सुनौं कीरति गुन ग्राम ।।
पुहुप प्रसाद सुबास नासिका, लेहुँ उगार बदन रस धाम ।
सेवा करहुँ चरन कर दोऊन, बार-बार सिर करौं प्रनाम ।।
दुख संसार छुड़ावन सुख-निधि, आनंद रूप भक्त बिस्राम ।
'रसिक-सिरोमनि' दीन जानिकै, सीस बिराजौ पूरन काम ।।

[५५३] राग सारंग

श्री बल्लभ मुख कमल की, हौं बलि-बलि जाऊँ ।
सोभा निधि निरखि-निरखि, नैन जुग सिराऊँ ॥
करुनाकर चितवत इत, तब हौं ढिग आऊँ ।
चरन-कमल जुगल परसि, मन में सचु पाऊँ ॥
अपुनौ करि बोलत जब, तब न कहुँ समाऊँ ।
आनंद निधि उमंगि हिए, गुन गन हौ गाऊँ ॥
सेवौं निस दिवस चरन, और फल भुलाऊँ ।
चरन रेनु कंठ भाल, नैन उर लगाऊँ ॥
रूप-सुधा अचवत दृग, नैक नहिं अघाऊँ ।
'रसिक' सुखद बल्लभ कौ, दास नित कहाऊँ ॥

[५५४] राग विहाग

श्री बल्लभ महा सिंधु समान ।
सदा सेवत होत सबकों, अभय पद कौ दान ॥
कृपा जल भरपूरि रह्यौ जहाँ, उठत भाव तरंग ।
रतन चौदह सब पदारथ, भक्ति दस विधि संग ॥
पुष्टि मारग बड़ी नौका, चलत बिना प्रयास ।
ढिग न आवै बुद्धि आसुरि, मकर मीन निरास ॥
सेतु बाँध्यौ जहाँ, प्रगट सुत बिट्ठलेस कृपाल ।
भयौ मारग सुगम सबकों, चलत न नैक न आल ॥
पुष्टि रसमय सुधा प्रगटी, दई सुरन निज दास ।
असुर बंचे मनुज माया, मोहे मुख मृदु हास ॥
छाँड़ि सागर कौन मूरख, भजै छिल्लर नीर ।
'रसिक' मन तें मिटी अविद्या, परसि चरन समीर ॥

[५५५] राग बिलावल

श्री बल्लभ मोहि लेहु उबारि ।
या संसार अनल के जर ते, श्री मुख अनल बिचारि ॥
बिसम विषय जल में बूढ़त हौं, कर गहि लेहु उछारि ।
लगी डाकिनी बड़ी अविद्या, को सकै ताहि उतारि ॥
भूत लग्यौ अभिमान महा दुख, डारत देह पजारि ।
असत संग मिलि भजन ज्ञान सब, तन तें खायौ झारि ॥
काम क्रोध अति लोभ मोह मिलि, छीनि लियौ तन मारि ।
बुद्धि रतन कर हू तें लीन्हौ, दुरमति मनहिं बिगारि ॥
छिन-छिन पीड़त बिरह रावरौ, हिरदौ दाह बिडारि ।
क्यों हू करि काटत हौं कालहिं, रूप गुनन उर धारि ॥
कहौं कहाँ लौं अपुने मन की, सबरी बात उघारि ।
'रसिक' जु बिनती करै, मानियै अपनी ओर निहारि ॥

[५५६] राग कान्हरौ

श्री बल्लभ मधुराकृति मेरे ।
सदा बसौ मन यह जीवन धन, निज जन सों जु कहत हौं टेरे ॥
मधुर बदन अरु मधुर नयन जुग, मधुर भौंह अलकन की पाँति ।
मधुर भाल बिच तिलक मधुर अति,मधुर नासिका कही न जाति॥
अधर मधुर रसरूप मधुर छबि, मधुर-मधुर दोऊ ललित कपोल ।
स्रवन मधुर कुंडल की झलकन, मधुर मकर मानों करत कलोल॥
मधुर कटाच्छ कृपा रस पूरन, मधुर मनोहर बचन बिकास ।
मधुर उगार देत दासन कों, मधुर बिराजत मुख मृदु हास ॥
मधुर कंठ आभूषन भूषित, मधुर उरस्थल रूप समाज ।
अति बिसाल जानू अवलंबित, मधुर बाहु परिरंभन काज ॥
मधुर बक्र कटि मधुर जंघ जुग, मधुर चरन गति सब सुख रास ।
मधुर चरन की रेनु निरंतर, जनम-जनम माँगत 'हरिदास' ॥

[५५७] राग विहाग

श्री बल्लभ लीजै मोहि उबारी ।
या कलिकाल कराल बिषम तें, लागत है डर भारी ॥
तृष्ना तरंग उठत भव सागर, डारत कितै उछारी ।
कर्म भँवर मद मत्सर मोकों, दाबैं देत पतारी ॥
काम-क्रोध और लोभ-मोह, जल-जंतु रहे मुख फारी ।
चरनांबुज नौका नहीं सूझत, बीच अविद्या पहारी ॥
कहौ कहाँ लगि करौं बीनती, विधि न जाय बिस्तारी ।
चरन रैनु सेवक कौ सेवक, कहत है 'रसिक' पुकारी ॥

[५५८] राग विलावल

श्री बल्लभ प्रभु के आसरे, क्यों न रहै परि ।
काहे कों दुख देत है, तन कों साधन करि ॥
यह मन में निश्चय कियौ, पोथी पढ़ि आखरि ।
चरन कमल इनके भजौ, दृढ़ भाव हिएँ धरि ॥
कृपा बिना कोऊ नहीं गयौ, भव-सागर उतरि ।
बिन बिस्वास फल आस तें, मरै काहे तू डरि ॥
अनुभव करि राखी हुती, थिति रही मन भरि ।
'रसिक' देत सिख आप, आनंदनिधि अनुसरि ॥

[५५६] राग मारू

श्री वल्लभ प्रभु अपुनौ दास जनि बिसारौ ।
करुना करि कबहु एक, मेरी दिसि निहारौ ॥
हम तौ अपराध भरे, दास जनि बिचारौ ।
चरन कमल बाँधे हम, छाँड़ि जिन बिडारौ ॥
कहवाये तेरे अब कौन सों पुकारों* ।

* यह पद अपूर्ण

[५६०] राग सारंग

श्री वल्लभ पद कमल के बल, काहू मन न आनों हौं ।
श्री लछमन सुत गुननिधि तजि, अन्य देव न जानों हौं ॥
जे अनन्य सेवक जन, तिन्हहु न पहिचानौ हौं ।
तन मन धन जीवन दै, वल्लभ कर बिकानौ हौं ॥
अब तौ गति और नाँहि, चरन ही लिपटानौ हौं ।
सुमिरत संसार अनल, हिए में बुझानौ हौं ॥
श्री वल्लभ बचनामृत, तजि न और मानौ हौं ।
ता सम नहिं कोउ प्रमान, लोक बेद जानौ हौ ॥
करुना रस उन्मद मन, गिनों न राव रानौ हौं ।
'रसनिधि' श्री वल्लभ सम, नाँहिन जगत छानौ हौ ॥

[५६१] राग ईमन

श्री वल्लभ प्रभु अति दयाल, दीजै दरसन कृपाल,
दीन जान कीजै अपुनौ, दोष जिन बिचारौ ।
हौ तौ अपराध भर्‌यौ, धर्म सबै परि हर्‌यौ,
कीनों न कछु भलौ काज, जाहि चित्त धारौ ॥
दूरि परें पल-पल दुख, पावत हौं प्राननाथ,
तुमही ते होइहै प्रभु, 'रसिक' कौ निवारौ ॥

[५६२] राग सारग

श्री वल्लभ श्री वल्लभ, प्रभु मेरे स्वामी ।
भूलि अब न करहु कोऊ, मनहिं अन्य गामी ॥
सरन परि कृतारथ भए, काम रहित कामी ।
सबहिन के अंतर की, जानें अंतरजामी ॥
अति उदार देत भक्ति, मुक्ति हू अभिरामी ।
'रसिकन' रस तिन्हके, श्री वल्लभ परनामी ॥

श्री बल्लभाचार्य जी का आश्रय

राग भैरव

[५६३]

श्री बल्लभ श्री बल्लभ ध्याऊँ । नाम लेत मन अति सचु पाऊँ ॥
श्री बल्लभ के नाम बिकाऊँ । और न काहू मन में लाऊँ ।
श्री बल्लभ तजि अनत न जाऊँ । चरन सरोज मूल घर छाऊँ ॥
श्री बल्लभ ही के गुन गाऊँ । रूप निरखि निज नैन अघाऊँ ।
श्री बल्लभ के मन जो आऊँ । आनँद फूल्यौ उर न समाऊँ ॥
श्री बल्लभ कों जो हौं पाऊँ । जसुमति सुत कों लाड़ लड़ाऊँ ।
श्री बल्लभ की सरन रहाऊँ । मुक्ति महासुख हू बिसराऊँ ॥
श्री बल्लभ कौ दास कहाऊँ । 'रसिक' सदा यह नेम निभाऊँ ॥

राग विहाग

[५६४]

जिन्ह श्री बल्लभ रूप न जान्यौ ।
जननी उदर आयि कहा कीन्हौ, जनम अकारथ मान्यौ ॥
सकल वेद विधि सकल धर्म निधि, करत जो वेद बखान्यौ ।
कहा भयौ जो सकल सास्त्र पढ्यौ, नाहक फाटौ पान्यौ ॥
अगिन रूप प्रभु सकल सिरोमनि, देत अभय पद दान्यौ ।
'रसिक प्रीतम' के चरन भजत जे, ते सकल पदारथ जान्यौ ॥

राग देवगधार

[५६६] राग कान्हरी

जप तप तीरथ नैम धरम वृत,
मेरें श्री बल्लभ प्रभु जी कौ नाम ।
सुमिरों मन, रसना अहर्निस रटौं,
दुरित कटें सुधरें सब काम ।।
हृदै बसैं जसुदा-सुत के पद, लीला सहित सदा सुखधाम ।
'रसिक' यही निरधार कियौ चित,
साधन तजि भजि आठौ याम ।।

[५६७] राग कान्हरी

जैसौ हौं तैसौ तिहारौ श्री बल्लभ,
अब जिन छाँड़ि देहु मोहि कर तें ।
बाँह गहे की लाज मन धरि हौ,
नाँहि भरोसौ साधन बल तें ।।
तुम तजि और ठौर नहिं मोकों,
जासों कहों जाइ दुख भर तें ।
'रसिक सिरोमनि' श्री बल्लभ प्रभु,
राखौ चरन सरन भव डर तें ।।

[५६८] राग गौरी

कौन सहाय हमारे हरि बिनु ।
करि निज अंगीकार दिखाये, श्री बल्लभ प्रभु के पद रज जिनु ।।
इहिं कलिजुग तजि एक गहै मति, और आसरौ जीवन नाँहिनु ।
अब हौ करत बीनती तुम सों, ऐसी दृढ़ मति रहो मेरी प्रति छिनु।।
तुमही तें निस्तार हमारो, देहु भगाय बिमुख मुख बैरिनु ।
'रसिक' कहै दीजे अब दरसन, तलफत तन यह मेरौ निसदिनु ।।

[५७९]

अरे मन करि विस्वास, धरि आस महाफल-
श्री बल्लभ पद कमल जुगल कों ।
काहै कोहू लावत है रे योंही मन,
चलत नहीं कछु साधन बल कों ।।
कोटि करै जो जतन आपने जाति बड़ी ये,
ते होत सरन बिमल कों ।
मेरौ कह्यौ मान 'रसिक' मूढ़ मति,
दृढ़ करि पकरि सरन पद तल कों ।।

[५७०] राग विहाग

अरे मन श्री बल्लभ गुन गाय ।
वृथा काल काहे कों खोवत, वेद पुरान पढ़ाय ।।
श्री गिरिराजधरन पइवे कों, नाँहिन और उपाय ।
'रसिक' सदा अनन्य होय कै, चित इत-उत न डुलाय ।।

[५७१] राग सारग

अपुनौ करि दिन दिन, श्री बल्लभ मोहि जानि हौ ।
अपुनी दिसि देख कछू, करुना मन आनि हौ ।।
साधन बल नाँहि कछू, यह निस्चै मानि हौ ।
जैसै प्रभु लाज रहै, सोई बिधि ठानि हौ ।।
तुम तजि नहीं जाचों आन, यहै परी बानि हौ ।
अति अधीर मन न रहत, लोक बेद कानि हौ ।।
तुमकों तजि आस कहाँ, अति उदार दानि हौ ।

[५७२] राग भैरव

क्यों न तू श्री बल्लभ के चरन सरन जाहि,
काहे कों अति आरत ह्वै कहत या सों आहि।
इनकौ जो सेवक जन अपराध कोटि भर्यौ,
तजत नाँहि कबहुँ श्री गोकुलपति ताहि॥
कोटि मंत्र अधिक नाम रसना काहे न जपै,
गावै ना सुजस सुदिन परमानँद चाहि।
सिर धरि चरनन इनही कौ सेवन करि,
भवसागर सुगम तरन मुक्ति हू सराहि॥
सुमिरन करि एक बार रूप अधर सुधा सार,
अति दुरूह छिनही में अघ समूह दाहि।
'रसिक' सुखद सीतल पद कमल जुगल भाव धरौ,
सब दुख परिहरौ कोऊ इनकी सरि नाँहि॥

[५७३] राग सारंग

देखौगे कब मोरी ओर।
श्री बल्लभ निज दीन जानि कें, करुना करौ नैनन की कोर॥
कहि हौ कब बचनामृत सीतल, मोकों मुरकि दास तू मोर।
कबहिं कृपाल काढ़ि लेहौ भव जल, बूढ़े कों कर गहि निज जोर॥
निहचें करि मानौं यह मन में, नाँहि न मोसौ सेवा चोर।
बिसै बासना रहत निरंतर, करत बिचार यहै निसि भोर॥
चरन सरन अब गहे ही रहे है,
करि बिस्वास मन बच क्रम तोर।
'रसनिधि' जो जानौ सो कीजै,
तुम तजि हमहिं और नहीं ठौर॥

[५७४] राग मल्हार

देख श्री बल्लभ रूप छटा।
प्रेम कथा रस बरसत चहुँ दिस, उनई नवल घटा॥
चाँपत चरनन दमला निज कर, पौढ़े ऊँची अटा।
'रसिक प्रीतम' श्री बल्लभ जू के, चरनन मन लिपटा॥

[५७५] राग सारग

हौं श्री बल्लभ जी कौ दास। मन न धरत काहू की आस॥
सेवौं चरन रहौं नित पास। भयौ सबन तें आस निरास॥
मेरैं दृढ़ मन में बिस्वास। हौ न डरौं दुरजन उपहास॥
जातें होत हिय भक्ति विकास। पजरि जात पातक ज्यों घास॥
बागधीस पति बच बिस्वास। रसना क्यों करि कहै मिठास॥
काटत हैं दुष्टन कौ पास। 'रसिक' विषय मति होत बिनास॥

[५७६] राग देवगंधार

हौं जन रंक तिहारौ महा प्रभु, और काहू कौ नाँहीं।
बूढ़त हौं दुस्तर भव सागर, पकरि लेहु प्रभु बाँहीं॥
मेरे सर्वस श्री बल्लभ बर, बिनु कछु नाँहिन जान्यौ।
मन बच कर्म विग्यप्ति करत हौ, तुमही सों मन मान्यौ॥
तिहारी बात सबै जिय भावत, और कछू नहीं आवत।
छुधित रहत बन में दिन निगमें, केहरि तृन नहीं खावत॥
स्वाँति बिनु चातक जैसें, करै न महा जल पान।
तैसें मोहि कृपा प्रभु कीजै, और सुनों नहिं कान॥
तिहारे चरन कमल तजि मोकों, और नहीं विस्राम।
मन अटक्यौ श्री बल्लभ बर सों, जपत हौं निसदिन नाम॥
ऐसौ ध्यान रहौ जिय मेरे, कहत हौं गोद पसारि।
श्री बल्लभ पद रज 'हरिजन' कों, लेहै पार उतारि॥

[५७७] राग आसावरी

श्री बल्लभ तजि अपुनौ ठाकुर, कहौ कौन पै जइयै हो ।
सब गुन पूरन करुना-सागर, जहाँ महा रस पइयै हो ॥
मूरति देखि अनंग विमोहित, तन-मन-प्रान बिकाइयै हो ।
परम उदार सकल सुख सागर, आगर हित गुन गइयै हो ॥
सबहिन तें अति उत्तम जानियै, चरनन प्रीति बढ़इयै हो ।
कान न काहू की मन धरियै, ब्रत अनन्य इक गहियै हो ॥
सुमिर सुमिर गुन रूप अनूपम, भव दुख सब बिसरइयै हो ।
मुख बिधु लावन्य अमृत इक टक, पीवत दृग न अघइयै हो ॥
चरन-कमल की सेवा निस-दिन, अपुने हृदै बसइयै हो ।
'रसिक' कहै संगिन सों भवौभव, इनके दास कहइयै हो ॥

[५७८] राग देवगधार

सुमिरे श्री बल्लभ सुख होत ।
बारौं कोटि भानु श्री मुख पर, भयौ जगत उद्योत ॥
दुस्तर भव सागर तरिवे कों, दीनौ निज पथ पोत ।
श्री हरि बदन बन्हि करुना करि, प्रगटे लछमन गोत ॥
जे जन सरन गए श्री बल्लभ, तारे कुल सत एकोत ।
श्री बल्लभ यह सुख जीवन कों, जन 'हरिदास' बिगोत ॥

[५७९] राग भैरव

मन तू श्री बल्लभ जू चरन सरन जाहि ।
काहे कों अति आतुर ह्वै कै कहत परचौ आह ॥
इनकौ जो सेवक जन कोटिक अपराध भर्यौ,
तजें नहीं कबहू श्री गोकुलपति ताहि ।
कोटि मंत्र अधिक नाम रसना काहै बतावै,
गावै न निसदिन बस सुजस परमानंद चाहि ॥

रे सरीर धीरज धर इनही कौ सेवन कर,
भव सागर सुगम तर ए मुक्त हूँ सराहि ।
सुमिरन कर एक बार रूप धर सुधा सार,
आतुर ह्वै छिन ही में अघ समूह दाहि ।।
'रसिक' सुखद सीतल पद कमल जुगल भव धरौ,
सबदुख परिहरौ कोउ इनकी सरि नाँहि ।।

[५८०] राग विहाग

लगै जो श्री बल्लभ पद रंग ।
ताकों दुःसंग नैक नहीं व्यापै, आइ मिलै सतसंग ।।
श्री गोबरधनधरन धीर कौ, ध्यान धरत अँग-अंग ।
'रसिक' प्रीतम की बानिक ऊपर, वारौं कोटि अनंग ।।

[५८१] राग विहाग

मन रे तू श्री बल्लभ कहि रे ।
जो कछु करत कामना जिय में, सो ततछिन लहि रे ।।
सकल सुकृत कौ यहै परम फल, और कछु नहिं चहि रे ।
'रसिक प्रीतम' जू ऐसे प्रभु कों, चरन सरन नित गहि रे ।।

[५८२] राग विहाग

मोहि श्री बल्लभ ही कौ भरोसौ ।
अन्य देव कों जानों न मानों, इनकौ आसरौ खरौ सौ ।।
समझ बिचार देख मन मेरे, बार-बार कहौं तो सों ।
'रसिक' सुधा-सागर कों छाँड़िकै, क्यों पीवत जल ओसौ ।।

[५८३] राग सारग

भजिए श्री बल्लभ पद कमल ।
भूल कछू मन मती बिचारै, सब कौ है यह फल ।
बिन कीन्हें कछु साधन लारत, करि अपने ही बल ।।
'रसिकन' जन सिर सदा बिराजौ, ब्रजपति बदन अनल।।

[५८४] राग भैरव

भोर भयौ भाव सों लै श्री वल्लभ नाम,
हे रसना ! तू और वृथा क्यों वकै निकाम ।
सेवा रस स्वाद पावै, निस दिन गुन गावै,
और सब बिसरावै, यह मन आठौ जाम ॥
हरि बस छिन में होय, फुरै भक्ति मार्ग सर्व,
रूप हृदै बसै, अरु रस-समूह धाम ।
'रसिकन' कछु और कहौ, इनही में भाव धरौ,
अति सुख अनुभव करौ, न पकरौ कुपथ वाम ॥

[५८५] राग विहाग

भजिए श्री वल्लभ के चरन ।
सकल पतित उद्धारन कारन, प्रगट किये अवतरन ॥
गूढ़ श्री भागवत प्रतिपद, प्रगट अरथ जु करन ।
आसरौ कर रहे जे जन, मिटे जनम पुनि मरन ॥
अखिल लीला प्रेम संयुत, दिखाई गिरिधरन ।
'रसिक' बिनती करै, राखौ पद कमल अनुसरन ॥

[५८६] राग आसावरी

प्रीति बँधी श्री वल्लभ पद सों, और न मन में आवै हो ।
पढ़े पुरान षट दर्सन नीके, जो कोऊ कछू बतावै हो ॥
जब तें अंगीकार कियौ मेरौ, आन न प्रान सुहावै हो ।
पाय महारस कौन मूढ़मति, जहाँ-तहाँ चित भटकावै हो ॥
जाकौ भाग फलै या कलि में, सरन सोई जन पावै हो ।
जिन कोऊ करौ भूलि मन संसय, निस्चै करि स्तुति गावै हो ॥
नंद नँदन कों निज सेवक करि, दृढ़ करि बाँह गहावै हो ।
'रसिक' सदा फल रूप जानि कै, लै उछंग हुलरावै हो ॥

[५८७] राग विभास

भोरहिं भोर श्री बल्लभ कहियै।
आनँद परमानंद कृष्ण मुख, सुमिर अष्ट सिधि पइयै।।
और सुमिरौ श्री बिट्ठल गिरिधर, गोबिंद द्विजवर भूप।
श्री बालकृष्ण गोकुलपति रघुपति, यदुपति घनस्याम स्वरूप।।
पढ़ौ सार बल्लभ बचनामृत, अष्टाक्षरहिं जपौ करि नैम।
स्त्रवन कीर्तन तजि निसदिन, सुनो श्री सुबोधिनी धरि जिय प्रेम।।
नंद जसोमति सुत नित सेवौ, प्रेम भक्ति संपति जिय जान।
अन्याश्रय असमर्पित लैनौ, असदालाप असत्संग हानि।।
नैनन निरखौ श्री कालिंदी, निरखौ परम सुखद ब्रजधाम।
यह संपत श्री बल्लभ ते पैयै, 'हरिजन' काहू सों नहिं काम।।

[५८८] राग केदारौ

भूल जिन लाइ मन अनत मेरौ।
रहों निसि दिवस श्री बल्लभाधीस पद,
कमल सों लागि बिन मोल चेरौ।।
अन्य संबंध तें अधिक डरपत रहों,
सकल साधनहुँ ते करि निबेरौ।
देह निज गेह यह लोक परलोक लों,
भजों सीतल चरन छाँड़ि उरझेरौ।।
इतनों माँगत हौ महाराज कर जोरि के,
जैसौ हौं तैसौ अब कहाऊँ तेरौ।
'रसिक' सिर कर धरौ, भव दुःख परिहरौ,
करौ करुना मोहि राखि नेरौ।।

[५८९] राग काफी

श्री बल्लभ मेरे मन बसे हो, मोकों और कछू न सुहाय।
ये सोभा त्रिभुवन में न समाय,
बदन-छबि निरखत मन न अघाय ।।ध्रुव०।।
साखा काकरबार अति सुंदर, सुभग करेली गाम।
माधव मास कृष्ण एकादसी, प्रगटे श्री लछमन धाम ।।
प्राकृत रूप रहित अप्राकृत, धरम सहित साकार।
निगम निरूपित श्री पुरुषोत्तम, बदन अनल अवतार ।।
करि करुना निज महिमा, श्रीहरि प्रगट करन के काज।
स्व बदन अनल रूप आनँदमय, प्रगटे श्री बल्लभराज ।।
दैवी जीव उद्धार करन हित, धरि द्विजवर अवतार।
भूतनाथ प्रगटित मारग ते, नाँहि होत निस्तार ।।
मायावाद बढ्यौ तम भूतल, रवि बिनु नाँहि उजास।
सूर श्री बल्लभ उदै होत ही, श्रुति पथ कियौ प्रकास ।।
श्री भागवत सो प्रतिपद मनिवर, भूषन भूषित अंग।
सकल शास्त्र श्रुति स्मृतिगन मथिकै, किय विरोध कौ भंग।।
श्री भागवत अमृत उदधि रस, निज जन पान कराई।
प्रेम सहित ब्रज जन की सेवा, सिखवत आप बताई ।।
निगम बखानत भूमि स्वर्ग में, अनल तें उदयौ इंदु।
परमानंद रूप होइ प्रगटे, श्री कृष्ण सेवा रस सिंधु ।।
साधन रहित जीव कलियुग के, दैवी जन किए सनाथ।
पकरि बाँह पुरुषोत्तम सोंपे, जन सिर धरि निज हाथ ।।
सूत्र सुभाष्य सुबोधिनी कीनी, नाना ग्रंथ निबंध।
ब्रह्मवाद साकार थापि कै, टार्‌यौ स्वीय प्रतिबंध ।।
कृपा दृष्टि वृष्टि अमृत रस, सींचे दासी-दास।
रोस दृष्टि दावानल सों प्रभु, कीने असुर बिनास ।।

प्राकृत रूप दिखाय प्रानपति, असुर मोह उपजाये ।
श्री लछमन गृह प्रगट होइ, निज जन आनंद बढ़ाये ।।
करि करुना करुनामय श्री प्रभु, देत अभै पद दान ।
बुद्धिहीन जड़ कर्म जीवन कों, टार्‌यौ सब अभिमान ।।
श्री बल्लभ जाकों करें आपुनौ, सो ब्रजपति प्रिय होइ ।
ताके कोटि जनम के पातक, डारत छिनही खोइ ।।
अनुभव निगम ज्ञान तें जाने, श्री बल्लभ राज स्वरूप ।
भूतल भक्ति प्रकास बरन कों, अन्वय किये अनूप ।।
वृंदाबन श्री गोबरधन प्रिय, जमुना तट प्रिय बास ।
कुमुदनी गन मन रंजन कों, सहस्र उडुपती उजास ।।
कालिंदी की महिमा कलि में, करी श्री लछमन सूनु ।
अष्ट सिद्धि याही में पैयत, कहत हैं बचन प्रसूनु ।।
ब्रजपति नख-सिख सकल माधुरी, पूरित अनल स्वरूप ।
मधुर विधान अष्ट के कीर्तन, बस भये गोकुल-भूप ।।
गोकुल नाम सदा सुखदायक, नाम जपत ब्रज-ईस ।
लीला हृदय बसौ निज जन के, यहि बिधि देत असीस ।।
मारग भक्ति समुद्र अगम मथि, प्रगट करे नव रत्न ।।
नव विधि चिंता निज दासन की, किये निवर्त प्रयत्न ।
ब्रह्म संबंध कराय महाप्रभु, पंच जु दोस निबारे ।।
प्रगट दिखायौ निज मारग प्रभु, दैवी जीव उबारे ।
निज आज्ञा उल्लंघन दोष, दिखायौ महाप्रभु आप ।
करि प्रबोध सिखवत दासन कों, हर्‌यौ सकल उर ताप ।।
पुष्टि भक्ति अति वृद्धि करन हित, किये एकादस पद्य ।
स्रवन पठन चिंतन कौ यह फल, प्रभु रति उपजै सद्य ।।
ब्रजपति सुखद बिरह अनुभव कों, सर्व त्याग उपदेस ।
नाम सहस्र नंदनंदन के, कीन्हें प्रगट असेस ।।

सर्ग आदि लीला तें दस विधि, जाकौं निरोध है नाम।
प्रेमासक्ति व्यसन त्रिविध फल, त्रिविध लीला अभिराम॥
पुष्टि प्रवाह मरजादा मारग, तिनहिं दिखायौ भेद।
दैवी जीव कृपा साधन बल, सब प्रमान है वेद॥
सकल संदेह निवारन कों, जल भेद कियौ ब्रज ईस।
भक्ति भाव त्यों नीर सबन के, भेद दिखाये बीस॥
वाल वोध कीने करुनानिधि, वाल जान निज दास।
सब सिद्धांत जनाय जीव कों, हरे सकल उर त्रास॥
देसादिक षट दर्सन साधक, तातें नहिं निस्तार।
दै बरदान किये कृष्नाश्रय, दिये पदारथ चार॥
दृढ़ आश्रय के कारन कीने, धैर्य विवेक बिचार।
कलिजुग जीव उद्धारे श्री वल्लभ, निज जन प्रान अधार॥
क्षर प्रपंच अक्षर तें उत्तम, त्रिगुनातीत महाराज।
श्री हरि बदन जो प्रगट न होते, तौ बूढ़त बेद जहाज॥
दैवी सृष्टि हेतु करुनानिधि, श्रीहरि बाँधी पाज।
अति आवर्त सहित दुस्तर भव, मारग उतरन काज॥
श्रीहरि वल्लभ विमुख जीव सब, बूढ़त है भव सिंधु।
तिनकों निरोध कियौ श्री वल्लभ, निस दिन लहत अनंद॥
कहत निरोध पदारथ कौ यह, सबहिन कौ अज्ञान।
करि लक्षन निरोध बतायौ, सौ लछमन-सुवन सुजान॥
साधन कीने सकल महा प्रभु, निज दासन के काज।
अति कृपालु करुनानिधि वल्लभ, सेवक जन सिरताज॥
निजानंद पुष्टि अति विग्रह, अंबुज नयन बिसाल।
षट गुन सहित पूरन पुरुषोत्तम, निर्मल रसिक रसाल॥
त्रिविध सृष्टि नव लच्छन कीने, धैर्य बिवेक विचार।
साधन हेत मानसी सेवा, पुष्टि पदारथ चार॥

भूमि भाग्य भूषन अति सुंदर, श्री परिबृढ़ मुख छंद ।
आश्रय दान दक्ष अति मोहन, सुखद चरन अरबिंद ॥
सर्व सिद्धांत सिरोमनि मारग, बाँध्यौ श्री गोकुलराय ।
माया तिमिर निबिड़ भूतल में, निरखत ताप नसाय ॥
भक्ति मध्य नव लच्छन नाँहिन, यही रीति विनियोग ।
रंचक वस्तु समर्पित स्नेह सों, ताहि करत प्रभु भोग ॥
ब्रज सुंदरी भाव रस पूरित, आनंद निधि कौ अंग ।
रितु बसंत बिहरत श्री बल्लभ, निरखत लजित अनंग ॥
केसरि धोति उपरना केसरि, केसरि भीनी पाग ।
बल्लभ भवन श्री गिरधर बिहरत, अंतर अति अनुराग ॥
चोबा चंदन अबीर कुमकुमा, उड़त गुलाल सुरंग ।
ताल पखावज रबाव किन्नरी, बाजत सुघर सुढंग ॥
सकल समाज साजि बन बिहरत, बोलत कोकिल कीर ।
त्रिविध पवन बिहरत सुखकारी, सूर-सुता के नीर ॥
अति सुगंध मदमत्त मधुप गन, करत मधुर सुर गान ।
दादुर मोर चकोर रोर मनु, लेत सप्त सुर तान ॥
जो सुख अमर लोक में नाँहीं, सो सुख नित ब्रज माँहिं ।
सुखद सदा सरनागति जिनकी, श्री बल्लभ कल्पतरु छाँहिं ॥
मन-बच-क्रम करि श्री बल्लभ भज, नाँहिन और उपाय ।
साधन कोटि करौ जिन कोऊ, यह फल कबहुँ न पाय ॥
खेलि फाग अनुराग सिंधु बढ्यौ, मची अरगजा कीच ।
निज जन कुमोदिनी गन फूले, श्री बल्लभ ससि बीच ॥
जे जन बदनानल स्वरूप कौ, निस दिन करत्त बिचार ।
पावे सदा आनँद अधरामृत, सब तजि मुक्ति प्रकार ॥
जो यह लीला सुनैं सुनावैं, प्रभु सनमुख करै गान ।
ताके हृदय कमल निरमल बिच, बसि हैं स्याम सुजान ॥
दास अनन्य चरन रज धन की, करत बहुत मन आस ।
श्री बल्लभ पद रज प्रताप तें, गावत जन 'हरिदास' ॥

श्री गोपीनाथ जी की जन्म-बधाई—

[५९०] राग सारंग

आश्विन बदी द्वादसी सुभ दिन, श्री लछमन सुत कें सुत जायौ।
हलधर रूप देख श्री बल्लभ, महा गुनज्ञ गनक बुलवायौ॥
लगन सुधाय सभी गृह सुंदर, मन ही मन अति हरष बढ़ायौ।
कुल प्रोहित बुलवाय हरष सों, मंत्र स्वस्ति बाचन पढ़वायौ॥
जात कर्म अरु नामकरन करि, गोपीनाथ नाम धरवायौ।
देत असीस विप्र मंत्रन पढ़ि, श्री बल्लभ दीनों मन भायौ॥
किये अजाचक गुनी जनन कों, मन बाँछित पूरन करवायौ।
अति उदार श्री लछमन-नंदन, दैत दान सबहिंन मन भायौ॥
श्री अड़ैल पुर में अति आनंद, चहुँदिस उमग्यौ नाँहि समायौ।
बरस्यौ आय चरन-अद्री पर, अनत ठौर काहू नाँहि पायौ॥
घर-घर तोरन बंदनमाला, जय-जय धुनिन हरष उपजायौ।
'रसिकदास' अति दीन हीन मति, कहा जानै रसना रस गायौ॥

[५९१] राग नट

श्री लछमन-सुत घर बजत बधाई।
प्रगटे श्री गोपीनाथ प्रथम सुत, संकरषन बपु माई॥
छंद रूप नर रूप मनोहर, कीनों जग दरसाई।
कोटि अनंग रोम रोमन प्रति, महिमा बेदन गाई॥
अति उदार करुनामय अक्षर, उग्र प्रताप सहाई।
ऐसे जान सरन आयौ, यह 'रसिकदास' सिर नाई॥

[५९२] राग नट

श्री बल्लभ-सुत प्रथम प्रगटे, लीला रस भाव गुप्त,
जै जै श्री गोपीनाथ, भक्तन सुखदाई।
गावत हैं वेद चार, तौहू नहीं आवै पार,
महिमा कोऊ कहि न सकै, बिप्र बंस-राई॥

पुष्टी पथ करन काज, प्रगटे हैं भूमि आज,
गावत सब ब्रज जन मिलि, मंगल मय बधाई ।
'हरिदास' बंस गावै, बहुत कछु बधाई पावै,
देखत तिरलोकी जन, सब बलि-बलि जाई ॥

श्री पुरुषोत्तम जी की जन्म-बधाई—

[५६३] राग नायकी

प्रगटे श्री बल्लभ सुत कें सुत, पुरुषोत्ताम यह नाम ।
आश्विन कृष्ण अष्टमी सुभ दिन, पाय किये सुभ काज ॥
बाजत ढोल दुंदुभी मुरली, बीन मृदंग समाज ।
नृत्य करत नर-नारि मुदित मन, कहत रहौ धरनी पर गाज॥
देव कुसुम बरसावत चहुँ दिसि, जै-जै बोल करै सिर नाम ।
'रसिकदास' कहा बरन सकै गुन, सबहिन के परिपूरन काम ॥

[५६४] राग सारंग

श्री बल्लभ-सुत कें सुन प्रगटे, परिपूरन पुरुषोत्ताम नाम ।
श्री गोपीनाथ निरखि मन फूले, मंगल गावत चहुँ दिस बाम ॥
अति आनंद बढ़्यौ पुर सबही, जै-जै धुनि चहुँ दिसि उपजाइ ।
विप्र वेद धुनि पढत सुरन ते, देत असीस जियौ चिर माइ ॥
श्री गोपीनाथ देत सबहिन कों, पट-भूषन गो भू धन धाम ।
पूरत सकल मनोरथ जन के, 'रसिकदास' कीन्हौ परनाम ॥

श्री विट्ठलनाथ जी की जन्म-बधाई—

[५६५] राग देवगधार

प्रगटे श्री विट्ठलनाथ गुसाईं ।
मास- कृष्णा नौमी दिन, गोकुल बजत बधाई ॥
मोतिन चौक पुराये सुचित्रित, बंदनवार बँधाई ।
कनक कलस धरि कोरन सथिये, अभय धुजा फहराई॥

नाचत नर-नारी प्रमुदित मन, गावत अति उमँगाई ।
बजत निसान भेरि सहनाई, मंगल सब्द सुहाई ।।
अति आदर करि मात अक्का जू, सुंदरि सब पहिराई ।
देत असीस चिर जियौ बल्लभ-सुत, 'रसिक' सदा बलि जाई।।

[५१६] राग सारंग

जहाँ प्रगटे नंद महरि के गेह प्यारे ।
इहाँ श्री बल्लभ देव गृह द्विजवर वपुधारी, मायावाद कों निवारे।।
तब तौ नंदनँदन कहवाये, अब श्री बल्लभ नंदन आये,
कलिजुग में द्वापर की लीला विस्तारे ।
उहाँ वेद लिए उद्धार, इहाँ पुष्टि मारग बारि,
सींचि सुधाश्रय, ताप तें जरत जीव निस्तारे ।।
नंदनँदन श्री बल्लभ नंदन में भेद नहीं कछु, राखौ निरधारे ।
'रसिक' जानें भेद कियौ, सोई जानौ निस्चै दई के मारे ।।

[५१७] राग रायसी

प्रगटे श्री विट्ठलनाथ जू, नागर नवल किसोर ।
मृगमद तिलक बिराज हीं, सोहत चंदन खौर ।।
किरन सकल जग छाइयौ, ज्यों उदयौ रवि भोर ।
कोटि मदन बिधु बारिए, उपमा कों नहीं ओर ।।
स्रवन सुनत सब ब्रजबधू, भवन-भवन तें दौरि ।
गावति सब मन भावती, आवती बल्लभ पौरि ।।
बाजें भेरी दुंदुभी, बिच मुरली धुनि घोर ।
हेरी दै-दै नाच हीं, बीच भुजन भुज जोर ।।
दूध दही मधु खाँड़ लै, केसर सिर तें ढोर ।
मन इच्छा फल पावहीं, देत न आवै छोर ।।
यह सुख सागर देखहीं, 'रसिकन' दृग भये ओर ।
मदनमोहन श्री स्यामा जू, निज जन गन सिरमौर।।

[५९८] राग सारंग

प्रगट भये श्री विट्ठलेस, करुनानिधि पूरन काम,
मेंटौ अपराध ताप, आनँद रस बरसे ।
दैवी सब हरषे मन, बाढ़्यौ अति हिय हुलास,
दौरि-दौरि निकट आइ, चरन कमल परसे ॥
करि कटाच्छ सबहिं देख, दीनों महा उज्वल भाव,
अधर सुधा प्याय-प्याय, कीने सब सरसे ।
ऐसे प्रभु अति उदार, 'रसिकदास' कहा कहै,
जानत हौ सर्व नाथ, तुम तें विमुख तरसे ॥

[५९९] राग देवगधार

भूतल आज महा आनंद ।
पौस कृष्ण नौमी कौ सुभ दिन, प्रगटे त्रिभुवन चंद ॥
श्री विट्ठलनाथ पूरन पुरुषोत्तम, अगनित कीरति छंद ।
नवधा भक्ति प्रकास करन कों, अदभुत पूरन चंद ॥
नख सिख श्री भागवत भाव रस, भूषन लसत अमंद ।
निरखि बदन बिधु निजजन मन के, मिटे सकल दुख द्वंद ॥
दुरलभ यह अवतार भयौ है, सेवहु पद अरबिंद ।
'रसिक' महा रस मत्त भये है, करत पान मकरंद ॥

[६००] राग नायकी

जनम लियौ सुभ लगन बिचारि ।
पौस मास कृष्णा नौमी दिन, प्रगट भये द्विजवर बपु धारि ॥
बाल-बृद्ध नर-नारी प्रफुलित, नाचत-गावत दै कर तारि ।
मनि-मानिक कंचन पट भूषन, बहुतन देत गुनिन कों बारि ॥

बाजत भेरि मृदंग सहनाई, झाँझ झालरी किन्नरि तारि।
देत असीस सूत मागध, बंदीजन गावत गुन बिस्तारि॥
जै जैकार भयौ दस दिस, सुरपुर ते बरसत कुसुम अपारि।
सिव बिरंचि सुक नारद सारद, बार-बार स्तुति करत उचारि॥
मोतिन चौक पुराये बहुविधि, घर-घर बाँधी बंदनवार।
'रसिक सिरोमनि' श्री बल्लभ गृह, गिरिवरधर लीन्हों अवतार॥

[६०१] राग सारंग

श्री बल्लभ कै आज बधाइयाँ।
स्रवन सुनत ब्रजबधू उमँगि कें, झुंडन-झुंडन आइयाँ॥
नाचत गावत करत कुलाहल, मंगल थार सुहाइयाँ।
कनक कलस सीसन पर लीने, फूलीं उर न समाइयाँ॥
कुंकुम अच्छत दूब औ श्रीफल, बहुबिधि साज बनाइयाँ।
दूध दही-माखन और मधु-घृत, भरि-भरि कलस लै आइयाँ॥
ताल मृदंग झाँझ ढप बीना, दुंदुभी नाद कराइयाँ।
मदनभेरि महुवर सहनाई, उमँगि-उमँगि जु बजाइयाँ॥
श्री लछमन सुत अति आनंदित, नर-नारी पहैराइयाँ।
दै असीस जुग-जुग चिरजीवौ, दास 'रसिक' बलि जाइयाँ॥

[६०२] राग सारंग

केसर की धोती कटि, केसरी उपरना ओढ़ें,
तिलक मुद्रा धरें, ठाड़े मंदिर गिरिधर के।
दोउन की प्रीत कछू, काहू पै न कही जात,
उत नंद-नंदन, इत बल्लभ-सुत वर कें॥
करिकै सिंगार आजु, लाड़िले कुँवर जू कौ,
लेत है बलाई, वारि-वारि दोऊ कर कें।
बैठे मुसिकात जात, फूले न समात गात,
कहै 'हरिदास' मैं निहारे दृग भर कें॥

[६०३] राग सारंग

केसर की धोती कटि, केसरी उपरना ओढ़ें,
केसर कौ तिलक भाल, मुद्रा मधि सोहै ।
स्रवनन मनि मुक्ता धरें, कोटि मदन मान हरें,
कुमुलित सिर केस, देखि कोहै जो न मोहै ॥
श्री वल्लभ प्रभु सुत सुजान, उपमा कोउ नाँहिन आन,
नख-सिख गिरिधरन रूप, देखै ही बनि आवै ।
सुंदरताई निकाई, तेज-प्रताप अतुलताई,
नंद-नँदन विट्ठलेस, एक ही कहावै ॥
अपुने कर करि सिंगार, देख री छबीले लाल,
ठाड़े निज मंदिर में, नीरांजन बारें ।
घंटा ताल झालरि बाजें, जै-जै-जै सब्द गाजें,
अपुनपौ 'हरिदास', वारि-वारि वारें ॥

[६०४] राग आसावरी

जुरि चली बँधावन श्री वल्लभ गृह, प्रगटे श्री विट्ठलराई हो ।
पूरन पुरुषोत्तम आनँदनिधि, श्री गोकुल सुखदाई हो ॥
चंदन सींचत धार धरनि, गज-मोतिन चौक पुराई हो ।
गावत मंगलचार सुहागिनि, उर आनंद न समाई हो ॥
आँगन भवन अमल अवनी पर, गोमय हरद लिपाई हो ।
चित्र विचित्र रचे रुचि मंदिर, बंदनबार बधाई हो ॥
भेरि मृदंग ताल सुर बाजत, सुनतहिं स्रवन सुहाई हो ।
मागध सूत जुरे बंदीजन, आँगन भवन भराई हो ॥

हरद दूब अच्छत दधि कुमकुम, सब के सीस धराई हो ।
सब मिलि छिरकत हैं जु परसपर, गोरस कींच मचाई हो ॥
धन्य दिवस धन घड़ी बार तिथि, लगन नक्षत्र निकाई हो ।
धन श्री गोकुल ग्राम ठाम ब्रज, जमुना पुलिन सुहाई हो ॥
पौस मास कृष्णा नौमी तिथि, प्रगटे गोकुल-राई हो ॥
पंद्रह सै बहत्तर संवत्सर, पत्री जनम लिखाई हो ॥
वल्लभ कुल धनि प्रगट भये, श्री विट्ठलनाथ गुसाँई हो ।
धन्य सुहाग भाग परिपूरन, कूखि अक्का जू माई हो ॥
जिन जायौ श्रीगोकुल कौ पति, ब्रज की तपन-बुझाई हो ।
बहे जात बसुधा भव सागर, कर गहि पार लगाई हो ॥
द्वापर बसुधा भार हर्‌यौ हरि, मिले मनौ सुरराई हो ।
द्विज कुल प्रगटे कलिमल खंडन, नाना वाद मिटाई हो ॥
विष्णु स्वामी पथ प्रगट अचल करि, पुष्टि मर्याद चलाई हो ।
तिलक भाल, उर माल पालप्रति, भगवत भाव दृढ़ाई हो ॥
गोपीजन हरषत उर आनँद, पूरन प्रीति जनाई हो ।
रास विलास सबहिं सुख रचिकै, चित हित रुचि उपजाई हो ॥
पुरुषोत्तम पूरन नव बपु धरि, लीला ललित दिखाई हो ।
'रसिक सिरोमनि' श्री बल्लभ सुत, जनम-जनम जस गाई हो ॥

[६०५] राग रामकली

सुनौ री आज नवल बधायौ है ।
श्री बल्लभ गृह प्रगट भए, पुरुषोत्तम जायौ है ॥
नैनन कौ फल लेहु सखी, भयौ मन कौ भायौ है ।
गिरिधरलाल फेरि प्रगटे है, भाग्य तें पायौ है ॥
द्वार-द्वार मोतिन-मनि माला, बंदनमाल बंधायौ है ।
श्री गोकुल में घरन-घरन प्रति, आनँद छायौ है ॥

द्विज-कुल-चंद उद्योत, विस्व कौ तिमिर नसायौ है ।
भक्त चकोर मगन आनंदित, हियौ सिरायौ है ॥
महाराज श्री बल्लभ देत दान, बहुविध मन भायौ है ।
जो जाके मन हुती कामना, सो तिन्ह पायौ है ॥
जाके भाग्य फले कलि में, तिन्ह दरसन पायौ है ।
करि करुना श्री गोकुल प्रगटे, सुख दान दिवायौ है ॥
पुष्टि पंथ मरजादा थापन, आपु तें आयौ है ।
अब आनंद बधायौ है री, दुख दूर बहायौ है ॥
रानी धनि-धनि भाग-सुहाग भरी, जिन गोद खिलायौ है ।
'रसिक' भाग्य तें प्रगट भये, आनँद दरसायौ है ॥

श्री विट्ठलनाथ जी का आश्रय —

[६०६] राग केदारौ

श्री बल्लभ सुवन श्री विट्ठलनाथ ।
रहौं जैसै सरन संतत, गह्यौ मेरौ हाथ ॥
परचौ आरत हौं पुकारों, भव जलधि के पाथ ।
'रसिक' विनती करै, राखौ चरन कमलनि साथ ॥

[६०७] राग धनाश्री

श्री विट्ठलनाथ जैसौ तैसौ तिहारौ ।
मै पापी बहु पाप कमायौ, मेरे औगुन नाँहि विचारौ ॥
हौं गुलाम हों तेरे घर कौ, ये है प्रान हमारे ।
श्री जमुना के निकटहि बसिकै, श्री बल्लभ कुलहि निहारे ॥
जैसे अगले जीव उधारे, तैसैहि मोहि उबारौ ।
इतनी बिनती सुनहु कृपानिधि, भव सागर तें तारौ ॥
मायावाद लगो मो तन कों, अब तुम बेगि उबारौ ।
कहत 'दास' सुन चरन-कमल तुम चित तें कभू न बिसारौ ॥

[६०८] राग मलार

हमारे श्री विट्ठलनाथ धनी ।
भव सागर ते तारि महाप्रभु, राखे सरन अपुनी ॥
जाकौ नाम रटै निसि-वासर, सेस सहस्त्र फनी ।
'रसिक सिरोमनि' श्री बल्लभ सुत, त्रिभुवन मुकट मनी ॥

[६०९] राग रामकली

बलि-बलि जाऊँ श्री विट्ठलनाथ ।
ताप हरन सरोज चरन हौ, धरौ प्रभु मम माथ ॥
हौं जु सुधि-बुधि समारि देखौं, गयौ जनम अकाथ ।
जानि दीन अधीन आपुनौ, तुम लियौ गहि हाथ ॥
मन-भावन पावन जस तुमरौ, गाऊँ निस-दिन गाथ ।
'रसिकराइ' गोपाल गिरधर, सदा बिहरत साथ ॥

[६१०] राग विभास

प्रात समै उठि कें जु सदा, श्री बल्लभ सुत के गुन गाइयै ।
जुग कर जोर रूप चिंतन करि, उनहीं के चरनन चित लाइयै ॥
सब साधन के सार यहै पद, बार-बार हितु करि समझाइयै ।
कहै 'हरिदास' मान सिख मेरी, श्री विट्ठल के दास कहाइयै ॥

श्री गिरिधर जी की जन्म-बधाई—

[६११] राग कान्हरौ

श्रीमद् विट्ठलनाथ भवन में, मंगलकारी पूत भयौ री ।
रातहु मंगल प्रातहु मंगल, मंगल-गान तें मोह गयौ री ॥
मंगल गाजत मंगल बाजत, मंगल राजत नेह नयौ री ।
मंगल साज कियौ 'हरिदासै', मंगल-मंगल दान दयौ री ॥

[६१२] राग बिलावल

प्रगटे श्री विट्ठलनाथ के, गिरधर सुखदाई ।
मात श्री रुकमिनी कूँख तें, प्रगट्यौ ससि-राई ॥
भई चाँदनी जगत में, भक्ती सरसाई ।
कृष्ण भजन सब ही करें, जस पावन गाई ॥
नवधा भक्ति दई सबै, निज जन अधिकाई ।
प्रेम - सिंधु में बोरिकै, कीन्हे हरि-राई ॥
स्व जनक आज्ञा माँगिकै, प्रतिवाद कहाई ।
दूर कियौ सब वाद कों, हरि-भक्ति दृढ़ाई ॥
सेवत कृष्ण महाप्रभु, गोकुल सुखदाई ।
सेस-महेस न पावहीं, धरि ध्यान महाई ॥
दुखहारी सब जगत के, सुख करन महाई ।
'रसिकदास' अति दीन है, तुम करौ सहाई ॥

[६१३] राग कान्हरौ

श्री बल्लभ-सुत कें सुत प्रगटे, श्री गिरधर गुन-राइ ।
बजत बधाई अतिहिं सुनत मन, मुदित भये विठलेस गुसांइ ॥
बोलि लिये कुलगुरु जाति सब, करत वेद बिधि मन हुलसाइ ।
नांदी मुख निज पितर देव ऋषि, पूजत स्वस्ति वाचन जु पढ़ाइ ॥
देत असीस विप्र मंत्र पढ़ि, जै-जै-जै धुनि मुख उपजाइ ।
सुन धाये नर-नारि जगत के, गावत मंगल-गीत बधाइ ॥
नृत्यत सुलप संचि नौतन गति, बहु विधि हस्तक भेद बताइ ।
छिरकत दधि-घृत-माखन सब मिल, लूटत झपटत खात मिठाइ ॥
बिधि सिव सक्र सेस सनकादिक, दरसन कारन आइ ।
स्तुति मुख करत सीस धरिनी धरि, पुरसोत्तम पूरन यह भाइ ।
श्री वृंदाबन - चंद उदै भए, निज जन के रस सुख के ताँइ ॥
'रसिकदास' अति दीन हीन मति, परचौ चरन सरनागति पाइ॥

[६१४] राग नट

श्री विट्ठलनाथ कें बजत बधाई ।
पूरन पुरुषोत्तम प्रगटे हैं, श्री गिरधर गुन-राई ॥
बाजत झाँझ पखावज मुरली, बीना सब्द सुहाई ।
नर-नारी सब प्रेम बिवस भए, देह दसा बिसराई ॥
नाचत-गावत सब हरसत मन, आनंद जै-जै धुनि उपजाई ।
'रसिकदास' बरनै कहा इक मुख, सोभा अमित अथाई ॥

श्री गोविंदराय जी की जन्म-बधाई—

[६१५] राग नट

श्री विट्ठलनाथ जू कें आजु बधाई ।
मार्गशिर कृष्ण अष्टमी कौ ससि, उदयौ पूरन माई ॥
पूरे चौक धाम मोतिन के, बंदनबार बँधाई ।
धुजा पताका दीप कलस सजि, धूप सुगंध महाई ॥
बाजत ढोल निसान नगारे, झाँझ झमकि सहनाई ।
गगन बिमानन छाय रह्यौ है, देव कुसुम बरसाई ॥
स्त्रुति मुख खोलत जै-जै बोलत, डोलत चहुँ दिसि धाई ।
'रसिकदास' मतिहीन दीन अति, गोबिंद नाम कहाई ॥

[६१६] राग विलावल

प्रगटे श्री विट्ठलनाथ के, दूजे सुत माई ।
गुन ऐस्वर्य कौ रूप है, महिमा स्त्रुति गाई ॥
कीनौ पालन जगत कौ, निज किरनन राई ।
सुंदर रूप सुहावनौ, मुख प्रफुलित माई ॥
सेस महेस न पावहीं, कहूँ अंत न जाई ।
'रसिकदास' के तुम प्रभु, कीजियै सहाई ॥

[६१७] राग नट

श्री विट्ठलेस धाम आज अति ही सुहायौ ।
रानी श्री रुकमिनी ने गोबिंद सुत जायौ ॥
पायौ अति दुरलभ फल, देख मात फूले ।
करत बँधाईचार, मंगल अनुकूले ॥
बाढ्यौ है आनंद चहुँदिसि, गावत सब नारी ।
नाचत सब मगन भईं, देह सुधि बिसारी ॥
पतित पावन किये सबही, कीरति जग छाई ।
'रसिकदास' सरनागति आयौ, गहि बाँही॥

श्री बालकृष्ण जी की जन्म-बधाई—

[६१८] राग देवगंधार

श्री विट्ठलनाथ कें बजत बधाई ।
आश्विन बदी तेरस कों प्रगटे, श्री बालकृष्न सुखदाई ॥
वीर्य रूप महा कियौ पराक्रम, नैन कमल दल ऐंन ।
कृपा वृष्टि रस निज दासन पै, बरसें अति सुख देंन ॥
अंग-अंग अति मधुर देख छबि, मोहित कोटि अनंग ।
बरनै कहा एक मति रसना, 'रसिकदास' मति पंग ॥

[६१९] राग सारंग

श्री विट्ठलेस धाम आज प्रगट भये वीर्य रूप,
श्री बालकृष्न अति अनूप तीजे सुत माई ।
गावत चहुँ दिसि बधाई झुंडन जुरि नारि आईं,
मंगल साज करन थार कंचन सुहाई ॥
नृत्यत संगीत रीति बाजत कटि किंकिनी,
पद-नूपुर धुनि मद-मंद सुरन लै सुहाई ।
बाजे बजत अति अनूप 'रसिकदास' कहा कहै,
नंद तहाँ प्रेम-सिंध माई ॥

[६२०] राग पूर्वी

श्री विट्ठलनाथ के प्रगटे तृतीय पुत्र, श्री बालकृष्न सुखरासी।
महा पराक्रम रूप बिराजत प्रफुलित आनन,
दरसत सब दुख नासी ।।
कदली खंभ बिराजत द्वारे; मंगल कलस धरत दीपक ओल।
अगर धूप कीने चहुँ दिसि ही, मधुर सुगंध अतोल ।।
लीने धाम अरगजा घसिकै, मोतिन रतनन चौक पुराये।
धुजा पताका बिराजत अदभुत,
कहा मुख बरनों, मंगल सब्द सुहाये ।।
परमानंद छके नर-नारी, निरतत सब मिल दै कर तारी।
बाढ़ी छबि अति कहि न सकै कोऊ,
एक मुख रसना 'रसिकदास' बलिहारी ।।

[६२१] राग अड़ानौ

प्रगटे तृतीय पुत्र श्री विट्ठलेस कें, श्री बालकृष्न प्रफुलित मुख।
तेरस आश्विन कृष्न सुखद अति, दरसत परसत दुरि गये सब दुख।।
श्री विट्लनाथ निरखि मन हरषे, गनक बुलाय लगन सुधवायौ।
जाति बुलाइ लई तब ही सब,
मंगल न्हान चले अतिहिं हरष मन छायौ ।।
सबहिं सजे देवन से लागत, ज्यों तारेन मधि चंद सुहायौ।
चँवर ढुरत रवि बदनी अदभुत,
पंखा मोरछल सेत छत्र सिर छायौ ।।
रतन खचित छड़ी कर लीने, बोलत छड़ीदार मधुरे सुर।
धुजा पताका लिएँ कोऊ जन, चले हरष सों सजे साज सबही पुर।।
झाँझ मृदंग बीन मुरली सुर, बाजत गावत मंगल साज सजे सब।
ढोल निसान नगारे भेरी अरु सहनाई बाजत,
चहुँ दिसि सब्द छायौ तब ॥

पहुँचे आन तीर रविजा के, बोल लिये बड़रे कुल प्रोहित।
स्नान करावत मंत्रन पढ़ि कें,
जैसी वेद बिधि करत श्री विट्ठलनाथ बड़े चित ॥
देव रिषि अरु पितर पुजावत, नंदी मुख षट दस प्रचार कर।
विप्र पढ़त आसीस मंत्र, चिर जियौ सदा यह राज करौ भुवि ऊपर॥
महा उदार श्री बल्लभ-नंदन, देत दान सबहिन गो हय गज।
धरिनी धाम कनक मनि भूषन मोतिन माला, चले संग सबही सज॥
पहुँचे गृह अति आनँद छाये, बाँटत सब कों बोल बधाई।
कहा बरनें यह 'रसिकदास' मुख,
हीन मूढ़ मति, सेस-बिधि पार न पाई ॥

श्री गोकुलनाथ जी की जन्म-बधाई——

[६२२] राग कान्हरौ

श्री विट्ठलनाथ के गेह बधाई, बधाई राजत नेह मई है।
श्री गोकुलनाथ सपूत भयौ, महि मंडल माँझ बधाई भई है॥
आकास पाताल के लोक सबै मिलि, गावें बधाई नई-नई है।
भवन भरौ 'हरिदास' लुगाइन, रुकिमनि तिनकों बधाई दई है॥

[६२३] राग टोड़ी

मोतिन की माल उर हार सोहें मोतिन के,
चौकी मध्य नायक बिराजै गोकुलेस री।
रतन की मनिमाल गिनती लौं कहाँ लों गिनों,
पहुँची जराब सोहै, मुद्रिका सुबेस री ॥
धोती उपरना धरें केसरी पाँवरी ओढ़ें,
बैठे हैं 'रसिक' सुंदर बर सुकेस री।
श्री विट्ठल कुमार प्रान बल्लभ जनम दिन,
अगहन सुदी सातें जान्यौ देस-देस री ॥

[६२४] राग विलावल

अलौकिक उच्छव कह्यौ न जाई।
भक्तन के उर सदा बसत प्रभु, प्रगट भये निज जन सुखदाई॥
श्री गोकुलेस प्रागट्य सर्वोपरि, ब्रज-धन लीला रसिक सुहाई।
भक्ति 'रसिक' रसमय प्रभु प्रगटे, वल्लभ दास महानिधि पाई॥

[६२५] राग सारंग

प्रगट भये धाम श्री विट्ठलाधीस के,
महा रस सुखद श्री गोकुलाधीस।
शुक्ल अगहन सप्तमी बारादि महा सुभ, जानि दुख हरन जगदीस॥
बजत बाजे सकल सुरन सह,
बहु भाँति दुंदुभी बजत हरत मन ईस।
करत तहाँ नृत्य तांडव भाँति भेद सों,
अस्तुति करत आये विधि नारद मुनीस॥
कुसुम वृष्टि करत पढ़त जय-जय,
नमत सब ही देव धरिनी धरिनीधर सीस।
महा महिमा अतुल सेस नहीं पावहीं,
पार याकौ कहा तुच्छ कवि ईस॥
महा जस प्रगट कीन्हों सकल धरनि पै,
किये दृढ़ भक्ति पथ खंड दंडीस।
अतुल महिमा कहा तुच्छ मुख कहि सकै,
'रसिक कौ दास' तुव चरन मन ईस॥

[६२६] राग आसावरी

आनंद भरि डोलत ब्रज वाल।
कुम्कुम तिलक कटोरन भरि-भरि, मंगल देत सबन के भाल॥
हँसत परस्पर प्रेम मुदित मन, पूरत अंतर प्रेम रसाल।
फूलन सों निरखत श्री वल्लभ बर,बलि-बलि 'रसिक' रसीले लाल॥

[६२७] राग ललित

प्रगटे श्री गोकुलनाथ जी, श्री विट्ठलनाथ के धाम बधाई।
उग्र कियौ जस या भूतल पै, माला तिलक दृढ़ाई।।
गुन लावन्य माधुरी मुख छबि, देख अनंग लजाई।
दीन दयाल महा करुना मय, कृष्न रूप सरसाई।।
निज दासन पर करत सदा हित, कीरति सब जग छाई।
अति उदार श्री विट्ठल नंदन, 'रसिकदास' सिर नाई।।

[६२८] राग मारू

आज बधाई श्री विट्ठल गृह, श्री बल्लभ फिर आये हो।
श्री रुकमनि ने ढोटा जायौ, सुन सब ब्रज उठि धाये हो।।
नव सत साज सिंगार सुंदरी, मंगलचार बधाये हो।
कनक थार कर कंकन मुक्ता, बहु मनि भरि-भरि लाये हो।।
कुमकुम माँग करत सिर टीकौ, बोलत कछुक लजाये हो।
चिरजीवौ श्री विट्ठलनंदन, सुजस सुखद हिय गाये हो।।
धाम-धाम तें टीकौ आयौ, राजत महल सुहाये हो।
देखत रूप जगत बंदन कौ, इत-उत दृष्टि भराये हो।।
श्री विट्ठलनाथ नाम धर्‌यौ है, श्रीमद् बल्लभ पाये हो।
श्री गोकुलनाथ भयौ प्रतिपालन, ब्रज दुंदुभी बजाये हो।।
मगसिर मास सप्तमी उज्वल, आनंद प्रेम बढ़ाये हो।
जन 'हरिदास' सदा वांछित फल, जनम-जनम यह गाये हो।।

श्री रघुनाथ जी की जन्म-बधाई—

[६२९] राग विहागरौ

श्री विट्ठल के धाम स्रवन सुनि, बाजत आज बधाई।
पंचम सुत श्री रघुपति प्रगटे, लागत परम सुहाई।।
बाजत ढोल भेरि सहनाई, धुजा पताका राजें।
द्वारन तोरन बंदन माला, घृत दीपक छबि छाजें।।

कदली खंभ कलस सोने के, मोतिन चौक पुराये।
उठत सुगंध झकोर चहूं दिस, जल गुलाब छिरकाये ॥
आये विप्र महा कुल प्रोहित, करी वेद विधि भारी।
गनक लगन देखत मुख बोलत, है यह सिसु अवतारी ॥
कहा कहौ गुन इनके इक मुख, सेस न पावत पार।
भयौ उदय पूरन ससि भुवि पै, ब्रज जन प्रान अधार ॥
सुनि श्री बिट्ठलेस मन फूले, महा उदार रस रूप।
दीने दान सबन मन भाए, गोधन बसन अनूप ॥
बंदी मागध सूत गुनी सब, आये कर कर टोल।
गावत पावन जस रघुपति कौ, जै-जै-जै मुख बोल ॥
किए अजाचक सबहिनु कों, श्री विट्ठलेस बड़ दानी।
हय गज हेम धाम धरनी धन, दिये करत सनमानी ॥
देत असीस चले घर-घर कों, कीरत करत अपार।
'रसिकदास' गावै कहा मुख तें, सेस न पावत पार ॥

[६३०] राग सारंग

श्री विट्ठलनाथ धाम अति आनंद, प्रगटे श्री रघुनाथ हो।
सुनि धाये नर-नारि मुदित मन, लै समाज सब साथ हो ॥
गावत मंगल गीत बधाई, छिरकत दधि-घृत छीर हो।
देह गेह भूले मन फूले, नृत्य करत भुज भीर हो ॥
बाजत झाँझ पखावज बीना, बिच मुरली कल घोर हो।
सुरपुर देव दुंदुभी बाजत, बरषत कुसुमन झौर हो ॥
स्तुति कर जोरि करत ब्रह्मा-सिव, सेस न पावत पार हो।
धन्य भाग या धरिनी तल के, प्रगटे श्री नंदकुमार हो ॥
धन्य द्वादसी धन्य सुभ मुहूरत, धन कातिक सुदि मान हो।
धन्य सरन आवेंगे जे जन, तिन्ह के भाग्य निधान हो।
धन्य सुजस गावेंगे जे जन, तिन्ह के भाग्य अपार हो।
'रसिकदास' आयौ सरनागति, ताके सिर कर धार हो ॥

[६३१] राग देवगधार

श्री बल्लभ सुत कें सुत प्रगटे, श्री रघुपति रस रूप री ।
श्री स्वरूप मुख सोभा अद्भुत, व्रजपति पूरन रूप री ॥
चलौ सबै मिलि सज सिंगार तन, नाना भाँति अनूप री ।
ते सब ही मिल धाई आईं, राजत सुंदर रूप री ॥
निरखें आय रुकमिनी सुत कों, पौढ़े राजत सूप री ।
देत असीस सदा चिरजीयौ, 'रसिकदास' सिर भूप री ॥

[६३२] राग देवगंधार

श्री विट्ठलनाथ कें आज आनंद ।
पंचम पुत्र भए श्री रघुपति, पूरन परमानंद ॥
मोतिन चौक पुराये घर-घर, छिरकत अतर सुगंध ॥
बंदनवार बिराजत द्वारें, मोतिन भूमक बंद ॥
भये मुदित नाचत नर-नारी, गावत गीत सुछंद ।
'रसिकदास' उर बसौ हो निरंतर, या गोकुल के चंद ॥

श्री यदुनाथ जी की जन्म-बधाई—

[६३३] राग हमीर

श्री विट्ठलनाथ के धाम बधाई ।
ज्ञान रूप प्रगटे श्री यदुपति, छठे सुवन सुखदाई ॥
छट्ठ अमल मधुमास सुखद रितु, मधुपन रूप दिखाई।
परम प्रबीन कृष्न सेवा पर, अतिकर भक्ति दृढ़ाई ॥
श्री महारानी पति प्रिय पूरन, असरन सरन कहाई ।
देत अभय फल निज दासन कों, कीरति त्रिभुवन छाई॥
कर्ता हर्ता कारन जग के, पालन सुख दरसाई ।
गुन अनंत कहा बरनि सकै मुख, 'रसिकदास' सिर नाई ॥

[६३४] राग विभास

श्री विट्ठल गृह मंगलचार।
माता रुकमिन कूँख प्रगट भये, श्री यदुनाथ छठे सुकुमार।
जय जयकार भयौ भुवि ऊपर, बजत बीन मुरली करतार ॥
द्वारे भीर विप्र गुनियन की, गावत जस पावन नर-नार।
देत दान अति ही मन फूले, श्री विट्ठल मन बड़े उदार।
सुनि के आन परौ द्वारे यह, 'रसिकदास' की ओर निहार ॥

[६३५] राग सारंग

महा सुख छायौ आज सुहायौ, श्री विट्ठलेस के ओक।
ज्ञानरूप महाप्रभु प्रगट भए, श्री यदुपति या भुव लोक॥
धुजा पताका पुहुप माल मनि, मोतिन पूरे चौक।
गाय सिंगार ग्वाल सब आये, कृष्न सुबल अरु तोक ॥
झुंडन जुरि आई ब्रज तरुनी, राजत अपुने थोक।
प्रेम बिवस भए कबहुँक गावत, बाँधि तान की झोक ॥
जै-जै बोलत डोलत चहुँ दिसि, हरष भरे पुर लोक।
'रसिकदास' कहा बरनि सकै सुख, महा मूढ़ मति फोक॥

[६३६] राग केदारौ

प्रगट भए सुवन विट्ठलेस कें आज।
कूँख रानी सुभग रुकमिन की माँझ,
ससि बदन जदुनाथ सकल सिरताज ॥
बढ्यौ आनंद चहुँ ओर दस दिसन में,
भयौ मंगल अधिक रह्यौ जग छाज।
सुनत नर-नारि फूले सकल नगर के,
लियौ सब साज सजि मंगल समाज ॥

चले सब धाइ सिंहपौर विट्ठलेस की,
तारी दै-दै नचत बजत बहु बाज।
आइ कीन्हौ दरस विट्ठल उदार कौ,
'रसिकदास' करत तहाँ सुभ काज॥

श्री घनश्याम जी की जन्म-बधाई—

[६३७] राग सारंग

जयति पदमावती सुवन विट्ठल तनय,
नाम घनस्याम मुख चंद्र सरखौ।
रुचिर अँग-अंग बहु सजे भूषन बसन,
दरस करि ध्यान निज रूप परखौ॥
सदा सेवौ महा परम फल जानि यह,
मान बड़ भाग मन सबै हरखौ।
'रसिक कौ दास' सिर नाय बारंबार,
पियौ सरस रस नित्य बरसौ॥

[६३८] राग पट

प्रगट भए सदन, दुख-दवन विट्ठलेस कें,
सातमें सुवन धनस्याम अभिराम॥
कृष्न तेरस मास सुभग मार्गशिर नाम,
मध्य पदमावती कूँख सिरनाम।
भयौ दिसि विदिस आनंद अति रस छयौ,
गयौ दुख-भाज मन भए पूरन काम।
कहा कहौं सुजस मुख एक रसना करी,
'रसिक कौ दास' नित्य करत परनाम॥

[६३९] राग विहागरो

जयति घनस्याम वपु प्रगट सप्तम तनय,
विरह रस रूप विट्ठलेस निज धाम ।
बजत बाजे विविध वेनु सुर सों मिले,
भयौ सुर नाद निरतत सु ब्रज वाम ॥
सुनत धाये सकल गुनी मागध सूत,
पढ़त द्विज वेद धुनि करत मंगल काम ।
देत बहु दान सनमान करि सबन कौ,
गज धेनु हय कनक धन वसन भूषन गाम ॥
देत आसीस बहु करत जय-जय कार,
चले करि दरस मन भए पूरन काम ।
'रसिकदास' मति हीन कहा कहै सुजस,
रटत मुनि सेस विधि ईस निस दिन जाम ॥

[६४०] राग गौरी

जयति घनस्याम रस रूप निज देह धरि,
प्रगट भये आपु श्री वल्लभ-कुमार घर ।
तरन तारन सकल दुख हरन सुख करन,
विरह अनुभव करन वैराग रूप धर ॥
सकल पुर घर घरन सजे नाना साज,
धुजा कनक-कलस तोरन माल कुसुम की ।
विविध चँदवा बँधे रंग रंगनन के,
खंभ रंभान के ओल धरत दीप की ॥
उभय दिसि द्वार के कुंकुमन करि छाप,
रचे साथिये धूप अगर सौरभ रली ।
अरगजा सों लिपी छिरकि सौरभ नीर,
मनिन मुक्तान सों चौक पूरत अली ॥

बजत दुंदुभी आदि नाद चहुँ दिसि भयौ,
देव बरषे कुसुम अतिहिं फूले ।
करत जय-जय सु मुख पढ़त अस्तुति सबै,
बिवस भए नचत आनंद भूले ।।
बेद ब्रह्मादि गन देत आसीस बहु,
चिर जियौ बाल निज जनन साजें ।
'रसिक कौ दास' यह परम फल रूप लखि,
दौरि आयौ पौरि दरस काजें ।।

भक्त की भावना—

[६४१] राग ईमन

हौं वारी इन बल्लभियन पर ।
मेरे तन कौ करौ बिछौना, सीस धरौ इन चरननि तर ॥
नेह भरी देखौ मेरी अँखियन, मंडल मध्य बिराजत गिरिधर ।
यह तौ मेरे प्रान जीवन धन, दान दिये मोहि श्री बल्लभ बर ।।
पुष्टि प्रकार प्रगट करिबे कों, फिर प्रगटे श्री बल्लभ द्विजवर ।
'रसिक'सदा आसा इनकी करि,बल्लभियन की चरन रज अनुसर॥

[६४२] राग विहाग

मिलें कब श्री बल्लभ के प्यारे ।
प्रीति प्रतीति रीति रस जिनकें, तिहूँ लोक तें न्यारे ।।
कृपा समुद्र भरे अँग-अँग में, उछरत रस की धारे ।
माला-तिलक बिराजें अदभुत, करुनामय अनुहारे ।।
कोटि जनम के तम दुख भाजत, हृदै करत उजियारे ।
प्रफुलित प्रेम कंठ भरि आवे, सुख उपजावत न्यारे ॥
जापै कृपा करे श्री गिरिधर, सो इनकों अनुसारे ।
'रसिकदास' इनकी बिधि पैयत, दोऊ नैनन के तारे ।।

[६४३] राग विहाग

जीवन जो ऐसें बनि आवै ।
श्री बल्लभ श्री विट्ठल प्रभु की, सरनागति जो पावै ।।
द्वादस तिलक सहित षट मुद्रा, तुलसी कंठ धरावै ।
प्रेम सहित श्री नंदनँदन के, जन्म कर्म गुन गावै ।।
श्री भागवत अमृत रस टीका, अपने स्रवन सुनावै ।
भूषन बसन बिचित्र बहुत रचि, प्रभु कों लाड़ लड़ावै ।।
भाव सहित सामग्री करि कै, हरि कों भोग धरावै ।
प्रभु के भक्तन सों हिलि-मिलि करि, यह प्रसाद जो पावै।।
श्री गोकुल गोबरधन बसिकै, सेवा दृढ़ मन लावै ।
स्यामा-स्याम भाव की लीला, ध्यान हृदै में आवै ।।
श्री जमुना जी सों अति स्नेह करि, मुख जलपान करावै।
'रसिक' कहत पग बाँधि घूँघरू, अपनौ अंग नचावै ।।

[६४४] राग सारंग

पीवौ श्री भागत सुधा रस ।
सावधान स्रवनन पुट भरि-भरि, श्री गोपाल बिमल जस ।
निगम कल्पतरु ताकौ यह फल, परम मृदुल आनँद लस ।
कठिन ज्ञान गुठली नहीं यामें, कमल जाल कौ निपट नस ।।
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल, प्रेम भक्ति कों कनक कस ।
काम क्रोध मद लोभ गलित भए, संत सिरोमनि सरबस ।।
परमहंस कुल भूषन श्री सुक, बदन कमल ते परचौ खस ।
खान पान तजि रसिक परीच्छित, पीवत कियौ नहीं अलस।।
सोई अब प्रगट बिराजत भू पर, कियौ अमृत कौ उपहसु ।
कहै 'हरिदास' परम यह सुंदर, जो न पियै सो महा पसु ।।

[६४५] राग भैरव

जै-जै-जै श्री बल्लभ प्रभु, विट्ठलेस साथें।
निज जन पर करत कृपा, धरत हाथ माथें॥
दोस सबै दूरि करत, भक्त भाव हिएँ धरत,
काज सबै सरत, सदा गावत गुन गाथें।
काहे कों देह दमन, साधन करि मूरख जन,
विद्यमान आनंद तजि, चलत क्यों अपाथें॥
'रसिक' चरन सरन सदा, रहत हैं बड़भागी जन,
अपुनौ करि श्री गोकुलपति, भरत ताहि बाथें॥

[६४६] राग बिहाग

जो कोई श्री गोकुल रस चाखै।
ताकौ चित्त अनत नहीं भटकै, लोभ दिखावै लाखै॥
परचौ रहै छोंकर की छैयाँ, निरखत तरुवर साखै।
श्री जमुना जल पान करत नित, श्री बल्लभ मुख भाखै॥
सात स्वरूप आदि लै गिरिधर, ध्यान हृदै में राखै।
'रसिक प्रीतम' की बानिक ऊपर, विस्व बारनै नाखै॥

[६४७] राग काफी

करियै श्री सर्वोत्तम रस पान।
करै प्रसंसा को कवि ऐसौ, श्री मुख करत बखान॥
अतिसय करुना करि या कलि में, दियौ दैवि जीवन कों दान।
एक-एक अक्षर है अधरामृत, गुप्त रहस्य गुन-गान॥
अर्ध निमेष बिलंब न करियै, रैन-दिवस आठौं जाम।
'रसिक प्रीतम' जाके रंग रँग्यौ, सो है भगत निदान॥

४. विनय

दीनता— [६४८] राग सारग

कब करि हौ करुना करुनानिधि !
हौं अपराध कोटि कौ करता, भरता ! मोहि तारिहौ केहि विधि॥
और विचार मोहि नहिं सूझत,
क्यों करि जा बिधि ह्वै है फल सिधि।
'रसिक सिरोमनि' सब बिधि पूरे, जाके पद पूजत कमला-रिधि॥

[६४९] राग सारग

तुम सों नाथ पुकारत हार्यौ।
सुनत न तुम कछु कहा जानियै, कौन दोष मन धार्यौ ॥
किते निबेरे तुम संकट तें, मोहि न साईं उबार्यौ।
अब क्यों बिलम करत गोबिंद तुम, अपुनौ बिरुद बिसार्यौ॥
कासों कहों जाइ मन कौ दुख, सुनें कौन दई मार्यौ।
बारे तें करि कृपा आज लों, तुम ही हौ प्रतिपार्यौ ॥
इतनौ काल कराल पाय दुख, दई-दई करि टार्यौ।
अब दुरजन मिलि मरम बचन कहि, बिन बैसांधर जार्यौ॥
सह्यौ परै कैसै यह जिय दुख, भगत पाँति तें टार्यौ।
मै तौ सबै लोग मन तें प्रभु, जल गागर लों ढार्यौ ॥
गति हौ तुम पति हौ तुम मेरे, सो ही हौं उर धार्यौ।
अपुनौ जान करौ जानों सो, सेवक 'रसिक' पुकार्यौ ॥

[६५०] राग ईमन

हरि हौं बिसारी काहे तें, तुम कौन धरी जिय चूक।
अब लों न आए हौं मग देखत, बीती रैन उदयौ सूक ॥
कहियत करुनानिधान या ब्रज में, ऐसौहि करियै बचन सलूक।
'रसिक प्रीतम' जासों मिलत मया करि, ताहू सों रहति छेक टूँक॥

[६५१] राग केदारौ

नाथ हा हा मोहि दरस दीजै।
सहज करुना करौ, दोस जिन जिय धरौ,
बिना साधन मोहि दास कीजै॥
दुखित छिन होत जिय बदन देखे बिना,
रैन दिन तपत कहो कैसैं जीजै।
कहौ धीरज हिएँ राखिए कौन बिधि,
रहत नहीं चैन तन छोह छीजै॥
लेत जब स्वाँस उर माँझ न समात,
जब लों निर्स्चित दृग भरि न पीजै।
रूप लावन्य अमृत 'रसिक' पीवत सदा,
बिना रस पान तन कैसें भीजै॥

[६५२] राग सोरठ

हरि यह कौन रीति ठटी।
दास दुखी सुख होत बिमुखन, बड़ी लाज घटी॥
वेद पंथ श्री भागवत की, बाँधी मेंढ़ कटी।
देखि या बिधि सबन की मति, भजन तें उचटी॥
करि कुसंग सुसंग तजिकै, विषय जाय पटी।
कुमति पावक कूप जल तें, आत है उबटी॥
करन पारै कहा भूमी, जात गति न हटी।
फल की चिट्ठी सबन की कहा, एकहिं बेर कटी॥
चरन परि जे रहत तिन्ह की, होत मति उलटी।
कहा गीता भागवत में, कही बात नटी॥
हमारी यह बेर मनसा, दान हू तें हटी।
'रसिक' कहि-कहि जीभ तुम सों, छिलत-छिलत छटी॥

[६५३] राग सारंग

मन में रहै न वात, छिन-छिन पछितात,
रहौं जिय में अकुलात, मो सुहात नहीं नैकौ।
और कहौ कासों दुख, तुम तजि रहौं कौन ठौर,
कैसै भव जल-निधि ते, हौं जू बचिवे कौ॥
देखों जब चरन कमल, सीतल तव होंय नैन,
क्यों जू परताप घटै, बीस हू बिसे कौ।
'रसिक' जन सुखदायक, कहियत करुना-निधान,
करि विस्वास परि रह्यौ हौं, मन में धरि टेकौ॥

[६५४] राग सोरठ

अहो हरि! दीन के जु दयाल।
कब देखौगे दसा हमारी, ग्रसति हौं कलि-काल॥
कहा सुमिरन करों तिहारौ, परौ अति जंजाल।
काढ़िवे कों नाहिं समरथ, तुम बिना नंदलाल॥
सकल साधन रहित मोसौ, और नहिं गोपाल।
करत अति बिपरीत साधन, चलत चाल कुचाल॥
कहौं कासों जाय ब्रजपति, आपुनौ यह हाल।
हँसत कहा जु हरहु आरति, 'रसिक' करौ निहाल॥

[६५५] राग श्री

दुरवल सौ जीव एक, ताके सत्रु अनेक,
कैसें करि रहे टेक, कहौ कहा कीजियै।
सुनियै अनाथ-नाथ, बिनती एक करों बात,
जीवन सब बृथा जात, रंकन पै रीझियै॥
मानस कौ देह पाय, गोविंद गुन हू न गाय,
जीवन सो घट्यौ जात, चरन सेवा दीजियै।
महाराज कह्यौ मानि, उरहू में दया आनि,
बुरौ भलौ जानि 'रसिक' अपनौ करि लीजियै॥

आश्रय— [६५६] राग सोरठ

सनेही साँचे नंदकुमार,
और नहीं कोई दुख कौ बेली, सब मतलब के यार ॥
मनुस जाति कौ नाँहि भरोसौ, छिन बिहार छिन पार।
चित्त बचन कौ नहीं ठिकानौं, छिन-छिन पलट बिचार॥
मात पिता भगिनी सुत दारा, रति न निभत एक तार।
सदा एक रस तुमहिं निभावौ, 'रसिक प्रीतम' प्रतिपार॥

[६५७] राग रामकली

मेरी मति राधिका चरन रज में रहौ।
इहै निस्चै करौ, अपुने मन में धरौ,
भूलिकै कोऊ कछू और हू फल चहौ॥
करम कोऊ करौ, ज्ञान हू अनुसरौ,
मुक्ति के जतन करि, बृथा देही दहौ।
'रसिक' बल्लभ चरन, कमल जुग परि सरन,
आस धरि यह महा, पुष्टि पथ फल लहौ॥

[६५८] राग श्री

जैसें गजराज राख्यौ धाइ धाम हू तें आइ,
जैसें कै सहाइ ह्वै कै पृथा सुत पारे हैं।
जैसें महाराज राखी द्रुपद सुता की लाज,
जसें ब्रजबासी गिरि धरि कें उबारे हैं॥
जैसें दैकै संपति सुदामा दुख दूरि करचौ,
जैसें हित संतन के असुर संहारे हैं।
तैसें राखि लीजै निज बल्लभ के बंस हू कों,
जैसे तैसें जग में कहावत तिहारे हैं[1]॥

[६५९] राग श्री

अपनी ही ओर देखि कीजै चित्त उपजै जो,
इतकी बिचारत कछु पूरौ न परि है ।
तुम तौ गुनन धाम पूरित सकल काम,
दोष तौ अपार इत गनना को करि है ॥
जो पै सिख दैहौ तोऊ इत मूढ़ मत सबै,
भलो चित्त दैन नीके कान धरि हैं ।
सबै भूलि अपने ही बोल की गहौगे टेक,
तौ हरि हमसे अनेक लोग तरि हैं[2] ॥

[६६०] राग श्री

मारग बिरोधी अविवेकी अपराधी मूढ़,
महा अहंकारी दुराचारी लोभ भरे हैं ।
विषई बहिर्मुख लखें न तिहारौ रूप,
तातें नित पावें दुख सोच सिंधु परे हैं ॥
धनमद अंध पचे संसार के धंध महा,
कथा गुन गान सेवा रूप हू तें टरे हैं ।
तऊ निज बल्लभ के बंस भए जानि जीय,
राखि लीजै आपने हू भाँति-भाँति डरे हैं[3] ॥

चेतावनी—

[६६१] राग विहाग

मन तैं भक्ति स्वाद नहिं पायौ ।
ताही तें तू तुच्छ पदारथ, विषय विषै अरुझायौ ॥
नंदसुवन ब्रजराज लाड़िलौ, सो उर में नहीं लायौ ।
सुत दारा सपने की संपति, तिन्ह के सँग भरमायौ ॥

१, २, ३, इन पदों मे नाम छाप नही है, किंतु प्रामाणिक प्रतियों के अनुसार ये श्री हरिराय जी कृत हैं ।

गिरधर लाल रंगीले के गुन, प्रेम घरी नहीं गायौ।
इंद्रिय विषय परायन डोलै, मूरख जनम गँवायौ॥
भक्त जनन के संग बैठिकै, थिर नहीं मन अटकायौ।
गृह जंजाल पोट सिर लादौ, छूटत नाँहि छुटायौ॥
मानस जनम पाय अब दुरलभ, लै गजराज चढ़ायौ।
धिक मतिमंद चढ़त अब खर है, केतिक बार पढ़ायौ॥
श्री बल्लभ प्रभु श्री विट्ठल के, सरनागति नहीं आयौ।
कहै 'हरिदास' मूढ़ मति बौरे, अंत समैं पछितायौ॥

[६६२] राग केदारो

हरि-हरि छाँड़ि कें दूसरी न कीजै बात,
एक-एक घरी करोरन की जात है।
घरी पल दिन खोइ फेरि हू न आवै सोइ,
छिन भंगुर देह ताकी मरन बसी घात है॥
हरि कों सँभार तू बकिवौ बिसारि डार,
तजि अमृत विष काहे कों तू खात है।
कहै 'हरिदास' स्वाँस कौ विस्वास नहीं,
एक-एक घरी में निकसि-निकसि जात है॥

[६६३] राग विहाग

गायौ ना गोपाल, मन लायौ ना रसाल लीला,
सुनी ना सुबोधिनी, ना साधु संग पायौ है।
सेयौ नाँहि स्वाद करि, घरी आधी घरी हरि,
कबहु न कृष्न नाम रसना रटायौ है॥
बल्लभ श्री विट्ठलेस प्रभु की सरन जाइ,
दीन मति-हीन होइ सीस ना नवायौ है।
'रसिक' कहै बार-बार लाज हू न आवै तोहि,
मानुस जनम पाय मूढ़ कहा तैं कमायौ है,॥

[६६४] राग विहाग

गायौ ना गोपाल, मन लायौ ना निवारि लाज,
पायौ ना प्रसाद साधु - मंडली में जाय कैं ।
धायौ न धमक वृंदाविपिन की कुंजन में,
रह्यौ न सरन जाय विट्ठलेस राय कैं ॥
देखे श्रीनाथ जी न छक्यौ है छबीली छवि,
सिंहपौर परौ नहिं सीस हू नवाय कैं ।
कहै 'हरिदास' तोहि लाज हू न आई जीव,
जनम गँवायौ, न कमायौ कछु आय कैं ॥

[६६५] राग सारंग

वेद के पढ़े तें कछु भेद हू न जान्यौ जाय,
साधन किये तें कछु साध हू न लहियै ।
एक ही उपाय है जु मन-वच-काय करि,
वल्लभाचार्य जू की सरनागति गहियै ॥
ह्वै हैं सव सुगम कार्य आगम-निगम हू के,
ये ही जिय जानि कैं, उपाव और दहियै ।
कहै 'हरिदास' सव संतन सुनाइ कहौं,
लाख-लाख वातन की एक वात कहियै ॥

[६६६] राग कान्हरौ

विना गोपाल कोई नहीं अपुनौ ।
कौन पिता माता सुत घरनी, ये सव जगत रैन कौ सुपनौ ॥
जिहि कारन निस-दिन नर भटकत, वृथा जनम याही तें खपनौ ।
अंत सहाय करै नहिं कोऊ, निस्चै काल-अगिन में झपनौ ॥
सब तजि हरि पद जुगल कमल भजि,
मोह निगड़ नहीं करुन कलपनौ ।
कहै 'हरिदास' श्री बल्लभ विट्ठल,
श्री गिरिधर नाम अहरनिस जपनौ ॥

राग विहाग

[६६७]

मानुस देही केहि काज धरी ।
श्री बल्लभ की सरन न आयौ, भूमी भार मरी ॥
भटकत फिरौ उदर के कारन, नहिं कछु गरज सरी ।
मानों बैल बनजारे के घर, छिन भर कल न परी ॥
लख चौरासी डोलत-डोलत, नहीं पाई डग री ।
मारग पाय कुमारग धायौ, सुर पुर हाँसी करी ॥
जीवत प्रेत अंत नरकन में, जम की मार परी ।
'रसिकदास' जन कों डर कैसौ, गावत सदा हरी ॥

राग कान्हरौ

[६६८]

जनम पदारथ बह्यौ जात री ।
सुमिरन भजन करौ केसव कौ, जब लग येह नहीं गरत गात री॥
ये संगी सब चारि दिवस के, धन दारा सुत पिता मात री ।
बिछुर बहोरि मिलन नहीं पावै, ज्यों तरुवर के खरत पात री ॥
काल कराल फिरत सिर ऊपर, आइ अचानक करत घात री ।
समझत नाँही मूढ़ बाबरे, तजि अमृत फल विष हि खात री ॥
तब हरि नाम कैसै मुख आवै, सिथिल देह कंठ रुँधत बात री ।
'रसिक' कहत तू सर्व छाँड़ि कै, गुन गोपाल के क्यों न गात री ॥

राग विहाग

[६६९]

कौन मात-तात, कौन कहाँ कौ तू सुत बंधु,
जौ लौं यह देह तौ लौं नेह नातौ खपनौ है ।
नारी हू निराली होत, नारी हू तें न्यारौ होत,
तौ हू तू अनारी नारी-नारी लगै जपनौ है ॥

श्री पुरुषोत्तम सम्हार, अपने जिय में विचार,
यह संसार सुख सोवत कौ सपनौ है ।
'रसिक' कहै बार-बार लाज हू न आवै तोहि,
हाथ लै कुल्हाड़ी पाँव मारत तू अपनौ है ॥

पश्चाताप-- [६७०] राग विभास

जनम धरि जग उपहास करचौ ।
नहिं हरि सेवा स्वाद कथा रस, फिर-फिर वाद करचौ ॥
सुत दारा धन धाम चहूँ दिसि, दुष्ट के बोझ मरचौ ।
दिन-दिन पाप जो बढ़ै वहौत सौ, तातें विमुख परचौ ॥
या दुविधा में सब ही खोयौ, एकौ न काज सरचौ ।
'रसिकदास' जन सब सुख पायौ, श्री विट्ठलेस वरचौ ॥

सत्संग— [६७१] राग भैरव

हरि के विमुख कौ मुख जिन दिखावै ।
जिनकी संगति किये, होत दुख,
मति हिय हरि के गुन रूप जस तुरत विसरावै ॥
जिनके परसत सदा सरसात मन,
विषय रस मगन ह्वै जात, अति पाप उपजावै ।
करत कछू ना डरै, गेह में चित्त धरै,
सतसंग परिहरै, जुबती चित्त लावै ॥
साधु निंदा करै, झूठ भाखें सदा,
प्रीति राखै, विषयी बचन मन भावै ।
अनेक साधन करि, जोरि राख्यौ-
छिनक में वहु धन, जल अगिनी ज्यों बुझावै ॥
तेई जन-विमुख, जे करें औरै बात,
कृष्ण ना सुहात, संसार धावे ।
साधु संगति रहें, वचन गुन हरि कहें,
सतत निवहै, 'रसिक' सोई सुख पावें ॥

८. संस्कृत के पद

वंदना— राग रामकली

[६७२]

नमो वल्लभाधीश पद कमल युगलम् ।
सदा बसतु मम विविध रस भाव वलितम् ॥
अन्य महिमा भास वासना वासितं,
मा भवतु जातु निज भाव चलितम् ।
भजतु भजनीय मतिशयित रुचि रुचिरं चरण युगलम्
सकल गुण सुललितम् ।
वदति 'हरिदास' इति मा भवतु मुक्तिरपि,
भवतु मम देव शत जन्म फलितम् ॥

राग रामकली

[६७३]

जयति राधिका रमण वर चरण परि चरणरति,
वल्लभाधीश सुत विट्ठलेशे ।
दास जन लौकिकालौकिके सर्वथा नैव' चिन्तोदयति हृदय देशे ॥
स्थापयति मानसं तत् कृते लालसं सहज सुषमा रुचिर रूप वेशे ।
भालगत तिलक मुद्रादि सोभा सहित
मस्तकाबद्ध सित कृष्ण केशे ॥
सहज हासादि युत वदन पंकज सरस,
रस वचन रचना पराजित सुरेशे ।
अखिल साधन रहित दोष शत सहित मति,
दास 'हरिदास' गति निज क्लेशे ॥

[६७४] राग श्री

गोकुलानंद वद विपिनविहितं ।
करयुगेनातिकोमलकपोलद्वयं प्रोञ्छंती वदति जननी सुतं हितं ॥
मम दसो रायाति क्रत वेदमिह धर्म संबंध जलबिंदु सहितं ।
भुंक्ष्व पयसौदनं सुखय मम मानसं,
कृपय 'हरिदास' मपि भजन रहितं ॥

[६७५] राग रामकली

रुचिरं नव वल्लभाधीश चरणं अरतुमे सर्वदा,
सुंदरं कृत जगन्मोहनं हृदिता विहित करणं ।
विहतं माया वाद वादि दनुजादि नज,
संग जनितात्मजन कुमति हरणं ॥
अखिल साधन रहित दोष शत कलुष तम,
विरति भरि भरित निज दास शरणं ।
अजं साकाम कोपादि वहन क्रीयुत,
वासना भंग भव जल तरणं ॥
वदति 'हरिदास' इति निज वरण मात्र कृति,
गोकुलाधीश पद कमल वरणं ॥

[६७६] राग सारग

राधिका जयति वृषभान भवने ।
विविध मंगल घोष नृत्यगीतावि युत सूत मागध वंदति प्रगायते ।
विविध ग्रह समानीतदधि कुंकुमाक्षत चितभित्ता हस्ते ॥
रेषादरी करुणा गंध जल सेव क्रत तोरण ध्वज पताकादिसस्ते ॥
निकट संबंध जन नंद परिचित सकल गोकुलगतमनुज विहत माने।
पुत्रका जनन संतोष जननी जनक विहत भूषणादि रत्न वस्त्र दाने।।

रीति-पथ प्रगट नोपायसंभव जनित हर्ष युत दासिका फलित भाले
निजनाथ लीलयालीन सकलेन्द्रिय प्रिय भाति गोपिका ददतिताले।।
उघटित वदन जलजात संजात परमाहृष्ट राधैक चारु बदने ।
गोकुलाधीश जननोत्सवं प्रति-पद, स्मरण चित तरु चिर नंदसदने ।।
सतत मिह विलसतु प्रान-पतिनेत चिर,
मार्गसिर मधि मधु बचन भाषिते ।
हृदय कमले बसतु भाव परिपोषित,
स्वामिनी संगिनि 'हरि'णा विकासिते ॥
अस्म दधिमृत्तामखिल खलु सिद्धिमीति तोषं,
अमरित निज 'दास' चिने ।
अतिशयित दुर्लभाभरण भूषित लव्धजन्म समयोचित
प्रेष्टिचते भवति बल्लभ विभोरति शयन करुणायास-
पदियासो पितव चरणरेणु दास कस्माधु ना
देह भाव भावति विभ्रति वेणो ।।

[६७७] राग कल्याण

गोपिका करकमलकलितललिताकृति रतिपते नित्य मायाति गेहं ।
वहु विविध भूषणादि भिरलंकृति युतं तुभ्यमिममर्थपेदेवदेहं ॥
'रसिक' वर रुचिकरं निर्जितामृतभरं
वितर रसमधुर मधु मम सुलेहं ।
अन्य दर्शन रहित सतत सरसौ कहित
नित्य सह भाव मिह कृष्ण चकमेहं ।।

[६७८] राग सारंग

व्रज भुवि विराजते स्वामिनी राधिका ।
रूप गुण चतुरता शील समता भाजि,
घोष पति सुता वरें परम रुचि साधिका ।।

काप्पि युवती याति जगति नहि तुल्यतामिदं,
रासापि कलयायति नाधिका ।
दासिका भाव वति सतत सेवन युते
वसतु 'हरिदास' ह्लादि विषय रति वाधिका ॥

[६७९] राग कल्याण

भामिनी मानय मम विनयं ।
आकर्णय हरिणा मदमिहितं रस वचनं सदयं ॥
द्रुतमायाहि मया सह सुंदरि मा कुरु गुरुजन जनित भयं ।
रमयनिकुंजे मधुकरगुंजे नंदसूनुमानंदमयं ॥
किमिति वृथा समयं पापयसिरहसि मिल तमु विरह लयं ।
'हरिदास' वल्लभ वर दासे देहि चरण युगरेणु चयं ॥

[६८०] राग रामकली

पालय नंदालयकृतवासं, अनुकंपासंपादित दासं ।
शयनारुणनिजनयनविकासं, सालसतासंचितपरिहासं ॥
विषम चलन विष समाह्वयति मानं,
नयन युगल सूचित रति दानम् ।
रस संवद्ध विलसदज्ञानं अतिशय शिथिल पीतपरिधानम् ॥
नखरलिखित मृदु सकलशरीरं, वपुषा शंकित शिशिर समीरं ।
नायकवचनरचनवहुधीरं, व्रज युवती जन शिक्षा किंकर,
नंदनंदन मदनाधिक सुंदर ॥
प्रकटित वृन्दा विपिन पुरंदर, सेवित गोवर्धन गिरि कंदर ॥
अमृत मथन समय धृत मंदर, ग्रथित मुकुट मेचक कच भारं ।
कुंद कुसुम विरचित शृंगारं, शोभा जित नीरज विधु मारं,
लीला विहृत विघ्न परिहारं ॥

चरणायति कुंकुम युत भालं, अतिरति विगलित नवबनमालं।
परिवर्तति कर सरसिज वालं, गोपति कृत लीला गोपालं॥
भावित भाव वती जन भाव, एकत मान सहित श्रुति दाव।
कोकिल कुल मधुरापति राव, एक दृष्टि दंशित मृग शाव॥
संतत स्मृति फल लीला रासे, कृपयतु गोपीपति विश्वासे।
हरिरिह बल्लभ वरयति पासे, गीता गुणो गुणी 'हरिदासे'॥

[६८१] राग ललित

जहि जहि भामिनि मृदुपरि कोपं अहमिह सपदि पतासि पादमां
रुपरि किमिति कुरुषे रतिलोपम्।
मुख कमलं मम विरच य सन्मुख मयि शिशिरी कुरुनयनं।
न मयाऽऽसंसयमभिमतिया कृतमन्यगृहे शयनं॥
फुल्ल नयन युगलेन विधेहि कोपवति मपि करुणालोकं।
त्वदवमाननवितानजनितभयं हर मन मानस शोकं॥
कर युगलं मम सिरसि निधे हिदेहि सततमभयं।
यंहे हैमंगवसुकुमारतरं सखि कुरु मानसमतिसदयं॥
गीव निर्त विनिकं वलिसीद्रस मति दीने तनुषं।
मठ शरणं बरिखित कापि युवति रति चेतसी किमति मनुषे।
निजपतिनातिविसदमतिना विनयेन सखी मानम्।
हृतमखिलं हृदयं चकितं करुणायति रतिरस मानम्॥
रमण भुजालिंगन चुंवन नख दंशनादि विधौ।
नखल वेद वेदं निज पर भेदं पतिनारति रमणा निधौ॥
श्री बल्लभ चरण स्मरणाहित हृदा सरासे न।
कथित मिदं हरि हरि चरितं 'हरिदासे' न सदा सरसे न॥

[६८२] राग रामकली

निज तनुजं जागरयति माता, प्रियसुत जागृहि रजनी याता।
सुश्रित पय नवनीत वर्धदधि मोदकादि शीतलता जाता॥

मधुरं रौति पक्षिगण पंथे विकसित कमल कुलं ।
सर्ध मंथयति गोपिका भुज कंकरा, विध्वनि विपुलं ॥
वायु रसावायाति समी, विदधारति कमल निचयं ।
उन्निद्रय निजनयनयुगं कुरु रजनिदुरति विलयं ॥
उदयति भानुरसौ परिहसति विकचकमल व्याजेन ।
किमिदसुरीकृतमधुना शयनं नंदभवनराजेन ॥
गायति गोपमंडली संप्रति बालयशो विमलं ।
दर्शय वदनसरोजं सुरसं रचय जन्म सफलं ॥
कमलविनिर्गतमधुपकुलानि मधुर तरगलरणितानि ।
हरि मुत्थापय, जगति वदन्ति वहूनि मया गणितानि ॥
पूरय निखिलमनोरथमिति निज जननी मधु वचनं ।
सुहृदाकर्ण्य तथैव कृतम् हरिणापि यथा रचनं ॥
श्री बल्लभ पद कमल मधुप मानसवृति युत 'हरिदासे'
कृपय सदैव सदैव वचनतो वर्णित सुगुण समासे ॥

[६८३] राग कल्याण

लर्योगपाश विरचितरुचिरवेश शोभायुतो विद धातिनि जधेनुदोहं।
कुटिल कुंतल मधुपकुल समाकुल वदन
कुसल दर्शन जनित जन मनो मोहं ॥
चपल तर नयन युग चाल नेनैव वशीकृत विहित भक्त संगे ।
भवतु भव भय हतौ वेणु वादन कृतौ
विहित गिरवरघृतौ रतिरनंगे ॥१॥

[६८४] राग कर्नाटी

रहसि जपति सखी राधा नाम ।
सकल सुभग तव रूपं ध्यापति तव सुंदरता धाम ।।
गायति गुणमपि फलसि ह्यौ सकलनिगमगण सारं नाम ।
परिरमितु मुत्सहते सततं श्रीमदुरोमा लतिका दाम ॥२॥

राग कर्नाटक

[६८५]

सुमुख मदग्रे वेणु वादय ।
रूपं ललित त्रिभंगं प्रकटय ममहृदयं सदयं परिसादय ॥
बनमालागतकुसुमतुलसिका मधु मत्तालिकुलं संनादय ।
मनुज पक्षि पशु सुर संदोसजनितानंद भरं संपादय ॥
बाललीलया गोप गृहेषु विहरणं निज रुचि चरितं छादय ।
गोपीजन बल्लभ इति रुचिरं नाम रहस्य जगति निज गादय ॥३॥

राग ईमन

[६८६]

राधे मपि जहि कोपं ।
अति दीने सततंत्वद धीनेवितनु विरह लोपं ॥
पद पतिते शरणं वातवति मयि चतुर तरे ।
परिहरमानं रस लुब्धे विरह मुग्धे सखि देहि महारस दानं ।
दोष युतं रपि दोष युते बहु बोध मते दंडय सर्व नंदसुते
सकलावधि तावपि दूरी कुरु गर्व ॥४॥

राग केदारौ

[६८७]

कथं जीवामि राधिका रोषे विध्यति पंच सरोपि-
सरौरिह मय विरचित दोषे ।
नहि पश्यामि कुत्र सखि यामि विरह कृत द्रपोषे ॥
लगति केलि कृत पयोपि परम विरह जल पोषे ।
न भवति कथमपि मम निस्तरण मसति तदतुलतोषे ॥
अधर रसेन बिनाजीवामि कथं मुख विधु शोषे ॥५॥

उपर्युक्त १, २, ३, ४, ५ पदो में नाम छाप नही है, किंतु कीर्तन की प्रति के अनुसार ये श्री हरिराय जी कृत है ।

६. गुजराती के पद

श्री वल्लभाचार्य जी की जन्म-बधाई—

[६८८] राग देवगधार

अमारें आज आनंद उर न समाई ।
श्री बल्लभ वर प्रगट थया सै, भाग्यै ज भूतल माई ।।
मंदिर माँहै चौक पुरावूँ, बंधावूँ तोरण माल ।
प्राननाथ नै मोतियें बंधावूँ, हूँ करूँ विविध सिणगार॥
बाजा अनेक बगड़ावूँ प्रीतै, तेड़वूँ सहियर साथ ।
मंगल गावूँ प्रेमे नाचूँ, ताली हूँ पाडूँ हाथ ॥
कौनै कहूँ कह्या नव जायै, मन माँ हरख घणों ।
प्रगट यथा सुंदर वर बल्लभ, प्रभु 'हरिदास' तणों ॥

[६८९] राग आसावरी

अजवालूँ भूतल आव्यु रे, कोई एक अद्भुत दीसै रे ।
श्री बल्लभ बर प्रगटिया जोई, निज जन नाँ मन हीसै रे।।
जोताँ श्री मुख सुंदर सीतल, तन नों ताप टल्यौ रे ।
चरन कमल सेवा सुख निधि लई, आनंद ओघ बल्यौ रे।।
हरषे सकल निज जन मन माँ, नैं थई महाफल आस रे ।
श्री बल्लभ नाँ चरन रेनु नी, बलि जायै 'हरिदास' रे ॥

[६९०] राग विहागरी

आज म्हारें आनंद उर नाँ समाय जी ।
प्रगट्या श्रीवर बल्लभ सुकुमार जी ।।
भूतल भाग्य तणों नहीं पार जी ।
दैवी ते जीव नों करवा उद्धार जी ।।

मंदिर माँहैं ते चौक पुरवो जी।
तोरण वारणिये बंधावो जी॥
हवै तमैं करो बिबिध सिणगार जी।
हरखैं तेड़ावो सैयर साथ जी॥
नाचूँ गावूँ ताली पाड़ूँ हाथ जी।
हैडे ते हरख घणेरौ थाय जी॥
कौनैं कहूँ कह्यू नव कहैवाय जी।
छवि पर जन 'रसिक' बलि जाय जी॥

श्री वल्लभाचार्य जी का हिंडोरा—

[६६१] राग मारू

हिंडोरे हींचै गोकुलपति, सावन बदि छठ सारी रे।
घर घर ते सिणगार करी नै, आवै छै सुकुमारी रे॥
देस देस के बस्त्र सुसोभित, साड़ी चोली सोभती रे।
भूषन नाना भाँति बिराजत, नाकै निरमल मोती रे॥
स्यामा भामा नै बली बामा, मध्या मुग्धा जोड़ै रे।
श्री बल्लभ जी नै रंगै झुलावै, मरकलड़ां करि कोड़ै रे॥
छज्जा अटालियै बाजूऍथई, पुष्प वृष्टि सहु करता रे।
तन मन धन सर्वस वारी नै, भेंट भूषन बहु धरता रे॥
वाजित्र बिबिध प्रकारैं बाजें, गीत मनोहर गाय रे।
श्रीमहाप्रभू जी नों हिडोरौ जोई नै, 'हरिदास' वारणें जाय रे॥

श्री वल्लभाचार्य जी का आश्रय—

[६६२] राग विलावल

श्री बल्लभवर नै वारनै जाऊँ बारंबार।
भक्ति प्रगट करवानै, धारचौ भूतल अवतार॥
श्री भागवत प्रकाशियौ, कीधौ जस बिस्तार।
दैवी जीव उद्धारवा, श्रम करियौ अपार॥

साधन रहित हुता भला, तेहनौ थयौ निस्तार ।
एवा चरन-कमल नै आसरैं, छूटियौ संसार ॥
ए गति जाणी नैं भजौ रे, एवौ करौ विचार ।
माया मत खंडन करयौ, टारियौ भुव भार ॥
भाग्यै भूतल प्रगटियौ, निज जन आधार ।
दास नदास 'हरिदास' मन, ए चरण ज सार ॥

[६९३] राग आसावरी

मारैं सरबस श्री वल्लभवर, हूं छुं एडनी दासी रे ।
बीहूँ नहीं हूँ बीजा कोई थी, लोक करै छै हाँसी रे ॥
प्रीति बँधाणी एडनै चरणों, तोड़ावी नहीं तूटै रे ।
बाँधी हेम पटोलें गाँठी, छोड़ावी नहीं छूटै रे ॥
मूँकी लाज लोक कुल नी हूँ, भूंडी भली थई एडनी रे ।
भणै 'हरिदास' दास तेनी हूँ, चरण रेणु नित तेडनी रे ॥

[६९४] राग विहाग

पुष्टिमार्ग सिद्धांत नी, साँभलौ कहूँ एक वात ।
सावण सुदी एकादशी, वचन कह्या ते रात ॥
श्रीमद्वल्लभ नैं मन, चिंता उपजी एह ।
आज्ञा ब्रह्म संबंधनी, प्रभुजीएँ कीधी तेह ॥
पोतानाँ जन जाणों नै, चिंता धरी मन माँह ।
आतुरता दीठी घणी, श्री जी पधार्या ताँह ॥
तमें छौ पूर्ण पुरुषोत्तम, जीव छै दोष सहित ।
उद्धारनूँ कारण प्रभू, कहैजो धरी नैं चित्त ॥
त्यारे श्रीजी एम जीव मात्र, जे कोई आवै तमारे सरण ।
ते ऊपर करुणा करी, राखीश मारे चरण ॥
पवित्र दीवू सूत्र नूँ, रहैराव्यू जगदीस ।
केसर रंगे रंगी लूँ, तार त्रण सै त्रण बीस ॥

निश्री भोग धरावी रे, वस्त्र पहेराव्या तत्काल ।
कोर छेड़ा कर्या केसरी, धोती उपरणां रसाल ॥
सेवक जन सुख कारणै, श्री जी ए कीधौ श्रम ।
नाम समर्पण आपी नैं, राख्यौ वैष्णव धर्म ॥
श्रीगिरिधारीजी मंदिरै पधारिया, ए सुख कह्या नव जाय।
'हरिदास' शोभा जाई नै, आनंद मंगल थाय ॥

श्री विट्ठलनाथ जी की जन्म-बधाई—

[६९५] राग सारंग

वालौ श्री वल्लभ गृह प्रगटिया सुंदर वर जी ।
श्री विट्ठल धरिया नाम रे ॥ ॥ सुंदर० ॥

एमना रूप शील गुण चातुरी । एमनूं मुख जोवा थई आतुरी ॥
एमनाँ चरण कमल शोभा घणीं । वैष्णव जन माँथे ए धणीं ॥
ए आजानुबाहु छै हरी । एमनी कटि पर वारूं केहरी ॥
हरि नै सहज कस्तूरी नूं तिलक भाल। एमनाँ लोचन लालगुलाल॥
एमनैं केसरिया धोती सोहियै । एहूनैं वैने त्रिभुवन मोहियै ॥
एमनैं उपरणां छै जरकसी । जेहवी छवि जोई सुर बनिता हँसी ॥
ए ब्रजबासी जन नाँ भाग्य बड़ा । वाला जोशूं रमता तेहू तेवड़ा ॥
जेहाँ पुष्प लता वैहू पास छै । त्याँ श्रीहरि रमिया रास छै ॥
एम कहीनैं पुष्प बरखा करै । ए सुख जोईनै हैडूं ठरै ॥
हूं वैहुं कर जोरी नै विनवूं । श्री यमुना जी नै हूं नमूं ॥
श्री यमुना जी जोयानी मनैं आस रे । मनैं आपो ब्रज माँ बास रे॥
'हरिदास' शोभा जोई नैं रे । मारू मन रह्यौ त्या मोहीनै रे ॥

श्री गोकुलनाथ जी की जन्म-वधाई—

[६९६] राग विहाग

आनंद सागर उलटियौ सखी, आज मारा मन माँहि रे।
अंगौ अंग फूल्याँ अति घणां, सखी कह्याँ ते कौनैं नव जाहि रे॥
भले प्रगटिया श्री गोकुलनाथ विट्ठलनाथ।
द्यो हेली हरि नी वधामणीं० ॥१॥

उच्छाह उपज्यौ अति घणौ, सखी आँणियौ नव रंग रे।
बाजंत्री वाजै अति घणा, ढ़ोल भेरी मृदंग रे॥
सोहागण रे गाय मंगल चार ॥ द्यो होली० ॥ २ ॥

बावनाँ चंदन गोहलि वच्चै चौक नवलो भाँति रे।
पाछल फरतां भूमता वच्चै देलड़ी नी जाति रे॥
सिंहासन रे मेलौ ढ़लकता हाथ ॥ द्यो हेली० ॥ ३ ॥

बहु मूल्य रत्न हीरा जड़्या मोतीड़े पूरीं थाल रे।
कुमकुम भर्या रे कचोलड़ा माँहै पुष्प केरी माल रे॥
मन उपज्यौ रे सखि अति रे आनंद ॥ द्यो हेली० ॥ ४ ॥

प्रीते करी प्रभु निरखिया श्री गोकुलपति महाराज रे।
'हरिदास' कहै म्हारा मन तड़ा पोत्या मनोरथ आज रे॥
हवै सरिया रे सेवकनां काज ॥ द्यो हेली० ॥ ५ ॥

सामूहिक वधाई—

[६९७]

श्री लक्ष्मण भट्ट जी रे घैर ए कुल दीवौ रे।
भलै प्रगट्या श्री वल्लभराइ ए घणुँ जीवौ रे॥
एहूनाँ सुत छै वै अतिसै रूड़ा रे।
जेनूँ नाँ नम्यौ एमनै सीस ते जन कूड़ा रे॥

श्री अक्का जी कूखे अवतर्या सुखकारी रे।
श्री गोपीनाथ श्री विट्ठलनाथ ए पर बारी रे॥
श्री बलदेव श्री गोपीनाथ नैं जाणौं रे।
श्री कृष्ण श्री विट्ठलनाथ ए ब्रज राणौं रे॥
श्री पुरुषोत्तम जी प्रेम धरी नैं गाशै रे।
तेनाँ जनम जनम नाँ पाप सर्वं जाशै रे॥
श्री विट्ठलनाथ जी नाँ सात कुँवर सुखदाता रे।
कलियुग माँ पुष्टि प्रकाश करैं विख्याता रे॥
श्री गिरधर जी गुणवंत सहुँ नैं गमता रे।
जई जुवौ श्री जी नवनीतप्रियाजी थूँ रमता रे॥
श्री मथुरानाथ मनोरथ पूरैं मन नाँ रे।
सुमरौ श्री नटवर लाल जाय दुख तन नाँ रे॥
श्री गोविंदराय रस मग्न नैन भरि निरखौ रे।
एमनैं मंदिर श्री विट्ठलेसराइ जोई जोई हरखौ रे॥
श्री बालकृष्ण जी कृपा करीनैं सुख आयौ रे।
श्री द्वारिकानाथ जी नाँ रूप हृदै माँ थायौ रे॥
श्री वल्लभ गोकुलनाथ सेव्या गिरिधारी रे।
जेणैं राख्यौ मालानौं धर्म जाऊँ बलिहारी रे॥
श्री रघुपति जी महाराज जोई मन मोहियै रे।
एमनें मंदिरै श्री गोकुल चंद्रमा जी सोहियै रे॥
श्री यदुपति जी छै जुगतें जोवा जेवा रे।
एमने मंदिरै श्री बालकृष्ण जीनी सुंदर सेवा रे॥
श्री घनश्याम पूरणकाम छै घणूँ रसिया रे।
श्री मदनमोहन जी महाराज मारे मन बसिया रे॥
ए शोभा जोई 'हरिदास' जाय बलिहारी रे।
ए लीला गावो नित्य नर नैं नारी रे॥

श्रीनाथ जी के मेवाड़ पधारने का——

[६६८] राग अडानौ

चलो चलो वैस्नवो बल्लभ साथ।
सखी मेवाड़ पधारयाँ श्री गोबर्धननाथ॥
सखी मन बंद कर्म तजो गृह ना काज।
मेलो वेद मृजाद कुल नी लाज॥
छांड़ो मात पिता सुत पति परिवार।
ए बाण पयणे निरखौ श्री गिरवर धार॥
वाली रूपे छौ रूठोने मीन लै बान।
गंल स्थल मंडित कुंडल कान॥
राजै अलक तिलक जाणें काजल रेख।
नासा गज मोती नें नटवर भेष॥
सिर पाग सुरगी पर चंद्रिका मोर।
बालो मनोहर मूर्त चितडानो चोर॥
जी रे बंक अवलोकनें भृकुटी कमाल।
पैना नखन अति आला जाणें मदन नां बान॥
जी रे चंचलता चपलता वासु खंजनि मीन।
सोभा जोइने मृग थया छै अधीन॥
जी रे बिंबाधर छे अरुण प्रवाल।
मुख माधुरी मधु वंडसलड़ी रसाल॥
जोरे कुसुम भरे मृदु मुसनी हास।
दांत झलकै बांडमनी ज प्रकास॥
कंठे कंठे श्री नो गुंजा नो हार।
बाजूबंद पोंची ने झूमक चार॥

पाए पायो खेलने चरनों ठमकार।
चालै गज गती चाल, घूघरू घमकार ॥
जीरे सोलै कला लई उदयो चंद।
निकलंकी ब्रज जूबती मो कंद ॥
जी रे आरती उतारै श्री 'हरिराय'।
सोभा जोइने जन बलि बल्लभ जाइ ॥

७. पंजाबी के पद

धमार के पद—

[६९९] राग विहागरौ

होरी दे खेल बिचु यह क्या कीता।
मै नो लगाई छरी फूल्यो दी, सिर तें घूँघट खोलि लीता ॥
पायौ गुलाल आँखों बिच मेरे, देखन दा सुख छीता।
सब देखें दे लाज मरंदी, चुंवन गालों दीता ॥
ऐसी न कीजै निगर नंद दे, कहावै ब्रज जन मीता।
'रसिक प्रीतम' सों हा-हा खा दी, हौं हारी, तू जीता ॥

[७००] राग ईमन

पिरै जाने दै दे मिहरवाँ पीर पियारा।
छिन में बात अनेक करत है, छिन ही में होत नियारा ॥
मै चाहूँ उनके देखन कौं, उह औरन देखन हारा।
'रसिक प्रीतम' के प्रेम पगा सो, अब कहा करे बिचारा ॥

सहायक ग्रंथ

●

१.	श्री हरिराय जी कृत— वर्षोत्सव तथा नित्य के पद	:	मथुरा संग्रहालय की हस्त लिखित प्रति
२.	श्री हरिराय जी कृत— नित्य कीर्तन के पद ···	:	श्री रतनलाल गोस्वामी की हस्त लिखित प्रति
३.	,, ,, (अपूर्ण)	:	,, ,,
४.	,, ,, (अपूर्ण)	:	,, ,,
५.	कीर्तन संग्रह (भाग १, २, ३)	:	लल्लूभाई छगनलाल देसाई
६.	कीर्तन कुसुमाकर ···	:	श्री वसंतराम शास्त्री
७.	संगीत रागकल्पद्रुम (भाग १,२)	:	श्री कृष्णानंद व्यास
८.	श्री हरिराय जी महाप्रभुनुं जीवन चरित्र (गुजराती)	:	श्री द्वारकादास परीख
९.	अष्टछाप-परिचय ···	:	श्री प्रभुदयाल मीतल
१०.	सम्प्रदाय कल्पद्रुम ···	:	श्री विट्ठलनाथ भट्ट
११.	श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता	:	श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या
१२.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना वाली)	:	श्री द्वारकादास परीख

१३. 'व्रज-भारती', 'वल्लभीय सुधा' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओ के विविध अंक और बल्लभ संप्रदायी साहित्य।